पूंजीवाद

समाजवाद

और

रामराज्य

सम्पादक :—

श्री लक्ष्मणचैतन्य ब्रह्मचारी

व्याकरण, साहित्य, दर्शन, वाचस्पति

श्री हरिः

प्रकाशक :—

श्री सन्तशरण वेदान्ती

प्रचार मन्त्री :—

अखिल भारतीय रामराज्य परिषद्

दुर्गाकुण्ड, वाराणसी

प्रथमा वृत्ति—२०००

सहायतार्थ—पांच रुपये

मुद्रक—महन्त वीरभद्र मिश्र 'सन्मार्ग' प्रेस टाउनहाल, वाराणसी

श्री हरिः

प्रकाशकीय

भौतिक पूञ्जीवाद, समाजवादके वास्तविक स्वरूप को जाने-समझे बिना ही आजकल के रजनीश जैसे विचारक उपर्युक्त वादों पर पुस्तकें लिखकर अपना प्रचार करते हैं। ऐसे विचारक स्वयं गुमराह होने के कारण दूसरों को भी गुमराह करते हैं। अतएव ऐसे विचारकों की युक्तियों का खण्डन राष्ट्र हित की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

पूज्य स्वामी श्री करपात्रीजी महाराज ने रजनीश की युक्तियों का खण्डन कर राष्ट्र ही नहीं, सम्पूर्ण वैचारिक जगत् का महान् उपकार किया है। अतः "पूञ्जीवाद, समाजवाद और रामराज्य" पुस्तक प्रकाशित करते हुवे अपार हर्ष हो रहा है।

उपर्युक्त पुस्तक के सम्पादन-प्रकाशन में पूज्य स्वामी श्री करपात्रीजी महाराज के शिष्य श्री लक्ष्मणचैतन्य ब्रह्मचारी का विशेष सहयोग रहा है। साथ ही ब्र० ब्रह्मचैतन्य 'प्रबल', श्री आत्मचैतन्य ब्रह्मचारी, श्री शिवचैतन्य ब्रह्मचारी एंव न्याय, व्याकरणाचार्य श्री पं० रामगोविन्दशुक्ल तथा चिरंजीवि श्री प्रकाश ने सम्पादन कार्य में पूर्ण सहयोग प्रदान किया है। एतदर्थ हम उनके आभारी हैं।

सन्तशरण वेदान्ती
रामराज्य परिषद्
वाराणसी

श्री हरिः

भूमिका

आधुनिक सभी राजनैतिक वादों की विस्तृत व्याख्या भारत हृदय सम्राट स्वामी श्री करपात्री महाराज "मार्क्सवाद और रामराज्य" एंव 'विचार-पियूष' जैसे विशाल ग्रंथों में कर चुके हैं। किन्तु फिर भी नये वादों के सम्बंध में उठाये जा रहे नवीन तर्क एवं युक्तियों के खण्डन के व्याज से पुनः आधुनिक मत वादों पर स्वामी जी महाराज की सारगर्भित समीक्षा "पूञ्जीवाद, समाजवाद और रामराज्य" पुस्तक में पढ़ने को सुलभ हो रही है।

श्री रजनीश जी ने "समाजवाद से सावधान" पुस्तक में अपने आप को समाजवादी मानते हुये समाजवाद को भौतिक पूञ्जीवाद का विकसित रूप माना हैं और साथ ही कपोल कल्पित कहानी की युक्ति देकर भौतिक समाजवाद को अत्यन्त असत् सिद्ध करने की दिशा में असफल प्रयास करते हुये भौतिक पूञ्जीवाद की वकालत की है। पूञ्जीवाद के समर्थनमें उनकी दलीलें अत्यन्त नगण्य सारहीन एवं अविचारित हैं।

"पूञ्जीवाद समाजवाद और रामराज्य" पुस्तकमें पूज्य स्वामी करपात्री जी महाराज ने स्मिथ, वेन्थम, स्टूअर्ट, स्पेन्सर, डार्विन, जार्ज डार्विन, हकसले आदि विचारकों के मतों पर उपयोगितावाद, वैयक्तिक स्वतंत्रतावाद, अराजकतावाद, विकासवाद, आत्मवाद, आदि विषयोंपर मार्मिक समालोचना करते हुये भौतिक पूञ्जीवाद की अपेक्षा भौतिक समाजवाद की उपयुक्तता पर प्रकाश डाला हैं।

उपर्युक्त पुस्तक में भौतिक पूञ्जीवाद, भौतिक समाजवाद एवं अन्य वादों के सही स्वरूप का स्पष्टीकरण करते हुयें सम्पूर्ण मानव समाज के सामाजिक,

आर्थिक, धार्मिक, राजनीतिक स्वाधीनता और विकास के लिये लोकतंत्रवाद की आवश्यकता का प्रतिपादन किया है। लोकतंत्र का वास्तविक स्वरूप न भौतिक पूञ्जीवाद में रहता है और न ही भौतिक समाज वाद में। लोकतंत्र का सजीव रूप तो अध्यात्मवाद पर आधारित धर्मनियन्त्रित वाद रामराज्य वादी अर्थतन्त्र में ही सुलभ हो सकता है। इसी विषय को सप्रमाण प्रस्तुत किया है। उपर्युक्त पुस्तक के अध्ययन एवं मनन से लोकतन्त्र वादी राजनीतिक विचारकों को सही मार्ग दर्शन प्राप्त होगा, ऐसा मेरा विश्वास है।

वासुदेव शास्त्री 'अतुल'
महामन्त्री
अखिल भारतीय रामराज्य परिषद्
दिल्ली ६

श्री हरिः

गोवर्धन पीठाधीश्वर श्रीमज्जगद्गुरु शंकराचार्य
स्वामी निरञ्जन देव तीर्थ जी महाराज

की

शुभ सम्मति

"धर्मसम्राट श्री स्वामी करपात्रीजी महाराज द्वारा लिखित "पूंजीवाद-समाजवाद और रामराज्य" पुस्तक का अवलोकन किया। प्रस्तुत पुस्तक में रजनीश के द्वारा उठाये गये तर्कों का समुचित उत्तर के साथ आधुनिक पूंजीवाद, समाजवाद और रामराज्य की अर्थनीति का सजीव चित्रण और धर्म-नियन्त्रितवाद की उपयोगिता पर प्रकाश डाला गया है।

उक्त पुस्तक के पठन एवं मनन से आधुनिक नीतिवादों का परिज्ञान और सही दिशा का बोध होगा।

श्री निरञ्जनदेवतीर्थ

स्वामी पशुपति बाबा

की

सम्मति

पूंजीवाद, समाजवाद और धर्मनियन्त्रित वाद (रामराज्य) के सच्चे स्वरूप की व्याख्या—"पूंजीवाद, समाजवाद और रामराज्य" पुस्तक में श्री स्वामी करपात्री जी महाराज ने की है। राजनीति में रुचि रखने वालों के लिए इस पुस्तक का अध्ययन, मनन अत्यन्त उपयोगी होगा।

प्रेषक—राधामोहन सिंह

श्री हरिः

प्रथम-प्रकरण

समाजवाद का जन्म

आज के राजनीतिक क्षेत्र में भारतीय धर्मनियन्त्रित राजतन्त्र या धर्म-नियन्त्रित लोकतन्त्र के अतिरिक्त अनेक वाद प्रचलित हो गये हैं। उनमें ही पूंजीवाद, समाजवाद, साम्यवाद, नात्सीवाद, फासिस्टवाद आदि-आदि हैं।

समाजवाद एवं साम्यवाद का प्रचार और प्रभाव लगभग संसार के सभी देशों में है। पूंजीवादी राष्ट्रों में भी समाजवाद एवं साम्यवाद का आतङ्क है। सेण्ट साइमन आदि फ्रांसीसी विद्वान कार्लमार्क्स एवं एनेल्स आदि से बहुत पहले समाजवाद का प्रसार प्रचार करते रहे हैं। संसार में समानता, भ्रातृता एवं स्वतन्त्रता का उद्घोष (नारा) सर्वप्रथम फ्रांसीसी विद्वानों ने ही बुलन्द किया था। आज के समाजवाद में उस समय के समाजवाद से बड़ा अन्तर हो गया है। उस समय व्यक्तिगत भूमि, सम्पत्ति, कल-कारखानों एवं लोगों की वैध सम्पत्ति, गाढ़े पसीने की कमाई, बपौती मिलकियत, दान, पुरस्कार में प्राप्त सम्पत्ति के अपहरण की बात नहीं चलती थी। ऐसा करना वे लोग चारित्रिक दृष्टि से अनुचित मानते थे। किसी की वैध सम्पत्ति को उसकी बिना मर्जी आँख के सामने दिनदहाड़े ले लेने वाला साहसिक (डाकू) और आँख बचाकर ले लेने वाले को तस्कर (चोर) समझा जाता था। यह कार्य जैसे व्यक्तियों के लिए अनुचित था वैसे ही समाज के लिये ये भी अनुचित समझा जाता था। फलतः कोई पार्टी या कोई सरकार किसी भी नागरिक की वैध सम्पत्ति को उसकी बिना मर्जी या बिना उचित मुवावजा दिये लेना अनुचित ही समझती थी। कार्ल मार्क्स के सामने भी उक्त समस्या ज्यों की त्यों खड़ी हुई थी।

कार्लमार्क्स का विचार था कि यदि कोटिपति, अरबपति का उत्तराधिकारी पुत्र पौत्र आदि कोटिपति, अरबपति होते रहे और दरिद्र दीन-हीन कौड़ीपति के पुत्रादि कौड़ीपति दरिद्र ही होते रहे तो समानता, स्वतं-

न्त्रता, भ्रातृता के उद्घोष का कोई अर्थ ही नहीं। ऐसी भीषण विषमता के रहते हुए समानता का उद्घोष केवल मखौल ही बनकर रह जायगा। अन्त में मार्क्स ने उस व्यवस्था का विरोध करना आरम्भ किया और उसने बताया कि संसार में कोई व्यवस्था या नियम शाश्वतिक या नित्य सदा सर्वदा के लिए स्थायी नहीं हो सकता। देशकाल, परिस्थितियों के अनुसार अनेक व्यवस्थायें नियम कानून संविधान बनते हैं। परिस्थिति के अनुसार उनमें रद्दोबदल भी होता है।

आम तौर पर संसार के सभी नियम माली हालातों के आधार पर बनते और बिगड़ते हैं। सबकी आधारशिला या आधारभित्ति माली अवस्था ही होती है। संसार के सभी प्राणियों के सामने रोटी-रोजी की समस्या प्रमुख रूप से उपस्थित रहती हैं। जिसको रोजी रोटी दुर्लभ है उसकी सारी प्रवृत्ति सारी चेष्टायें उसी ओर प्रभावित रहती है। उनके सामने धर्म, संस्कृति, आत्मा परमात्मा का कोई विचार नहीं रहता। पशु-पक्षियों में जंगली मनुष्यों में यह प्रत्यक्ष है। जिन लोगों के सामने रोटी-रोजी की चिन्ता नहीं, धन धान्य से परिपूर्ण हैं, खान-पान, वस्त्र, चिकित्सा आवास की कोई परेशानी नहीं है वे लोग फिर ईश्वर, ब्रह्म, धर्म, ईमान, दीन, सत्य न्याय आदि के विचार में संलग्न होते हैं।

माली अवस्था या माली हालतें बहुधा उत्पादन साधनों पर निर्भर करती हैं। जब जैसे उत्पादन साधन होते हैं तब वैसे ही माली अवस्था बनती है। हाथबन्दी चक्की के जमाने की माली हालत और तरह की होती है जब कि पानी की चक्की के जमाने की माली अवस्था और ढंग की हो जाती है। भाप की चक्की के जमाने से बिजली के चक्की के जमाने की माली हालत सर्वथा भिन्न होती है। सामान्यतया एक एकड़ खेत का दाम हजार दो हज़ार रु० होता है पर जब वहीं नगर बसने लगता है या कोई बड़ा कारखाना बनने लगता है तब वहीं खेत बहुमूल्य हो जाता है। कभी एक नगर को तेल पहुंचाने के लिए सैकड़ों तेलियों तथा कोल्हू बनाने वाले सैकड़ों बढ़इयों की आवश्यकता पड़ती थी। सैकड़ों बैलों एवं घरों में तेल पहुंचाने के लिए मजदूरों की आवश्यकता होती थी। इस तरह केवल तेल इकट्ठा करने के लिए सहस्रों

मनुष्यों की आवश्यकता पड़ती थी और उन सभी की रोजी-रोटी की समस्या हल होती थी। पर औद्योगिक क्रान्ति के समय थोड़े से व्यक्तियों द्वारा बड़ी तेल निकालने की मशीन लगाकर इतना तेल निकाला जा सकता है कि उससे अनेक नगरों को तेल सुलभ हो जाता है। उस समय अनेक लोगों के रोजी-रोटी के साधन छिन जाते हैं। हजारों व्यक्ति कंगाल हो जाते हैं कुछ लोग धन्नासेठ बन जाते हैं।

कई बार मजदूर स्वेच्छानुसार काम करते हैं या नहीं करते लापरवाही करते हैं यह देखकर कल कारखाने वाले पूंजीपति प्रयत्न कर अच्छे वैज्ञानिकों पर पर्याप्त द्रव्य खर्च कर ऐसी मशीनोंका आविष्कार कराते हैं जिनके सामने मजदूरों को काम करना ही पड़ता है। मशीन ही मजदूर पर हावी रहती है एक मजदूर के काम न करने पर स्वाभाविक (आटो मेट्रिक) रूप से मशीनें रुक जायंगी। सञ्चालकों को तत्काल खबर मिल जायगी। अतः मशीन के सामने झख मारकर मजदूर को काम करना ही पड़ता है।

इस दृष्टि से उत्पादन साधनों का पूरा-पूरा असर माली अवस्थाओं पर पड़ता है। ऐसी स्थिति में कार्ल मार्क्स का कहना है कि जिन मनुष्यों ने उत्पादन साधनों में रद्दोबदल करके माली हालातों में रद्दोबदल कर दिये उनको स्वभाविक रूपसे यह अधिकार या हक्क मिल जाता है कि वे उत्पादन साधनों से उत्पादित सम्पत्ति के वितरण बंटवारे सम्बन्धी नियमोंमें भी रद्दोबदल कर दें और तत्सम्बन्धी प्राचीन नियमों कानूनों कायदों को रद्द कर दें। इस दृष्टि से वेद, वायविल, पुराण, कुरान या अन्य देशों जातियों सम्प्रदायों तथा मजहबों के बनाये हुये कोई भी नियम शाश्वतिक नित्य या स्थायी नहीं हो सकते हैं।

ऐसी स्थिति में भूमि कल-कारखाने या हीरे, सोने चांदी, लोहे, कोयले तथा डीजल, पेट्रोल, आदि के खानोंपर किसीका व्यक्तिगत अधिकार कभी रहा होगा और परिस्थिति के अनुसार उस समय वह उचित हो सकता था। परन्तु आज की बदली हुई परिस्थिति में वह कदापि उचित नहीं है।

उत्पादन साधन बदल गये, माली हालातें बदल गयीं। रेल, मोटर, वायुयान तथा विविध बड़े कारखानोंके कारण लोहों, कोयलों, डीजल, पेट्रोल

आदि की कीमतें बढ़ गयीं। आज की औद्योगिक क्रान्ति की दौड़ की होड़ में सारा संसार व्यस्त है। परिस्थितियों की उथल-पुथलमें कोई भी नियम स्थिर नहीं रह सकते हैं।

कालमार्क्स के अनुसार प्राकृतिक साधनों, भूमि, खानों पर अधिकार भी व्यक्तियों के स्वाभाविक नहीं है। प्रबल लोगों ने दुर्बलों को दबा कर साधनों पर एकाधिपत्य स्थापन कर लिया था। समाज में अविज्ञातकालसे शोषक एवं शोषितों का संघर्ष चल रहा है। उत्पीड़क समाज उत्पीड़ित समाज पर हावी होता चला जा रहा था। अब समय आ गया है जबकि शोषितों उत्पीड़ितों ने शोषकों, उत्पीड़कों के विरुद्ध आवाज उठाना शुरू कर दिया है।

मार्क्स की दृष्टि में बड़े उद्योग धन्धों, कल-कारखानों से होनेवाली आमदनी या लाभ के मुख्य अधिकारी मजदूर ही है। पूंजी जड़ है, मजदूर चेतन है। चेतन मजदूर न हो तो मकान, कारखाने भूमि, खानें कच्चे माल सबके सब जड़ हैं मुर्दा है कुछ भी उत्पादन नहीं हो सकता है। मजदूर के श्रमका पूरा फल, पूरा लाभ उसे न देकर पूंजीपति मील मालिक उसे उतना ही देता है जितने में वह जीता रहे मर न जाय। मालिक का काम करने के लायक बना रहे। जैसे तांगे वाला तांगे के घोड़े से दिन रात काम लेता है धन कमाता है उसमें से थोड़ा-सा धन घोड़ेपर खर्च करता है बाकी सब स्वयं हड़प लेता है। घोड़े को उतना दाना चारा देता है जितने में वह मर न जाय, जीता रहे उसका तांगा खींचता रहे उसके लिये धन कमाता रहे। जैसे प्रकृत घोड़ा शोषित, तांगे वाला शोषक है। वैसे ही पूंजीपति, राजा, जमींदार, जागीरदार शोषक, उत्पीड़क है कारखानों के मजदूर खेतोंके मजदूर शोषित हैं।

रिकार्डो आदि की दृष्टि में विनिमय मूल्य का आधार मांग और पूर्ति है जिसकी मांग कम पूर्ति ज्यादा उसका दाम घट जाता है। मार्क्स ने उसका खण्डन कर बताया कि विनिमय मूल्य का आधार श्रम ही है। जैसे कि जब कोई व्यक्ति किसी से कुछ रुपये कर्ज लेकर सूत खरीद कर घर में ही कपड़ा बनाकर बाजार में बेच देता है तब कर्ज के रूप में लिये गये रुपये एवं उनके सूद चुकाने के बाद बचा हुआ पैसा उसके परिश्रम का ही फल होता है। उसी

तरह मिलों में बने हुये कपड़ों या अन्य पक्की वस्तुओं के बिकने से प्राप्त द्रव्यमें से कच्चे मालका दाम तथा मकान और मशीनका भाड़ा तथा मशीनकी घिसायी तथा सरकारी टैक्स एवं पूंजीपति को उसकी सूद आदि दे देनेके बाद बाकी बचा पैसा मजदूरों के श्रम का ही फल मानना चाहिये। परन्तु होता है ठीक उसके विपरीत। पूंजीपति मजदूर का श्रम कुछ पैसों में खरीद कर श्रमका फल अपने जेब में डाल देता है। परिस्थिति से लाचार होकर मजदूर अपनी वेश कीमत श्रमको कम पैसे में ही बेंचने को बाध्य होता है या यों समझिये कि जैसे तांगा वाला घोड़े का मालिक जैसे बेरहमी के साथ घोड़े से काम लेता है उसकी कमायी का फल स्वयं लेता है। घोड़ा को तांगा खींचने लायक बनाये रखने के लिये उसकी कमायी के कुछ पैसे उसके दाने घास पर खर्च करता है। उसी तरह मिल मालिक भी मजदूरों की कमायी से कुछ ही पैसे मजदूरों को देता है जितने में कि वह जीता रहे और मालिक का काम करता रहे। यही स्थिति खेत मजदूरों की है। इस रीति से मेहनत करने वालों की मेहनत का फल मिल मालिक या राजा जमींदार खाते रहे हैं। उसमें से नगण्य अंश मजदूरों मेहनत करने वालों को देते रहे हैं जब कि न्यायतः वही सब आपके मुख्य मालिक थे। मजदूरों कों मिलने वाले अंश से अतिरिक्त जो उनके मेहनत का फल है उनको न मिल कर मिल-मालिक को मिलता है वही अतिरिक्त लाभांश है। उसी के द्वारा मिल मालिक धनवान होता है। ऐश आराम करता है। इसी दृष्टि से वह मजदूर का शोषण करता है।

मार्क्स ने इस तरह शोषक शोषित उत्पीड़क उत्पीड़ित के रूप में वर्गभेद, व चेतना उत्पन्न करके, वर्ग संघर्ष को जन्म देकर खूनी क्रान्ति या गैर खूनी क्रांति के द्वारा शोषक वर्गका विध्वंस करके राष्ट्रमें सर्वहारा का डिक्टेटर शिपमें समाजवाद लाने का मार्ग प्रशस्त किया है। राष्ट्रके सभी उत्पादन साधन भूमि, लोहे, कोयले, डीजल, पेट्रोल, सोने, चांदी, हीरे, खानें, कल-कारखानें, उद्योग धन्धों का राष्ट्रीयकरण या समाजीकरण ही समाजवाद है। समाजीकृत उत्पाद साधनों से यथोचित उत्पादन बढ़ाकर समाजवादी सरकार सब के लिये यथोचित काम दाम आराम की व्यवस्था करती है। इस तरह राष्ट्र के उत्पादन

साधनों पर व्यक्तियों का अधिकार न होकर राष्ट्र या समाज का अधिकार होना ही समाज और राष्ट्र के सभी नागरिकों को स्वेच्छानुसार शिक्षा पाने, काम सीखने तथा स्वेच्छानुसार काम चुनने और उसका फल पाने का सब को समान अवसर मिलना साम्यवाद है, रूस, चीन जैसे शक्तिशाली राष्ट्र आज समाजवादी राष्ट्रों में प्रमुख हैं। पौलैण्ड, स्विटजरलैण्ड भारत आदि आधे से अधिक राष्ट्र अपने को समाजवादी मानते हैं। अमरीका, कनाडा, इंग्लैंड, जर्मनी, इटली में भी समाजवाद का प्रभाव है। अरब राष्ट्र दक्षिणी उत्तरी वियतनाम आदि भी सब उसी पथ के पथिक हैं।

अमरीका जैसे पूंजीवादी राष्ट्र के मुकाबिले में रूस पीछे नहीं है। अमरीका ने उसके प्रभाव से प्रभावित होकर उससे सहयोग करने में ही अपनी और संसार की भलाई समझी है। चीन से भी सहयोग के लिये उसने अनेक कदम उठाये हैं। परमाणुबम, हाइड्रोजनबम का भण्डार रूस में और अंशतः चीन में भरने लगा है। चन्द्रलोक की यात्रा रूस की मोटर गाड़ी महीनों करती रही। अन्तरिक्ष यात्री तैयार करने में भी रूस सफल हो रहा है।

यद्यपि राष्ट्रीकरण समाजीकरण के तर्कों से कम लोग परिचित हैं। फिर भी आज उत्पादन साधनों, भूमि, सम्पत्ति, उद्योग-धन्धों, कल-कारखानों के राष्ट्रीकरण का सिद्धान्त जो कि समाजवाद का प्राण है लगभग सभी राष्ट्रों में प्रचलित है। इंग्लैंड, अमरीका आदि में भी अनेक उद्योगों का समाजीकरण हो चुका है।

कहा जाता है कि आज वायुयान के युग में पैदल या बैल गाड़ियों से चलने को बढ़ावा नहीं मिल सकता। अणुबम हाईड्रोजनबम के जमानेमें पत्थरों के औजारों से लड़ाई नहीं लड़ी जा सकती है। रेडियो तार के जमाने में समाचार भेजने के पुराने तरीकों को स्वीकार नहीं किया जा सकता है। ठीक इसी तरह आज के समाजवादी साम्यवादी जमाने में किसी भी शाश्वत नियम को नहीं माना जा सकता है। मार्क्स ने जीते जागते देहों को ही आत्मा माना है। अतः शाश्वत अत्मा और परमात्माकी मान्यता समाजवाद में नहीं हो सकती। वेदादि शाश्वत शास्त्र एवं शाश्वत धर्म या कोई आध्यात्मिक या ईश्वरीय मान्यता भी समाजवाद में नहीं हो सकती है।

जीते जागते संसार की उन्नति करना उसकी भलाई करना, सब को समान न्याय तथा सुख शान्ति सुव्यवस्था प्राप्त कराने का प्रयास करना ही उसका उद्देश्य है। यह अत्यन्त संक्षिप्त समाजवाद की रूप रेखा है उसका विस्तृत विवेचन और समालोचना मेरी 'मार्क्सवाद और रामराज्य' पुस्तक में देखा जा सकता है। किसी भी पक्ष को ईमानदारी से समझना और प्रतिपादन करके ही उसकी समालोचना उचित होती है।

समाजवाद असत् नहीं

श्री रजनीशकी 'समाजवाद से सावधान' पुस्तक हमारे सामने है। उसमें समाजवाद को ऐसा प्रस्तुत किया गया है मानों वह खपुष्प या वन्ध्या-पुत्र के समान असत् है। पुस्तक का प्रारम्भ एक छोटी कहानी से किया गया है जो इस प्रकार है—

"एक महानगरी में भीड़ थी। रास्तों पर लाखों लोग खड़े थे जो आतुरतापूर्वक सम्राट् के आने की प्रतीक्षा कर रहे थे। कुछ समय पश्चात् सम्राट् की सवारी आई। भीड़ के सभी लोग सम्राट् के वस्त्रों की चर्चा करने लगे और मजा यह कि सम्राट् बिल्कुल नग्न था, उसके शरीर पर वस्त्र थे ही नहीं। केवल एक छोटे से बच्चे को जो अपने बाप के कन्धे पर बैठकर आ गया था बड़ी हैरानी हुई। उसने अपने बाप से कहा कि लोग सम्राट् के सुन्दर वस्त्रों की चर्चा कर रहे हैं, लेकिन मुझे तो सम्राट् नग्न दिखायी पड़ रहा है उसके बाप ने उससे कहा चुप नासमझ, कोई सुन लेगा तो बड़ी मुसीबत हो जायगी और वह उस बच्चे को लेकर भीड़ से बाहर हो गया। सम्राट् नग्न था और लोग उसके वस्त्रों की चर्चा कर रहे थे! बात क्या थी।

कुछ माह पूर्व एक आदमी ने उस सम्राट् से कहा था कि आपने सारी पृथ्वी जीत ली लेकिन आपके पास देवताओं के वस्त्र नहीं है। मैं लाकर

दे सकता हूं । सम्राट् का मन लोभ से भर गया । सब उसके पास था पर देवताओं के वस्त्र न थे । उस आदमी ने कहा फिक्र न करें थोड़ा खर्च तो होगा लेकिन वस्त्र लेकर मैं आ जाऊंगा । छह महीने की उसने मोहलत चाही । छह महीने तक सम्राट् ने एक महल में उसे बन्द कर दिया । चारों तरफ नंगी तलवारों का पहरा बैठा दिया । वह आदमी कभी लाख कभी दो लाख रुपये माँगने लगा । उसने छह महीने में कई करोड़ रुपये सम्राट् से ले लिये वस्त्र लाने के लिये लेकिन सम्राट् निश्चिन्त था क्यों कि महल में वह कैद था और भाग नहीं सकता था । छह महीने पूरे होने पर वह आदमी एक बहुमूल्य पेटी में वस्त्र लेकर उपस्थित हुआ । राज महल आया । बड़े सम्राट् आमन्त्रित थे, उसने ताला खोला, सम्राट से कहा—

अपनी पगड़ी मुझे दे दें । सम्राट की पगड़ी पेटी के भीतर डाली फिर पेटी के भीतर से कोई पगड़ी निकाली, लेकिन उसका हाथ खाली था । सम्राट् ने गौर से देखा उसने कहा पगड़ी आपको दिखायी पड़ रही है ? और धीरे से कहा जब मैं चलने लगा तो देवताओं ने कहा था कि ये वस्त्र उन्हीं को दिखायी पड़ेंगे जो अपने ही बाप से पैदा हुए हैं । हाथ खाली था लेकिन सम्राट को तत्काल पगड़ी दिखाई पड़ने लगी । उसने कहा इतनी सुन्दर पगड़ी मैंने कभी नहीं देखी । फिर सम्राट् के एक एक वस्त्र उस पेटी में डाले गये और झूठ वस्त्र सम्राट् पहनाता चला गया । फिर जब आखिरी वस्त्र के उतारने की बात आयी तब सम्राट् घबराया । लेकिन उस आदमी ने कहा कि अब घबराने से कोई फायदा नहीं । झूठकी यात्रा शुरू हो जाय तो पूरी ही करनी पड़ती है, वापस नहीं लौट सकते लोग क्या कहेंगे ? आखिरी वस्त्र भी सम्राट् का उतर गया । दरबारी भी बड़े जोर से प्रशंसा करने लगे कि इतने सुन्दर वस्त्र हमने कभी नहीं देखे, क्योंकि उस आदमी ने कहा कि ये वस्त्र सिर्फ उसी को दिखायी पड़ेंगे जो अपने ही बाप से पैदा हुआ है । सब दरबारियों को वस्त्र दिखाई पड़ने लगे जो नहीं थे । प्रत्येक दरबारी को ऐसा लगा कि जब सब को दिखायी पड़ रहे हैं तो वस्त्र होंगे ही । जरूर सिर्फ मुझे नहीं दिखायी पड़ रहे हैं तो अपना बाप संदिग्ध हुआ,

लेकिन अब इस बात को खोजने से कोई मतलब नहीं। लेकिन यह बात राज महल के भीतर की थी। उस आदमी ने कहा महाराज देवताओंने कहा है कि वस्त्र पहली दफा पृथ्वी पर जा रहे हैं इनका जुलूस इनकी शोभा यात्रा भी निकलना जरूरी है। रथ तैयार है, आप बाहर चलें। सम्राट् घबराया। लेकिन उस आदमी ने कहा आप बिल्कुल न घबरायें आपके रथ के सामने ही डुग्गी पीटते हुए लोग चलेंगे कि यह वस्त्र उन्हीं को दिखायी पड़ेंगे जो अपने बापसे पैदा हुए हैं, ये वस्त्र सबको दिखायी पड़ेंगे, आप घबरायें नहीं। सम्राट् रथपर सवार हुआ। सभी को नग्न दिखायी पड़ा लेकिन कौन कहे कि सम्राट् नग्न है। एक छोटे से बच्चे ने यह कहा था तो उसके बाप ने कहा नासमझ अभी तुझे अनुभव नहीं है, जब तू बड़ा होगा तो वस्त्र तुझे दिखायी पड़ने लगेंगे। यहां कोई सुन लेगा तो मुसीबत हो सकती है।

इस कहानी से क्यों अपनी बात शुरू करना चाहता हूं ? समाजवाद के नाम से आज सारी दुनिया में जो शोर है, उस भीड़ के बीच में मेरी हालत उस बच्चे जैसी है जो कहे कि सम्राट् नंगा है। लेकिन मुझे लगता है कि किसी को यह बात कहनी चाहिए। मनुष्य का मन ऐसा है कि प्रचारित असत्य भी सत्य मालूम होने लगते हैं। बहुत बार बोले गये झूठ भी सच मालूम होने लगते हैं और पहली बार बोला गया सच भी सच नहीं मालूम पड़ता है। इधर सौ वर्षों से समाजवाद शब्द के आस पास एक मिथ, एक कहानी गढ़ी जा रही है। उसके निरन्तर प्रचार ने जो समाजवादी नहीं हैं उन्हें भी समाजवादी बना दिया है। जो भीतर से समाजवादी नहीं हैं, बाहर से वे भी उसका गुणगान करते दिखायी पड़ते हैं। समाजवाद के विरोध में बोलने का साहस किसी में भी नहीं मालूम पड़ता, सब अनुभवी हैं मैं एक गैर अनुभवी आदमी हूं। इसलिए उसके विपरीत बोलने की कोशिश करूंगा। लेकिन मनुष्य जाति के इतिहास में भीड़ कुछ मान ले, इससे सच नहीं हो जाता है। भीड़ ने हमेशा बड़े-बड़े झूठ स्वीकार किये हैं और हमेशा उन्हीं के साथ जीती रही है। एक नया असत्य मनुष्य के मनको पकड़ा है समाजवाद के नाम से। उसकी पूरी व्याख्या समझ लेनी जरूरी है। पहली बात

तो यह है कि समाजवाद पूंजीवाद के विरोध में शत्रु की भाँति खड़ा हुआ है। समाजवाद जो कुछ भी हो वह पूंजीवाद की सन्तान है। सामन्तवाद की व्यवस्था से फ्युडिलिज्म से पूंजीवाद पैदा हुआ। अगर पूंजीवाद ठीक से विकसित हो तो उससे समाजवाद पैदा हो सकता है, अगर समाजवाद ठीक से विकसित हो तो उससे साम्यवाद पैदा हो सकता है, अगर साम्यवाद ठीक से विकसित हो तो उससे अराजकतावाद (वैराज्यवाद) पैदा हो सकता है।

लेकिन ठीक से विकसित हो तब। बच्चे माँके पेटसे समयसे पहले भी पैदा हो सकते हैं, और माँ आतुर हो सकती है कि नौ महीने क्या प्रतिक्षा करूं पाँच महीने में बच्चा अगर निकल आये पेट से तो ज्यादा अच्छा है। चार महिनेका कष्ट भी बचेगा, चार महिने की प्रतोक्षा भी बचेगी और बेटे से अभी मिलना हो जाएगा। लेकिन पाँच महीने के बेटे मुर्दा पैदा होते हैं जिन्दा नहीं और अगर जिन्दा पैदा हो जायं तो जिन्दगी भर मुर्दे से भी बदरत उनकी हालत होती है।" (पृ० ५ से ७ तक)

ऐसी कहानियाँ योगवशिष्ठ, पञ्चदशी आदि वेदान्त ग्रन्थों में आती हैं। एक धात्री अपने राजकुमार के मन बहलाने के लिए एक—आख्यायिका कहती है—

बालस्य हि विनोदाय धात्री वक्ति शुभां कथाम्।
क्वचित्सन्ति महाबाहो राजपुत्रास्त्रयः शुभाः ॥२२॥
द्वौ न जातौ तथैकस्तु गर्भ एव न च स्थितः।
वसन्ति ते धर्मयुक्ता अत्यन्तासति पत्तने ॥२३॥
स्वकीयाच्छून्यनगरान्निर्गत्य विमलाशयाः।
गच्छन्तो गगने वृक्षान्ददृशुः फलशालिनः ॥२४॥
भविष्यन्नगरे तत्र राजपुत्रास्त्रयोऽपि ते।
सुखमद्य स्थिताः पुत्र मृगया व्यवहारिणः ॥२५॥
धात्र्येति कथिता राम बालकाख्यायिका शुभा।
निश्चयं स ययौ बालो निर्विचारणया धिया ॥२६॥

(पञ्चादशाम् १३।२२-२६)

'हे महाबाहो ! कहीं तीन राजकुमार थे। जिनमें दो अभी उत्पन्न ही नहीं हुए और एक अभी गर्भ में ही नहीं आया। तीनों ही विमलाशयों ने अपने शून्य नगर से निकलकर जाते हुए गगन में लगे हुए बहुत से फलशाली वृक्ष देखे। वे तीनों ही राजपुत्र आज भविष्य में होने वाले नगर में सुख पूर्वक स्थित हैं और मृगया व्यवहार में लगे हैं, धात्री द्वारा कही हुई उक्त आख्यायिका को सुनकर निर्विचार बुद्धि से बालकने वैसा ही निश्चय कर लिया। इसी तरह अनेक आख्यानों द्वारा वशिष्ठ ने माया शक्ति के विस्तार का वर्णन किया है।

यह संरचना उक्त बालकाख्यायिका के समान ही विचार शून्य बुद्धि वाले लोग में बद्ध-मूल है। वस्तुतः अत्यन्त असत्य ही है। परन्तु वह कहानी परमार्थ ब्रह्म की दृष्टि से कही गयी है। अजर, अमर, अच्छेद्य, अभेद्य, चिद्घन, सद्घन, आनन्दघन, ब्रह्म की दृष्टि से प्रपञ्च अत्यन्त असत् है फिर भी वह प्रपञ्च दार्शनिकों की व्यवहाररिक दृष्टि से तत्त्वान्यत्वाभ्यां निर्वक्तु मनर्हं सदसद्विलक्षण अनिर्वचनीय रूप से मान्य है।

श्री रजनीश जी ! जो समाजवाद सब पर हावी है उसको सम्राट के अत्यन्त असत् झूठे कपड़ों के तुल्य असत् कहना चाहते हैं और पूंजीवाद को जो उसीके समकक्ष है उसको सत्य कहना चाहते हैं। वस्तुतस्तु उक्त सम्राट् की कहानी भी बेशिर पैर की है। अभी तक संसार इतना मूर्ख नहीं हो पाया है कि एक चालाक व्यक्ति के बहकावे में आकर सम्राट् मन्त्री और सारी जनता कपड़ों के अत्यन्त अभाव में लोकोत्तर बहुमूल्य वस्त्रों का अनुभव या वर्णन करने लग जाय। चालाक भी अन्यवस्तुओं में अन्यवस्तुओं की भ्रान्ति उत्पादनमें सादृश्य सम्पादनादि द्वारा सफल हो सकता है। परन्तु निरधिष्ठान भ्रान्ति की कल्पना में वह भी सफल नहीं हो सकता। समाजवाद के प्राणभूत वैयक्तिक उत्पादन साधनों के समाजीकरण को पूजीवादी कहे जाने वाले राष्ट्र भी बाध्य हैं। फिर खपुष्पवत् असत् कैसे कहा जा सकता है।

समाजवाद में अनेक दोष हों यह अलग बात है। परन्तु सम्राट् के झूठे वस्त्रों के समान समाजवाद नाम की कोई वस्तु ही नहीं

है यह तो वैसा ही है जैसे प्रत्यक्ष बिल्ली के खतरे को देखते हुए भी अपने और दूसरों को धोखा देने के लिए कोई चूहा कहने लगे कि बिल्ली नाम की वस्तु कभी हुई ही नहीं, वह तो खपुष्प के समान, शश्रृंग के समान त्रिकाल में हुई ही नहीं। स्पष्ट है यह केवल आत्म वञ्चना है। उस कथन से वस्तुस्थिति का कोई सम्बन्ध नहीं है। यदि वैसा संभव होता तों आज कोई मक्कार स्त्री या पुरुष जो अपने असल बाप का न होगा वहीं हमें भगवान समझेगा और अपना तन मन धन सर्वस्व अर्पण करेगा। यह कहकर आसानी से किसी का सर्वस्व हरण कर सकता है।

"भीड़ने बड़े-बड़े झूंठ स्वीकार किये हैं" परन्तु भीड़ से ही बड़े-बड़े बुद्धिमान भी निकला करते हैं। अतः हमेशा वह झूठ के साथ नहीं रहती है। काठ की हाण्डी एक ही बार आग पर चढ़ती है। बार बार नहीं। जो संसार के सभी लोगों को मूर्ख मानकर अपने आप को बुद्धिमान मानता है वह भी उन्हीं में परिगणित होता है।

रजनीश जी की बातें स्वयं ही परस्पर विरुद्ध होती हैं। वे कहते हैं एक नया असत्य मनुष्य के मन को पकड़े है समाजवाद के नाम से, उसकी पूरी व्याख्या समझ लेनी जरूरी है। पहली बात तो यह है कि समाजवाद पूंजीवादके विरोध में शत्रु की भांति खड़ा है। समाजवाद जो कुछ भी हो पूंजीवाद की सन्तान है। सामन्तवाद की व्यवस्था से पूजीवाद पैदा हुआ। अगर पूजीवाद ठीक से विकसित हो तो उससे समाजवाद पैदा हो सकता है। अगर समाजवाद ठीक से विकसित हो तो उससे साम्वयाद पैदा हो सकता है।"

परन्तु उन्होंने यह नहीं सोचा कि यदि समाजवाद सम्राट् के झूठे कपड़ों के समान अत्यन्त असत् है तो उसकी सत्ता क्या हो सकती है? और वह फिर पूंजीवाद का सन्तान कैसे हो सकता है? उन्हों ने यह भी नहीं सोचा कि जब सामन्तवाद से पैदा हुआ पूंजीवाद सत्य है तो पूंजीवाद से पैदा हुआ समाजवाद भी सत्य क्यों नहीं? स्पष्ट है कि उनके उक्त कथन से सम्राट् के कपड़ों वाली कहानी निःसार हो जाती है।

"बच्चे माँ के पेट में से समय से पहले पैदा हो सकते हैं और माँ आतुर हो सकती है कि नौ महीना क्यों प्रतिक्षा करूं। पाँच ही महीने में अगर बच्चा निकल आये पेटसे तो ज्यादा अच्छा है, ४ महीने का कष्ट बचेगा, प्रतिक्षा भी बचेगी और बेटे से अभी मिलन हो जायगा। लेकिन पाँच महीने के बेटे मुर्दा होते हैं जिन्दा नहीं। अगर जिंदा पैदा हो जाये तो जिन्दगी भर मुर्दे से भी बदतर उनकी हालत होगी।"

रजनीशके उक्त कथन से सिद्ध होता है कि समाजवाद अत्यन्त असत् नहीं है। पूजीवाद से वैसे ही पैदा होता है जैसे सामन्तवाद से पूंजीवाद। हां समय के पहले पैदा होनेसे वह मुर्दा से भी बदतर होता है। परन्तु इतना और समझना चाहिए कि जैसे सामन्तवाद को खत्म करने से ही पूंजीवाद विकसित हुआ है। वैसे ही पूंजीवाद को खत्म करने से ही समाजवाद विकसित होगा।

उनका कहना है कि "रूसमें समाजवाद पैदा हुआ। वह भी जरूरत से (समय से) पहले पैदा हुआ है। रूस पूंजीवाद मुल्क नहीं था। इसी लिए रूस में समाजवाद को जबरदस्ती पैदा करने की कोशिश की गयी।

समाजवाद तो पैदा हुआ लेकिन मुर्दा पैदा हुआ। समाजवाद जिन गरीबों के लिए पैदा हुआ उनकी लाखोंकी संख्यामें हत्या भी करनी पड़ी, शायद मनुष्य जाति के इतिहास में समाजवादी मुल्कोंने जितनी हत्याएं की हैं उतनी किसी ने नहीं की है। आश्चर्य तो यह है कि जिन गरीबों और मजदूरों के लिए और शोषितों के लिए समाजवाद खड़ा हुआ था उन्हीं की हत्या की गयी है।" यह पैदाइस इसी तरह होती है। वस्तुतः उस पैदाइस से इस पैदाइस में विलक्षणता होती है। साधारणतया बच्चा पैदा होने के बाद भी माँ बनी रहती है। बच्चे का सुख अनुभव करती है पर प्रकृत में ऐसा नहीं होता है।

सामन्तवाद से पूंजीवाद पैदा हुआ खत्म हो गया उसी तरह पूंजीवाद समाजवाद के पैदा होने से पूंजीवाद भी मर जाता है। वह पुत्र जन्मका सुख नहीं देख पाता है। कहीं भी पूंजीवाद के विकास से ही समाजवाद पैदा होता है। हत्याएं तो प्रसव पीड़ा के समान सभी व्यवस्था के आविर्भावमें अनिवार्य रूपसे

किसी न किसी रूप में आती ही है। वेन्थम आदि व्यक्ति स्वतन्त्रवादी भी तो व्यक्ति स्वतंत्रता के लिए ही व्यक्तियों को दण्ड़ित करने की आवश्यकता मानते हैं।

पूंजीवाद के पेट से समाजवाद का जन्म होता है इसका इतना ही अर्थ हैं कि पूंजीवाद के कारण एक-एक नगर में सैकड़ों मिलें कारखाने खुलते हैं। उनमें लाखों मजदूर काम करते हैं। वे सरलता से लाखों की संख्या में इकट्ठे हो सकते हैं संघटित हो सकते हैं। अपनी सम्मिलित शक्तिशाली आवाज बुलंद कर सकते हैं। पूंजीपति या सरकारों को प्रभावित कर सकते हैं। यह सब पूंजीवाद के विकास बिना सम्भव नहीं था। अपने-अपने घरों से गाँठ का पैसा खर्च करके किसी सभा में सैकड़ों या हजारों की संख्या में उनका इक-ट्ठा होना सम्भव नहीं था। यह सब पूंजीवादी व्यवस्था से ही सम्भव होता है। देश की कोने-कोने की मिलों, कल कारखानों के मजदूर एकत्रित संघटित होकर शोषक वर्ग का विध्वंस करके सर्वहारा के नेतृत्वमें समाजवादी व्यवस्था कायम कर सकते हैं। यही पूंजीवादसे समाजवादके जन्म का अर्थ है किसी भी व्यवस्थाके कार्यान्वित होने में कुछ गलतियाँ भी हो सकती है, किसी अंशमें कुछ कमजोरी भी संभव है। परन्तु रूसी समाजवाद को मुर्दा या कमजोर तो नहीं कहा जा सकता। तभी तो पूंजीवादी अमेरिका को भी झखमारकर उसके सामने झुकना पड़ता है, समझौता करके उससे सम्बन्ध सुधारने का प्रयत्न करना पड़ता है।

इस कथन में कुछ सार नहीं है कि "रूस में एक करोड़ पूंजीपति न थे। एक करोड़ पूंजीपति तो अमरीका में भी नहीं हैं फिर रूस में अन्दाजन एक करोड़ लोगोंकी हत्या हुई। वह किसकी हत्या थी। यह उनकी ही हत्या थी जिनके लिए समाजवाद लाना था। हत्या करना आसान हो जाता है अगर आपके हितमें हत्या करनी हो, जब कोई हत्यारा आपके ही हित में हत्या करता है तो आप भी निहत्थे हो जाते हैं। बचाव भी नहीं कर सकते।" क्यों कि उक्त लेखक पूंजीपति का अर्थ ही नहीं जानता है। समाजवादी धनकुबेर को ही मिल मालिक को ही पूंजीपति नहीं मानते हैं किन्तु उत्पादन के साधनों का

व्यक्तिगत होना ही पूंजीवाद है। इस दृष्टि से—खान, खेत, दुकान, उद्योग-धन्धे वाले सभी पूंजीपति होते हैं। कम या ज्यादा भूमि, सम्पत्ति कल कारखाने, खनिज क्षेत्र अधिकांश लोगों के पास होते हैं। वे सभी पूंजीपति हैं। उत्पादन साधन के मालिक हैं। छोटा से छोटा खेत वाला अपना खेत छोड़ना नहीं चाहता है। ऐसे सभी अपनी पूंजी की रक्षा के लिए संघटित होते हैं। कोई भी अपने छोटे लाभ के सामने महान् हित का महत्व नहीं समझता है। चीन आदि में कई मिल मालिकों को हजारों नहीं लाखों का मुवाविजा मिलता है। जिसे वे भोजन, वस्त्र मोटर आदि पर खर्च कर सकते हैं, पर उससे उत्पादन नहीं कर सकते, मुनाफा कमाने पर प्रतिबन्ध है। ऐसे पूंजीपति सभी राष्ट्रों में करोड़ों की संख्या में होते हैं। केवल करोड़पति या मिल मालिक को ही पूंजीपति मानना असंगत एवं तर्क शून्य है। रूस में करोड़ों की संख्या में गरीब मारे गये यह विरोधी पूंजीपतियों का प्रचार मात्र है।

इसी तरह अपने हित में भी हत्या के लिए कोई भी निहत्था नहीं होता है। "वरमद्य कपोतः श्वो मयूरात्"। कल के बड़े लाभ की अपेक्षा आज का छोटा लाभ ही आदरणीय होता है। इसी लिए स्वर्ग या वैकुण्ठ के लिए भी कोई प्राणी आत्म हत्या के लिए निहत्था नहीं होता।

कहा जाता है कि पिछले दश वर्षों से "रूस रोज पूंजीवाद की ओर बढ़ रहा है। वह जो भूल हो गयी उसकी तरफ वापस कदम उठा रहा है। माओ त्से तुंग का रूस में जो विरोध है। वह यही है कि रूस रोज पूंजीवादी होता चला जा रहा है।"

वह भी निःसार है और पूंजीवाद की परिभाषा न जानने के कारण ही है। कल-कारखाने, उद्योग-धन्धे, मुनाफा कमाने के साधन अभी भी वहां व्यक्तिगत नहीं हैं। खेती में व्यक्तिगत होने से अवनति होती है कि प्रगति इस सम्बन्ध में छानबीन के तौर पर रूस में हुए परीक्षणों को देख कर किन्हीं लोगों को उसके पूंजीवाद की ओर बढ़ने का भ्रम होता है। वस्तुस्थिति को देखते हुए पूंजीवादी राष्ट्रों से

भी रूस सह अस्तित्व के आधार पर सम्बन्ध जोड़ता है। रूसी अमरीकी सम्बन्ध को ही चीन में रूस का पूंजीवाद की ओर बढ़ना माना जाता है। परन्तु अब चीन का भी अमरीका से सम्बन्ध बढ़ ही रहा है।

"पूंजीवाद ठीक से विकसित हो तो समाजवाद उसका सहज परिणाम है। नौ महीने गर्भ हो तो बच्चा सहज और चुप चाप पैदा हो जाता है। पूंजीवाद का ठीक विकास न हो तो समाजवाद की बात आत्मघाती है।

रजनीश जी के इस कथन से यह तो स्पष्ट हो जाता है कि समाजवाद वन्ध्यापुत्रवत् खपुष्पवत् सम्राट् के झूठे कपड़े जैसी वस्तु नहीं है किन्तु वह पूंजीवाद से उत्पन्न होने वाली वस्तुस्थिति है।

वास्तविक समाजवाद अभी भूमि पर नहीं

"रजनीश स्वयं भी कहते हैं कि मैं खुद समाजवादी हूं फिर समाजवाद से सावधान की बात करूंगा तो हैरानी होगी। हैरानी यह है कि मैं भी चाहता हूं कि बच्चा पैदा हो लेकिन नौ महीने पूरे हो जायें। यह देश अभी समाजवादी भी नहीं हैं। (पृष्ठ ८)

परन्तु रजनीश को मालूम होना चाहिए कि अभी तक समाजवाद वास्तविक अर्थ में कहीं भी नहीं है। न तो रूस में और न चीन में। लेनिन के मित्रों ने लेनिन से कहा था कि एगुंल्स और मार्क्स के अनुसार सर्वहारा के अधिनायकत्व में समाजवाद की स्थापना होगी। परन्तु उसमें राज्यलोप होना आवश्यक है। संसद, विधानसभाओं का भंग होना, निम्न, उच्च और सर्वोच्च न्यायायलयों का भंग होना आवश्यक हैं। पुलिस, गुप्तचर (सेना) भी खत्म होनी आवश्यक है। जैसे एक कुटुम्ब के सदस्य आपसी समस्या सुलझाने के लिए पुलिस, सेना का सहारा नहीं लेते, संसद या न्यायालय का सहारा बिना लिये ही अपना काम चला लेते हैं, उसी तरह जब सम्पूर्ण राष्ट्र के ही नहीं किन्तु सम्पूर्ण विश्व के लोग एक कुटुम्ब के सदस्य के समान बिना पुलिस

पल्टन, कोर्ट या संसद का सहारा लिये ही अपनी समस्याओं का समाधान आपसी तौर पर ही कर लेते हैं, तभी समाजवाद की रूप रेखा सफल मानी जायगी। अतः लाल सेना का संगठन, शक्तिशाली गुप्तचर विभाग आदि की आवश्यकता नहीं, अब तो राज्य लोप के द्वारा वास्तविक समाजवाद की व्यवस्था का प्रयत्न होना चाहिए।

इसपर लेनिन ने कहा था कि यह समाजवाद का संक्रमण काल है। इस समय राज्य लोप की बात सोचना बहुत ही खतरनाक है।

यह संक्रमण काल कब तक रहेगा? ऐसा मित्रों के पूछने पर उन्होंने उत्तर यह दिया था कि "जबतक संसारके किसी कोनेमें भी पूंजीवाद रहेगा, तबतक संक्रमण काल रहेगा। जब कहीं भी व्यक्तिगत—सम्पत्ति, भूमि आदि मुनाफा कमाने के साधन न रह जायंगे, एक इञ्च भूमि और एक-एक पान की दूकानें भी राष्ट्रीकृत हो जायेंगी, जब तक लालरूस, लालचीन के समान सारा संसार लाल न हो जायगा, अमरीका, फ्रांस, इंग्लैण्ड आदि लाल न हो जायंगे, सम्पूर्ण संसार की पूंजी व्यक्तिगत सम्पत्ति, समाज या सरकार की नहीं हो जाती है, तब तक समाजवाद का संक्रमण काल है। इस बीच अगर राज्य लोप हो जाय, पुलिस, सेना, कोर्ट भंग कर दिये जायं तो विरोधी ताकतें रूस को दो मिनट में खत्म कर सकती हैं, फिर समाजवाद लाखों बरसों के लिए भी असम्भव हो जायगा। अतः जब तक सारा संसार लाल नहीं हो जाता है, तब तक राज्य लोपकी बात सोचना खतरनाक हो सकता है। तबतक सर्वहारा का अधिनायक ही रहना उचित है।"

इस दृष्टि से अभी तक समाजवाद भारत में ही नहीं, कहीं भी नहीं आया है। व्यवहारतः उत्पादन साधनों का सरकारीकरण ही समाजवाद है। समाज के नाम पर सब उत्पादन सरकार के हाथ में आ जाते हैं। सरकारें कुछ व्यक्तियों के हाथ की चीजें रहती हैं। अतएव पूंजीवाद के पूर्ण विकास होने पर ही समाजवाद आता है। अभी समाजवाद की बात करना वैसा ही खतरनाक है, जैसा रूस चीन के लिए था।

यह कहना भी निःसार है क्योंकि पूंजीवाद का विकास इसलिए अपेक्षित होता है कि उसी के द्वारा लाखों मजदूर एकत्रित एवं संघटित होकर पूंजीवाद के विरुद्ध आवाज उठाने के लायक हो सकते हैं। अगर वही चीज प्रकारान्तर से भी सम्भव हो, तो वह भी मान्य है।

समाजवाद के लिए लोकतान्त्रिक विधि

इसीलिए कार्ल मार्क्स ने यह भी कहा था कि 'इंग्लैण्ड, फ्राँस जैसे देशोंमें संसदीय व्यवस्था से भी समाजवाद लाया जा सकता है। संसद में बहुमत बना कर सम्पूर्ण उत्पादन साधनों के राष्ट्रीकरण का प्रस्ताव पारित कर या अध्यादेश के द्वारा भी उद्योग धन्धों का, कल कारखानों का तथा कोयला, पेट्रोल, डीजल, लोहा आदि खानों का राष्ट्रीकरण किया जा सकता है'', जैसा कि आज प्रायः सभी देशों में हो रहा है। यह दूसरी बात है कि आज वह काम धीरे-धीरे किया जा रहा है। कार्ल मार्क्स ने यह भी कहा था कि 'एक नीतिज्ञ को अपनी सारी बातें, सारी योजनाएं जनता के सामने नहीं रख देनी चाहिए, किन्तु जितनी-जितनी बात जनता के पेट में हजम हो सकती हैं, उतनी ही बात रखनी चाहिए। एकाएक सब वस्तुओं के सरकारीकरण का प्रस्ताव करने से जनता बगावत कर सकती है। अतः क्रम से शनैः शनैः समाजीकरण की नीति अपनानी चाहिए। जैसा कि भारत में पहले छोटे राज्यों, फिर बड़े राज्यों, फिर जमींदारियों जागीरदारियों, का राष्ट्रीयकरण हुआ। धीरे-धीरे काश्तकारियों और बड़े छोटे उद्योगों का राष्ट्रीकरण किया जा रहा है।

संसार में बहुत धन हो जाने पर देश की गरीबी मिट जाने से समाजवाद बनेगा, यह कल्पना युक्तिहीन एवं निःसार है। प्राणी की तृष्णाका अन्त नहीं होता। एक व्यक्ति को ही अखण्ड भूमण्डल का राज्य मिल जाने और संसार भरके ब्रीहि, यव, हिरण्य, रत्न तथा मोटर, वायुयान, हस्ति, अश्व, रथ तथा सम्पूर्ण युवतियों के मिल जाने पर भी नहीं, शान्ति से ही तृष्णा मिटती है—

यत्पृथिव्यां व्रीहि यवं हिरण्यं पशवः स्त्रियः ।
सर्वं नैकस्य पर्याप्त मिति मत्वा शमे व्रजेत् ॥

पूंजीवाद का स्वरूप

कहा जाता है कि पूंजीवाद गाली नहीं है, निन्दा नहीं है। पूंजीवाद ही मनुष्य जाति को समाजवाद तक पहुंचाने की प्रक्रिया है। अगर मनुष्य कभी समान होगा और अगर कभी सारे मनुष्य खुशहाल होंगे और सारे मनुष्य दीनता दरिद्रता से मुक्त होंगे तो उसमें शत प्रतिशत हाथ पूंजीवाद का होगा। (पृ० ९)

यह सर्वथा असंगत है। समाजवाद के अनुसार पूंजीवाद सर्वथा शोषण पर आधारित होता है। जब तक शोषण तथा शोषक-शोषित वर्गभेद न रहेंगे तब तक पूंजीवाद पनप ही नहीं सकता है। पूंजीवादी महंगायी क़ायम रखने के लिए लाखों टन चीनी, गेहूं, समुद्र में डुबा देगा, परन्तु गेहूं, चीनी सस्ता नहीं होने देगा क्यों कि वैसा होने पर मुनाफा का रास्ता बन्द हो जाता है। पूंजी की तो बात ही क्या कोई भी विशेष उपभोग सामग्री संकलन बिना भूतों का उपघात किये संभव नहीं है। "नहि भूतान्यनुपहत्य भोगः संभवति" फिर बिना भूतों के उपघात किये अधिकाधिक सम्पत्ति कैसे जुट सकती है ?

महाभारत में अनेक धर्म नियन्त्रित राजाओं के पास ऋषि लोग शुद्ध धन प्राप्त करने के लिए गये। जब राजाओं ने अपना स्पष्ट सत्य आय व्यय रखा तो उसमें एक पैसे की गुञ्जाइस नहीं थी, जिसे ऋषि पवित्र धन समझ कर ले सकते थे।

लोमश ने कहा कि एक बार अगस्त्य ऋषि को धन की आवश्यकता पड़ी। वे भिक्षा से, धन प्राप्त करने की इच्छा से महाराज श्रुतर्वा के पास गये, जो सभी राजाओं में पैसे की दृष्टि से अधिक धनवान समझे जाते थे।

श्रुर्त्वा से अगस्त्य महर्षि ने कहा कि राजन् मैं धन के लिए आपके पास आया हूं, किन्तु मुझे ऐसा धन चाहिए कि जिसके लेने से किसी को कष्ट न हो। राजा श्रुर्त्वा ने आय-व्यय का सारा लेखा-जोखा अगस्त्य ऋषि के सम्मुख रखते हुए कहा कि, भगवन् आय-व्यय देख लीजिए और जितनी जिस चीज की आवश्यकता हो ले लीजिए। अगस्त्य ऋषि ने जांच करने पर आय-व्यय बराबर पाया और सोचा कि यदि हम इसमें से धन लेंगे तो घाटे का बजट बनकर टैक्स लगेगा, उससे प्रजा को पीड़ा होगी, इसलिए यह धन लेना उचित नहीं। फिर श्रुर्त्वा को लेकर वे ब्रध्नश्व के पास गये।

स श्रुतर्वाण मादाय ब्रध्नश्वमगमत्ततः।' (म० भा० व० प (६।५७-८)

तत आय-व्ययौ दृष्टवा सममर्ति द्विजः।

सर्वथा प्राणिनां पीड़ा मुपादानादमन्यत ॥

अगस्त्य महर्षि ने ब्रध्नश्व से धन की याचना की। वहाँ भी आय व्यय बराबर रहा, अतः वहाँ भी पैसा लेना उचित नहीं प्रतीत हुआ। वहाँ से धन की इच्छा से महर्षि अगस्त्य और दोनों राजे पुरुकुत्सव के पुत्र महाधनी त्रसद्-दस्यु के पास गये। वहाँ भी आय व्यय बराबर था। पैसा लेने से प्रजा को पीड़ा होगी, इसी लिए वहाँसे भी पैसा लेना अगस्त्य महर्षिको उचित नहीं प्रतीत हुआ। फिर इन तीनों राजाओंने परस्पर विचार विनमय कर अगस्त्य ऋषि से कहा कि भगवान्! यहाँ इल्वल नामक दानव बहुत सम्पत्तिशाली है। उसके पास धन के लिए चलना चाहिए। फिर यहीं तय हुआ और सभी लौग इल्वल के पास गये।

जो कहा जाता है कि 'यह पूंजीवाद पूंजी उत्पन्न करने की व्यवस्था का नाम है, यह एक ऐसी व्यवस्था है जो सम्पत्ति का सृजन करती हैं। दुनियाँ में पूजीवाद के पहले किसी व्यवस्था ने पूंजी पैदा नहीं की थी।

पूंजीवाद ने पूंजी पैदा की है। पैदा करने का मतलब यह कि ऐसी पूंजी जमीन पर पैदा की है, जो आदमी अगर पैदा न करता तो खदानों से न निकलती, जामीन से न निकलती, आकाश से न निकलती। आज

जमीन पर जो पूंजी है वह पैदा की गयी पूंजी है, वह कोई प्राकृतिक सम्पत्ति नहीं है, जो किसी खदान से मिलती हो, किसी झरने से या जमीन से मिलती है, किसी प्रकृति से किसी जागह से मिलती हो। पूंजीवादने पिछले डेढ़ सौ वर्षों से पूंजी पैदा करने की व्यवस्था ईजाद की है। इसके पहले जो भी व्यवस्था थी वे लुटेरी व्यवस्थाएं थीं। चँगेज हो, या तैमूर लंग या दुनिया का कोई सम्राट् हो, सामन्तों ने पूंजीको लूटा था, शोषण हुआ था। लेकिन पूंजीवाद ने पूंजी पैदा की है और हम सामन्तवादियों के साथ ही पूंजी को भी रखने के आदी हो गये हैं।

हम समझते हैं कि पूंजीवाद ने भी पूंजी का शोषण किया है। पूंजीवाद ने पूंजी निर्मित की है और पूंजी निर्मित की जाय तो उसका बंटवारा हो सकता है। पूंजी अगर निर्मित न हो तो बटवारा किस चीज का होगा ?

लोग नासमझी से कहते हैं समाजवाद आ सकता है। सम्पति बाँटी जा सकती है। देश के पास सम्पत्ति नहीं है। अगर आज हम बाँटेगें तो सिर्फ गरीबी बंटेगी, धन नहीं बंट सकता, धन है ही नहीं। धन होना चाहिए बाँटने के लिए, बंटने के पहले होना चाहिये धन।

पूंजीवाद सम्पत्ति पैदा करता है, लेकिन पैदा करना है पहला काम, बाँटना दूसरा काम है। पूंजीवाद सम्पत्ति पैदा करे तो समाजवाद सिर्फ गरीबी बाँट सकता है। अगर हमारे देश ने समाजवादी होने का निर्णय किया तो हम सदा के लिए गरीब होने का निर्णय करेगें। क्यों कि हम गरीबी बाँट कर रह जायेंगे, कुछ भी न कर पायेंगें। क्यों कि पूंजी पैदा करनेकी व्यवस्था का सूत्र हमारे ध्यान में नहीं है।" पृ० ९-१०

रजनीश का यह सारा मत असंगत है, क्योंकि पूंजीवाद की उक्त परिभाषा ही गलत है। सम्पति तो समाजवादी भी पैदा करते ही हैं। आज जैसे अमरीकी कल-कारखाने सम्पत्ति पैदा कर रहे वैसे ही रूसी, चीनी, भारतीय कल-कारखाने सम्पत्ति पैदा कर ही रहे हैं हैं। भेद सिर्फ इतना होता है कि पूंजीवाद में व्यक्ति विशेष वैयक्तिक मुनाफा के लिए सम्पत्ति पैदा करता है। समाजवाद में सरकारी कारखाने सामाजिक

हित के लिए सम्पत्ति पैदा करते हैं। इसलिए सम्पत्ति पैदा करने की व्यवस्था का नाम पूंजीवाद है, यह लक्षण समाजवाद में अतिव्याप्त है।

वस्तुतः सर्वदा ही सम्पत्ति पैदा करने की व्यवस्था सभी युगों में थी। पूर्वोक्त सम्राटों की शासन व्यवस्था को लुटेरी व्यवस्था कहना इतिहास की अपनी अनभिज्ञता ही प्रकट करना है। अतएव 'पिछले डेढ़ सौ वर्षोंसे सम्पत्ति पैदा करने की व्यवस्था प्रचलित हुई है', यह कहना भी कूप मण्डूकता ही है।

सोने की बनी लङ्का, सोने तथा हीरक आदि रत्नों की बनी हुई द्वारका के समय दुनिया में सम्पत्ति कम थी, यह कहना केवल अज्ञ-जन प्रतारणमात्र है। डेढ़ सौ वर्ष मात्र से सम्पत्ति उत्पादन की व्यवस्था हुई है, यह कहना सार हीन है।

शायद औद्यौगिक क्रान्ति, वैज्ञानिक विकास से स्थापित कल कारखानों द्वारा होने वाले पक्के माल को ही रजनीश जी सम्पत्ति मानते हैं। क्यों कि वहीं पिछले ड़ेढ़ सौ वर्ष की ईजाद हैं। परन्तु यह समझना भी भ्रम है। क्यों कि चीनी, कपड़ा, लोहा, मोटर, वायुयान नाना प्रकार की मशीनों का निर्माण औद्योगिक क्रान्ति का ही परिणाम है। पर यह क्या सम्पत्ति नहीं है? यदि है तो क्या वह सब भूमि, खानों तथा खनिज पदार्थों से नहीं उत्पन्न होते? वस्तुतः कच्चे माल के बिना कोई भी सम्पत्ति पैदा ही नहीं होती।

वस्तुतः अर्थशास्त्रके अनुसार सम्पत्ति अर्थ का ही रूपान्तर है। कौटिल्यने मनुष्यवती भूमिको ही अर्थ माना है। उसीमें ब्रीहि, गोधूम, चीनी, घृत दुग्धादि विविध ऊर्णा, रेशम, कार्पासमय वस्त्रों, लोहा, स्वर्ण, हीरक, मुक्तामाणिक्य आदि की खाने, कोयला, डीजल, पेट्रोल आदि पदार्थों, हस्ति, अश्व, रथ, मृत्तर, वायुयानादि सबका अन्तर्भाव हो जाता है। उनमें ब्रीहि, यव, चीनी, वस्त्र, मोटरादि पैदा किए जाते हैं। परन्तु भूमि, खान, खनिज, लोहादि पेट्रोल आदि कुछ प्राकृतिक हैं, कुछ का परिष्कार मात्र करना पड़ता है। स्वभाविक रूप से पशु, पक्षी, कीड़े, मकोड़े आदि सूर्योदय होते ही या जगनेसे सोने तक की भोजन की तलाश या उपार्जन में लगे रहते हैं। क्षुधा, पीपासा जाड़ा, वर्षा, आतप से त्राण पाने के लिए, व्याधियों से छुटकारा पाने के लिए

प्रयत्नशील रहते हैं। चारा, पानी, आवास स्थान, औषधादि की प्राप्तिके लिए सभी चिन्तित और व्यस्त रहते हैं। मनुष्यप्राणी विशेष रूप से दीर्घकाल तक उत्तम भोजन, पान विविध भोग, आमोद प्रमोद, वस्त्र, भूषण, भवन, औषध आदि के सौलभ्यार्थ अधिकाधिक भोग सामाग्रियों का संग्रह करता है। प्रत्यक्ष भोग सामाग्रियों की स्थिरता सीमित हो जाती है। अतः सोना, हीरा, मणि विविध रत्नों का संग्रह मुद्राओं एवं नोटों, हुन्डियों का आविष्कार करता है। जैसे क्षुधा, पिपासा आदि अनादि हैं, उसी तरह उनके निवारणार्थ तथा संभोग सुखार्थ, वार्ता, विद्या द्वारा विविध जीविका साधनों के संग्रहमें लगा रहता है। साम्राज्यवाद, सामान्तवाद, पूंजीवाद, समाजवाद सभी उत्पादन तथा वितरण विविध व्यवस्थाओं के लिए ही हैं।

धर्मविहीन समाजवाद घातक

वस्तुतः धर्मनिरपेक्ष भौतिक पूंजीवाद, भौतिक समाजवाद सभी अपूर्ण और सदोष हैं। धर्महीन साम्राज्यवाद, सामन्तवाद भी हितकारी नहीं है। वार्ता विद्या द्वारा पर्याप्त सम्पत्ति पैदा करने पर भी प्रबल लोग दुर्बलों की कमाई का अपहरण करते हैं। इस तरह कमाता और है खाता और है। कमाने वालों की कमाई को दूसरे लोग खा जाते हैं। कमाने वालों को अपनी कमाई का फल भोगना असम्भव हो जाता है। इसीलिए दण्डनीति व्यवस्था का जन्म हुआ। मात्स्य-न्याय से पीड़ित प्रजा ने सामाजिक समझौते या प्रजापति के उपदेश से शासन व्यवस्था स्वीकार किया। शासन को निग्रहा नुग्रहका अधिकार प्रदान किया। उसे कर देना अंगीकार किया फिर भी सज्जनों का सच्चा शासक उनका गुरू या आचार्य ही होता है। राजा का शासन तो दुरात्माओं पर ही होता है। परन्तु शासन के सामने भी अनिवार्य कठिनाइयाँ होती हैं। कोई भी शासन संविधान के अनुसार ही होता है। परन्तु संविधान निरपेक्ष नहीं होता। अगर कोई हत्या करके फरार हो जाय, पकड़ में न आवे तो संविधान कुछ भी नहीं कर सकता और जब तक कोई प्रत्यक्षदर्शी साक्षी (गवाह) न मिले तो भी वह कुछ नहीं कर सकता। साक्षी मिथ्या वादी हो सकता है। अतएव प्रच्छन्न पातकी प्राणी कानून से बच सकता है। अतएव—

"तथा प्रच्छन्नपापानां शास्ता वैवस्वतो यमः।"

प्रच्छन्न पापवाले प्राणियों का शासन राजा नहीं कर सकता। किन्तु उसका शासन अन्तर्यामी वैवस्वत यम ही करते हैं। अतएव धर्मनियन्त्रित शासक ही यथायोग्य दुष्ट-निग्रह एवं शिष्टानुग्रह कर सकता है।

वेदों एवं महाभारत आदि ग्रन्थों के अनुसार अनेक यन्त्रों का आविष्कार पूर्वकाल में भी हो चुके हैं। अतः अनेक यन्त्रों के आविष्कार समय-समय पर होते ही रहते हैं। वर्तमान भौतिक पूंजीवाद एवं भौतिक समाजवाद की परिभाषा पूर्वोक्त ही है। उत्पादन साधनों का वैयक्तिक होना पूंजीवाद है, सामाजिक होना समाजवाद है।

यह कहना अंशतः ठीक हो सकता है कि "दुनियाँ के सारे लोगों ने मिलकर पूंजी नहीं पैदा की है। बिल्कुल थोड़े से लोगों ने पूंजी पैदा की है। कोई एक फेलर, कोई एक मार्गन, कोई एक फोर्ड, कोई एक चाइल्ड, कोई एक बिड़ला, कोई टाटा, कोई साहू, पूजी पैदा करता है। अगर अमरीका दश के बड़े नाम निकाल दिये जायं तो, अमरीका हमारे जैसा ही गरीब देश हो जायेगा।" (पृष्ठ १०) यह भी कथन निःसार है।

रजनीश के अनुसार बड़ी मात्रा में सम्पत्ति ही पूजी है। परन्तु यह गलत है, छोटा सोना भी बड़े सोने के समान सोना ही है। बड़प्पन की कोई सीमा भी नहीं है। सहस्रपति की अपेक्षा लक्षपति, लक्षपतिकी अपेक्षा कोटिपति उससे अर्बुदपति पूजीपति कहे जा सकते हैं। छोटी-छोटी मात्रा ही बढ़कर बड़ी मात्रा होती है। अकेला व्यक्ति कोई बड़ी सम्पत्ति नहीं उपार्जित कर सकता है। पूंजी मशीन, कच्चामाल और मजदूरों के द्वारा ही पक्का माल तय्यार होता है। बाजार में बिकता है। उस दाम मेंसे ही कच्चा माल का दाम, मशीनों का भाड़ा, मजदूरों का वेतन, सरकारी टैक्स निकालकर अविष्ट धन पूंजीपति के जेब में जाकर उसकी सम्पत्ति बन जाती है। कोई व्यक्ति-विशेष ही धनोपार्जन कर सकता है, यह भी अन्ध विश्वास ही है। यदि सम्पत्ति के लिए व्यक्ति का वैचित्र्य ही ढूढ़ना होता तो फिर धर्म या उपासना विशेष ही ऐश्वर्य का हेतु ठहरता है और उसके लिये जाति विशेष का भी महत्व सिद्ध होता ही है।

कई लोग वर्तमान अर्थोन्नति का मूल वैज्ञानिक यन्त्रों को मानते हैं। कोई प्रकृतिक कच्चे माल को, कई पूंजी को, कई प्रबन्धकों को अर्थोन्नति का मूल मानते हैं। मार्क्स ने मजदूर श्रम को ही विनमय मूल्य का आधार मान है, मशीन जड़ है, पूंजी जड़ है कच्चामाल भी जड़ है। पूंजीपति चेतन अवश्य है परन्तु उसका सम्बन्ध उत्पादन से नहीं है। पूजी द्वारा ही उसका उत्पादन में उपयोग है। अतः कच्चे माल का दाम, मशीनका भाड़ा, घिसायी, सरकारी टैक्स एवं पूंजी का सूद चुका देने पर सम्पूर्ण धन मजदूर के परिश्रम का ही फल ठहरता है।

आज कल बैंकों से पूंजीपति भी कर्ज लेकर उत्पादन करते हैं। बैंकों को सूद सहित पूंजी लौटा देते हैं। फल के भागी उत्पादक ही माने जाते हैं। यदि क्रमेण मशीनों, मकानों, कच्चे मालों पर लगी हुई सम्पत्तिको सूद सहित लौटा दिया जाय तो सम्पूर्ण लाभ मजदूरों के ही हिस्से का ठहरता है।

अनेक अवस्थाओं में पूंजीपति केवल पूंजीपति होने के नाते ही उत्पादन के लाभ का भागी होता है। लाभ के मुख्य हेतु प्रवन्धक मैनेजर आदि होते हैं, जो कि वेतन भोगी मजदूरों के ही श्रेणियों में आते हैं। विशिष्ट कारीगरों, इन्जीनियरों, मशीनों एवं प्रबन्धकों के आधार पर लाभ में वृद्धिहोती है। पूंजीपति की पूंजी उनके वेतनों में खर्च होती है, बस, इसी लिए वह लाभ का भागीदार होता है। समाजवाद में भी कारीगरों, विशेषज्ञों प्रबन्धकों का महत्व होता है। उनका संकलन और संमान भी किया जाता है। योग्यता की विशेषतासे उनके काम, दाम, आराम में भी विशेषता समाज वाद में भी मान्य होती है। अतएव चपरासी और एक इन्जीनियर के काम दाम आराम में विशेषता होती है। उन एक फेलर, मार्गन, फोर्ड, टाटा आदिकों के समान ही कार्य विशेषज्ञ, प्रबन्ध विशेषज्ञ भी सब नहीं होते। परन्तु समाज में सभी प्रकार के लोग मिल ही जाते हैं। समाजवाद में उन सब का यथायोग्य विनियोग होता है। आज व्यक्तिगत उद्योग-धन्धों के समान या उससे भी अधिक समाजवादी देशों के उद्योग धन्धे भी लाभदायक सिद्ध हो रहे हैं।

'हेनरी फोर्डने लन्दनमें जाकर इन्क्वायरी आफिस में क्लर्कसे सस्ता होटल पूछा। क्लर्क ने कहा—"आपके चेहरे को मैंने अखवारों में देखा है। लगता है आप हेनरी फोर्ड हैं। आप के बेटे - बेटियाँ सबसे मंहगे होटल खोजते हैं। आप सस्ता होटल क्यों खोज रहे हैं? फोर्ड ने कहा, मैं गरीब का बेटा हूं, मेरे बेटे हेनरी फोर्ड के बेटे हैं। मैंने सम्पत्ति पैदा की है। मैं गरीब का बेटा हूं। अतः सस्ता होटल बता दो।" (पृ० १०)

इस कथन से भी यही सिद्धहोता है कि सम्पत्ति पैदा करने वालों की कोई खास श्रेणी नहीं होती है।

वैसे तो यह भी कहा जा सकता है कि दुनिया में विशेषज्ञ भी सब नहीं होते। नेता भी सब लोग नहीं हो सकते, शासक भी सब नही हो सकते। इसके अतिरिक्त समाज सब वस्तुओं की खान होती है। जब उत्पादन साधनों का समाजीकरण होगा, तो समाज के जो व्यक्ति जिसके योग्य होंगे वे उस काम में लगाये जायेंगे। रूस एवं भारत में भी वड़े-बड़े कारखाने हैं। भारत का भिलाई, बोकारो आदि कारखाने सर्वाधिक प्रसिद्ध हैं। उनमें न केवल भारत से ही किन्तु अन्य देशों से भी विशेषज्ञों का संकलन करके उनकी नियुक्ति की गयी है।

यह कहना भी गलत है कि 'अमरीका के पास जो सम्पत्ति है वह कुछ लोगों के मस्तिस्क का आविष्कार है। कुछ लोगों की सम्पत्ति को पैदा करने की कला का परिणाम है। दुनिया ने क्यों नहीं सम्पत्ति पैदा कर ली। अभी हिन्दुस्थान सम्पत्ति क्यों नहीं पैदा कर सका। हमारी सबसे पुरानी कौम है और सबसे पुरानी हमारी संस्कृति है लेकिन हम सम्पत्ति क्यों नही पैदा कर पाये। (पृ०.१०)

सम्पत्ति कहीं भी सदा एकसी नही रहती है। भारतीय इतिहास, पुराणों के आधार पर हिंदुस्थान ने अनेक बार सम्पत्तियाँ पैदा की हैं। अनेक देश कभी सम्पत्तिमान हो जाते हैं, कभी-कभी दरिद्रहो जाते हैं। जैसे व्यक्ति कभी धनवान् कभी गरीब होते हैं। प्रारब्ध या पुरुषार्थ तथा प्रमाद होते रहते हैं। वैसे ही देशों की भी स्थिति होती है।

आप स्वयं ही मानते हैं कि 'अमरीका के दश बड़े नाम निकाल दिये जांय तो वह हमारे जैसा गरीब देश हो जायगा। भारत का डोम हरिश्चन्द्र जैसे सम्राट् को खरीद सकता है। रामचरित मानस के अनुसार—

जो सम्पदा नीच गृह सोहा।
तेहि विलोकि सुरनायक मोहा॥

भारतीय इतिहास को इतिहास ही न मानने की तो कोई इलाज ही नहीं। शास्त्रज्ञ आधुनिक इतिहासको ही इतिहास नहीं मानते हैं। आज टेलीप्रिन्टरों, संवाददाताओं के तारों के आधार पर, किसी सिक्के या ताम्र पाषाण के आधार पर जिस लेखों में भ्रांतियों की बहुत बड़ी गुंजायश रहती है, इतिहास रचा जाता है। फिर महर्षि बाल्मिकि, व्यास आदि की ऋतम्भरा प्रज्ञा के आधार पर निर्मित इतिहास प्रामाणिक क्यों नहीं? भारत में अनेक बार अमीरी और गरीबी आती जाती रही है। आप स्वयं ही पूंजी का इतिहास सवा सौ वर्ष का इतिहास मानते हैं। परन्तु किसी राष्ट्र के लिए सवा सौ वर्ष का समय कुछ भी नहीं होता। अरबों वर्ष की ऐतिहसिक स्थिति के सामने उसका मूल्य नहीं होता।

भारत सम्पत्ति विरोधी देश ?

यह कहना भी गलत है कि भारत सम्पत्ति विरोधी देश है। सम्पत्ति पैदा करने की दिशा में भारत की प्रतिभा नहीं, भारत की प्रतिभा संन्यास के दिशामें रही। जो आदमी फोर्ड बन सकता था, वह जंगल चला गया। भारत ने अपनी सारी प्रतिभा संन्यास की ओर लगाया। उसने बड़े संन्यासी पैदा किये। बुद्ध पैदा किया, शंकर पैदा किया, नागार्जुन पैदा किया, महावीर पैदा किया, लेकिन सम्पत्ति पैदा करनेवाले बड़े कुशल लोग पैदा न कर सका। उस तरफ उसकी प्रतिभा न गयी सम्पत्ति विरोध के कारण।" (पृ० ११)

क्योंकि भारतीय मस्तिष्क कभी एकांगी नहीं था। भारत ने जहाँ दत्तात्रेय, जड़ भरत, ऋषभ, दुर्वासा बुद्ध, शंकर, जैसे संन्यासी

पैदा किए वहाँ मान्धाता, दिलीप, अज, नहुष जैसे अपरिगणित अखण्ड भूमण्डल के चक्रवर्ती नरेन्द्र भी पैदा किये हैं। वहीं उसने बड़े-बड़े कुशल व्यापारी धनवान् भी पैदा किए थे। सम्राट् शक्ति की दृष्टि से ही श्रेष्ठ होता था। धन या सम्पत्ति की दृष्टि से तो वैश्य या व्यापारी ही श्रेष्ठ होता था। इसी लिए शासक क्षत्रिय सम्राट् की संख्या कम होती थी। वैश्य, व्यापारी, धनवान् की संख्या अधिक होती थी। कई भ्रान्त लोगों की ऐसी धारणा है कि भारत ने आध्यात्मिक उन्नति एवं त्याग वैराग्य में ही अपनी सारी प्रतिभा लगायी। लौकिक उन्नति, वैज्ञानिक आविष्कारसे वह सदा ही दूर रहा है। परन्तु वैसी धारणा मिथ्या ही है। भारत के प्रसिद्ध एक एक छोटे-छोटे सूत्र इन समस्याओं का समाधान करने में सक्षम हैं। भारत की नीति का एक प्रसिद्ध श्लोक है—

"अजरामरवत्प्राज्ञः विद्यामर्थञ्च चिन्तयेत्।
गृहित इव केशेषु मृत्युना धर्ममाचरेत्॥"

अर्थात् विद्वान् को चाहिए कि वह अपने को अजर अमर जैसा जानकर तत्परता से धन और विद्या के उपार्जन में संलग्न हो और मृत्युग्रस्त (मौत के चंगुल में फंसे हुए) के समान शीघ्रातिशीघ्र धर्माचरण में संलग्न रहे। हाँ, यह आवश्यक है कि भारत में हर एक वाद धर्म नियन्त्रित होने से ही प्रशंसनीय था। जहाँ भारत की राजनीति धर्म-नियन्त्रित थी वहीं भारत का अर्थतन्त्र भी धर्मनियन्त्रित ही था। पाश्चात्य देशों के पूंजीवाद, समाजवाद, साम्य-वाद लोकतन्त्र, अधिनायकतन्त्र सभी धर्म निरपेक्ष भौतिकवाद से ही अनुप्राणित है।

भारतीय अर्थतन्त्रपर सदा ही धर्म का नियन्त्रण रहा है। इसीलिये धर्मा-नुबन्ध, अर्थानुबन्ध एवं अननुबन्ध अर्थ को यहाँ सदा उपेक्षणीय माना गया था। श्री विदुर जी के ये वाक्य सदा स्मरणीय रहेंगे—

"अतिक्लेशें न ये ह्यर्था धर्मस्यातिक्रमेण च।
शत्रूणां प्रणिपातेन मा च तेषु मनः कृथाः॥ 'विदुर'

अति कष्ट से जो अर्थ मिलता हो और धर्म का अतिक्रमण करने से जो

अर्थ मिलता हो, जिस धन के लिये शत्रु के सामने घुटना टेकना पड़े ऐसे अर्थों में कभी भी मन को नहीं लगाना चाहिये।

अकृत्वा परसंतापमगत्वा खलमन्दिरम् ।
अनल्लङ्घ्य सतां वर्त्म यत्स्वल्पमपि तद्बहु ॥ 'विदुर'

दूसरों को विना संताप पहुंचाये, खलों के द्वार पर घुटना विना टेके, सन्तों के पवित्र धर्म मार्ग का अतिक्रमण किये बिना जो धन प्राप्त होता है, वह थोड़ा भी बहुत है। ऐसा धन बरक्कत का धन होता है। वह आग में जलता नहीं, पानी में डूबता नहीं, डाकू के पेट में हजम नहीं होता। ऐसा ही धन दूध-पूत बढ़ाने वाला धन होता है।

वेदों में अधिकांश भाग कर्मकाण्ड का है। उसमें अधिकाधिक सेहिक आमुष्मिक धन धात्यादि ऐश्वर्य की ही प्राप्ति का प्रयत्न है। हजारों हुण्डियों हीरों, मणियों, रत्नो का काम कामधेनु, कल्पवृक्ष चिन्तामणि से सम्पन्न होते हैं। भारत ने उन वस्तुओं की प्राप्ति का प्रयास किया और प्राप्त किया। कृष्ण भगवान की द्वारका में कल्पवृक्ष था, मणियों, रत्नों की द्वारका पुरी थी।

भारतीय उपासनाओं में आनन्द समुद्र के चिन्मयमणि द्वीप में चित्सार चिण्तामणिमय मन्दिर की कल्पना होती है। धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष चारों ही पुरुषार्थों का सांङ्गोपांङ्ग समन्वय भारत ने किया है। अतः चारों ही पुरुषार्थ उत्तमरूप से यहां विकसित हो सके हैं।

"इह लोके सुखं भुक्त्वा चान्ते सत्यपुरं व्रजेत"

इस लोकमें सुख भोग कर अन्त में वैकुण्ठ धाम जाना यहां का आदर्श रहा है।

आधुनिक युग में भी ताजमहल जैसी कृतियों के निर्माण भारत में हो सके हैं। काबन्ट केसर लिन के अनुसार हिन्दुस्तान एक अमीर देश है। जहांगरीब लोग रहते हैं। इस वाक्य का अर्थ यह है कि—हिन्दुस्तान विविध उत्पादनसाधनों से परिपूर्ण है। इस लिये वह अमीर देश है। परन्तु वहां

के लोगों ने उसका उन दिनों उपयोग नहीं किया था, इस लिये गरीब देश था। अरब देशों में पेट्रोल, डीजल की खानें थी पर उसका उपयोग नहीं होता था इसलिये अरब गरीब थे। आज अरब लोग उसका उपयोग कर रहे हैं अब वे अमीर हो रहे हैं।

भारत ने अनेक बार अपनी प्रतिभायें अमीरी के लिए नियोजित की और अमीर बना। लाखों वर्ष तक उन्नति के उच्चतम शिखरपर आरूढ़ रहा। दुनिया के सभी लोग उसके वशीभूत थे। जीनियस जैसे अनेकों यात्रियों ने धन कमाने के लिये यात्रायें की हैं। वृहत्कथा या कथा सरित्सागर में उसके उदाहरण देखे जा सकते हैं।

यद्यपि पूर्वोक्तयुक्ति के अनुसार सम्पत्ति के उत्पादक मजदूर और श्रमिक ही होते हैं, तो भी तिकड़म के द्वारा सम्पत्ति के मालिक तिकड़म बाज बन जाते हैं। जैसे विभिन्न देशोंमें गरीब निरन्तर श्रम करते हुये भी सम्पत्ति नहीं पैदा कर सके, गरीब ही रहे, उसी तरह दुनिया में तिकड़मी सैकड़ों सालसे तिकड़म करते रहे, सम्पति नहीं पैदा कर सके। मशीनों के अविष्कार के पहले और बाद में भी सम्पत्ति साधन सम्पन्न सदा ही मजदूरों ने ही, श्रमिकों ने ही पैदा की हैं। फिर भी साधन सम्पन्न लोग परिस्थिति से फायदा उठाकर, थोड़े पैसों में श्रम और कच्चा माल खरीद कर वस्तुओं का निर्माण कर, आयात निर्यात की सुविधा पैदा करके उससे सम्पत्ति पैदा करते हैं। दुनिया में किसी भी अच्छी चीज का आविष्कार प्रतिभा से होता है। इसमें तो किसी का मतभेद नहीं है। यह भी ठीक है कि पून्जीवाद ने इस तरह की प्रतिभाओं को अवसर दिया, जो सम्पत्ति पैदा करें, परन्तु उस पून्जीवादका ठेकेदार अमरीका ही नहीं है।

यह भी ठीक है कि पून्जीवाद ने सबसे बड़ा इन्तजाम यह किया कि मनुष्य के स्थान में मशीन को लाने की कोशिश की, क्योंकि मनुष्य के हाथ से इतनी सम्पत्ति नहीं पैदा हो सकती जितनी मशीन से पैदा होती है। परन्तु मशीन का आविष्कार भी बुद्धिजीवी श्रमिकों ने ही किया है। पून्जीपति की प्रतिभा का यह चमत्कार नहीं है

यह तो बुद्धिजीवी श्रमिकों की ही प्रतिभा का चत्कार है। यह दूसरी बात है कि जैसे पूञ्जीपतियों ने अपने तिकड़मसे अन्य श्रमिकों के श्रम से फायदा उठाया वैसे ही बुद्धिजीवी श्रमिकों की प्रतिभाओं एवं उनसे आविष्कृत मशीनों से फायदा उठता है। इन मशीनों का आविष्कार अमरीका में तो बादमें हुआ। सर्व प्रथम इनका आविर्भाव इग्लैण्ड में हुआ है। क्योंकि सर्व प्रथम औद्योगिक क्रान्ति इग्लैण्ड में ही हुई है। अतः आधुनिक औद्योगिक क्रांति का अग्रणी वही है। मार्क्सवादी यह मानते ही हैं कि पूञ्जीवाद वैज्ञानिकों को प्रोत्साहन देकर उनके द्वारा आधुनिकतम उत्तमोत्तम ऐसी मशीनों का आष्किार कराता है जिससे मजदूर पर हावी होकर मशीन ही उससे काम कराती है और मजदूर भी मशीनवत् होकर, मशीन के पराधीन होकर काम करता है। परन्तु जैसे सामन्तवाद से उत्पन्न होकर पूञ्जीवाद उसे खत्म कर देता है वैसे ही पूञ्जीवादसे उत्पन्न होकर समाजवाद पूञ्जीवाद को खत्म कर देता है। इस तरह भले मशीन का बहुत बड़ा महत्व हो फिर भी वह जड़ है। चेतन मनुष्य ही उसे बनाता है, चलाता है, फायदा उठाता है, उसपर नियन्त्रण करता है। मार्क्सवादियों के अनुसार अन्तमें मजदूर का ही सब पर नियन्त्रण होता है।

भारतीय धर्म नियन्त्रित शासनतन्त्र रामराज्य या धर्म राज्य के अनुसार तो सबसे बहुत अधिक महत्व धर्म एवं ईश्वर का है, जिसकी कृपा से मनुष्य को उत्कृष्ट प्रतिभा, उत्कृष्ट देह, इन्द्रिय, मन, बुद्धि मिलती है। जिसकी कृपा का परिणाम भूमि एवं उसके विभिन्न खाने एवं खनिज पदार्थ मिलते हैं। समय पर ठीक वृष्टि एवं कच्चे माल उत्पन्न होते हैं। धर्म एवं ईश्वर के नाते ही विभिन्न व्यक्तियों को विभिन्न भूमिभाग तथा खनियों तथा खनिजों पर परम्परा प्राप्त अधिकार मिलता है। धर्म नियन्त्रित धनवान् या पूञ्जीपति की पूञ्जी से शारीरिक एवं बौद्धिक श्रम करने वाले श्रमिकों को प्रोत्साहन मिलता है। कच्चे माल के भी उत्पादन को बढ़ावा मिलता है। यातायात की सुविधायें सुलभ होती है। अतः यथायोग्य पूञ्जी श्रम तथा प्राकृतिक भूमि खाने खनिज आदि वस्तुओं का भी उत्पादन

होता है। अतएव उत्पादन की उन्नति के अनुसार श्रमिकों की अधिकाधिक सुख सुविधाओं का अधिकाधिक प्रबन्ध होना उचित है। मशीनों के आधुनिकतम आविष्कारों से बेकारी, बेरोजगारी बढ़ती है। उसके रोकने का इन्तजाम पून्जीवाद में नहीं है। समाजवाद के अनुसार उसका मार्ग पून्जीवाद को समाप्त कर समाजवाद लाना ही है।

धर्म नियन्त्रित अर्थतन्त्र में श्रमिकों को अपने शारीरिक एवं बौद्धिक श्रमों का पूर्ण मूल्य मिलना चाहिये। मुनाफा में हिस्सा तभी मिल सकता है, यदि वे श्रम का मूल्य न लें। यदि उन्होंने बाजार रेट के अनुसार अपने श्रम का मूल्य ले लिया तब उन्हें मुनाफा में हिस्सा का अधिकार नहीं हो होता। मुनाफा में हिस्सा तो उस पून्जी कें हिस्सेदार होने से ही सकता है, जिसके आधार पर मशीन खरीदी जाती है। मशीन एवं भवन बनवाया जाता है। श्रम खरीदा जाता है, कच्चा माल खरीदा जाता है।

धर्मनियन्त्रित अर्थतन्त्र में वह आर्थिक असंतुलन मिटाने का मार्ग है। अतिरिक्त आय में—पञ्चधा विभाजन—

धर्माय यशसेऽर्थाय कामाय स्वजनाय च।
पञ्चधा विभा जन् वित्तमिहामुत्र च मोदते ॥
योऽसाधुभ्योऽर्थमादाय साधुभ्यो संप्रयच्छति।
आत्मनः प्लवमादायतारयेत्तावुभावपि ॥
यावत् भ्रियज्जठरं तावत् स्वत्वं हि देहिनाम् ॥
अधिकं योऽभिमन्येत् स स्तेनो दण्डेमर्हति ॥

कहा जाता है कि बुद्ध के जमाने में हिन्दुस्तान में दों करोड़ की आबादी थी। यह आबादी दो करोड़ ही रहती थी, ज्यादा नहीं हो सकती थी। क्योंकि दश बच्चे पैदा होने और नौ बच्चे को मारना ही पड़ता था। क्यों कि न तो भोजन था, न दवा ही थी, न जगह थी, न मकान था, न इन्तजाम था। उसके शरीरके बचाने का कोई उपाय न था। पिछले डेंढ़ सौ वर्षोंसे दुनिया में एक्स फ्लोजन हुआ मनुष्य जाति का। आज साढ़े तीन अरब लोग हैं।

पूञ्जीवाद की व्यवस्था के कारण जीवित हैं अन्यथा वे जीवित नहीं रह सकते थे। (पृ० ११)

यह केवल कल्पना को उड़ान मात्र है। पूंजीवाद नाम की चीज कोई नयी बला नहीं है। धन धान्य की समृद्धि संसार में अरबों वर्ष से चल रही है। नव बच्चों के मार देने की बात पूंजीवादियों के दलालों की कल्पना मात्र है। श्री मद्भागवत के अनुसार केवल द्वारकापुरी में यदुवंश के बालकों को शिक्षा प्रदान करने के लिये तीन करोड़ अंठासी लाख आचार्य थे।

यदुवंश प्रसूतानां पुंसां विख्यातकर्मणाम् ।
संख्यां न शक्यते कर्तुमपि वर्षायुतैरपि ॥
तिस्रः कोट्यः सहस्राणामष्टाशीति शतानि च ।
आसन् यदुकुलाचार्य्याः कुमाराणामिति श्रुतम् ॥

श्रीमद्भागवत स्कन्ध १०, अध्याय ६० श्लोक ४०--४१

बुद्ध से पहले कहा जाता है कि महाराज पृथु तथा महाराज रामचन्द्र के राज्य में अन्न-वस्त्रादि बिना मूल्य मिलता था।

"यत्प्राप्यते वस्तु विनार्घतो हि" (सत्यसंहिता)

"वस्तु बिनु गथ पाईये" (रामचरित मानस उ० का० दो० २८)

महाभारत काल में चावल आदि का भाव दो पैसे मन (भविष्यपुराण).

(कल्याण वर्ष ३८, अङ्क १२, पृ० १३५० से)

ईसा पूर्व चतुर्थ शताब्दी के भाव, कौटलीय अर्थशास्त्र के अनुसार, चावल १ आने मन, तेल आठ आने मन, घी १२ आने मन, दाल १ रुपये मन, नमक दो पैसे मन, शक्कर १० आने मन, कपड़ा १ आने का ५ थान, निर्धन व्यक्ति की आय ६ आने प्रतिमास थी।

(कल्याण गौ अङ्क, वर्ष २०, अङ्क १, पृ० ४३२)

इब्न बूबता के अनुसार ईसा की चौदहवीं शताब्दी में मुहम्मद तुगलक के राज्यकाल में वस्तुओं के भाव निम्न प्रकार थे—चावल पौने दो आने मन

तिलका तेल साढ़े सात आने मन, घी एक रुपये साढ़े सात आने मन, शक्कर एक रुपये साढ़े सात आने मन, महीन सूती कपड़ा २ रुपये का ६५ गज।

आइने अकबरी के अनुसार ईसा की सोलहवीं शताब्दी में अकबर के शासन काल में भारत में १२ अरब गायें थीं। अन्न, दूध, घी, आदि के भाव इस प्रकार थे —वढ़िया चावल १२ आने मन, साधारण चावल १० आने मन, दाल साढ़े तेरह आने मन, घी तीन रुपये ५ पैसा मन, नमक आठ आने मन, खांड़ ५ रुपये ११ आने मन,।

सन् १७२६ में शाइस्ता खां के शासन काल में वस्तुओं के भाव इस प्रकार रहे—बांसफूल चावल १ रुपये का १मन १० सेर, करम शाली चावल १ रुपये ७ मन २० सेर, तेल बढ़िया १ रुपये का २१ सेर तेल साधारण १ रुपये का ३४ सेर घी १ रुपये का १०।। सेर।

बाल्मीकी रामायण के अनुसार—

एवं कोटि सहस्रेण शङ्कनां च शतेन च।
महशङ्क सहस्रेण तथा वृन्द शतेन च ।। ३८
महावृन्द सहस्रेण तथा पद्माशतेन च।
महापद्म सहस्रेण तथा खर्वशतेन च ।। ३६
समुद्रेण च तेनैव महौघेन तथैव च।
एवेकोटि महौघेन समुद्र सदृशेन च ।। ४० वा. रा. यु.का.सर्ग२८

इस प्रकार सहस्रकोटि, सौ शङ्क, सहस्र महाशङ्क, सौ वृन्द, सहस्र महा-वृन्द, सौ पद्म, सहस्र महापद्म, सौ खर्व, सौ समुद्र, सौ महौघ, तथा समुद्र सदृश कोटि महौघ वानर सैनिक थे। उनके खाने के लिये पर्याप्त फल होते थे। अतः खाने पीने का कोई इन्तजाम नहीं था। मनुष्य आदि की संख्या नगण्यथी, यह कहना गलत ही है।

महाकवि कालिदास के रघुवंश के अनुसार राजा दिलीप के वन में पधारते ही वन में फल पुष्पों की विशेष रुप से समृद्धि हो सकी थी।

शशाम वृष्टायपि बिना दवाग्निरासीद्विशेषा फल पुष्पवृद्धिः ।
ऊनं न सत्वेष्वधिको ववाघेतस्मिन वनं गोप्तरि गाहमाने ॥
"रघुवंश" २ सर्ग, १४

पूँजीवाद से बेरोजगारी

पुराणों के अनुसार ६० लाखों सन्ताने एक एक व्यक्तियों को हुयी हैं और जीवित रही है। अतः डेढ़ सौ वेर्षों से प्रादुर्भुत तथा कथित पून्जीवाद से मनुष्य में वृद्धि और जीवित रहने का प्रबन्ध हो सकता है, यह कहना पूंजी वादियों के दलालों की ही सूझ है। हां भौतिक पूंजीवाद के अनुसार संसार का धन बटोरकर मुठ्ठीभर लोगोंके पास इकठ्ठा हो गया। अधिकाधिक लोग गरीब हो गये। पूंजीवाद ने अधिकाधिक लोगों की रोजी रोजगार छीन लिये। लोगोंमें बेकारी, बेरोजगारी. बढ़ गयी। फिर गरीबी का बढ़ना स्वाभाविक ही था। भले संसारमें बड़े लोगोंके लिये ऐस आराम की ज्यादा से ज्यादा सामग्री इकठ्ठी हो गयी है और उनके जीवित रहने के लिये नाना प्रकार की औषधों का प्रबन्ध हो गया है। परन्तु बेकार, बेरोजगार, गरीब के लिये कहीं कुछ नहीं है। बाजार में गेहूं, चावल, चीनी कपड़े; जूते, सायकिल, मोटर, हवाई जहाज सब कुछ होने पर भी बेकारी के कारण जनता की क्रयशक्ति घट जाने से, खरीदने को पैसा न होने से, उसके लिये सब बेकार ही हैं। इसीलिये डाका, चोरी, कत्ल, जुआ, व्यभिचार आदि फैलाते हैं। इन सबका हेतु बर्तमान भौतिक पून्जीवाद ही है। वर्तमान भौतिक पून्जीवाद से पहले भले कोई करोड़पति, अरबपतियों की संख्या कम रही हो, परन्तु सबके पास रोजी रोजगार था। अपने खाने-पीने, पहनने ओढ़ने, शिक्षा, इलाज का प्रबन्ध सबके पास था। भौतिक पून्जीवाद के विकास से सबके रोजगार छिन गये, जैसा कि कहा जा चुका है।

पूर्वकाल में एक शहर को तेल पहुंचाने के काम के लिये सैकड़ो तेलियों, सकड़ों बैलों, अनेकों कोल्हू बनाने वाले बढ़यियों तथा घर-घर तेल पहुंचाने

वालों सैकड़ों मजदूरों की आवश्यकता पड़ती थी। हजारों व्यक्तियों को जीविका के साधन खेती रोजगार मिलते थे। पून्जीपतियों ने कुछ रूपये से मशीन खरीद कर मशीन बिठला दिया। थोड़ी मनुष्यों द्वारा इतना तेल पैदा कर लिया कि दर्जनों शहरों के लिये तेल पर्याप्त हो गया। यातायात के साधन रेल, बस, ट्रक आदि का प्रबन्ध करके लाखों आदमियोंकी जीविका छीन लिया, उन्हें बेकार-बेरोजगार कर दिया। देश के लिये कपड़ा बनाने, सूत कातने, चरखा वनाने में लगे लाखों करोड़ों कारीगरों को बेकार बेरोजगार बनाकर, कपड़े की मशीन धुवांधार माल पैदा करने लगी। लाख लाख करोड़ करोड़ मनुष्यों का काम आधुनिकतम मशीनों द्वारा सैकड़ों हजार मनुष्योंके द्वारा सम्पन्न होने लगा, फलतः करोड़ों लोग बेकार, बेरोजगार होकर गरीबी की चक्की में पिसने लगे। इतना ही नहीं पूंजीवाद ने अपने विनाश का इन्तजाम भी स्वयं ही कर लिया। वह धन कमाने के लोभ से कम से कम मनुष्यों द्वारा, कमसे कम समयमें अधिक से, अधिक माल पैदा करने के लिये नयी-नयी मशीने बनाने के लिये, बुद्धिजीवी, श्रमिकों, वैज्ञानिकोंको प्रोत्साहन देने लगा और नयी नयी मशीने बनने लगी। लाख लाख मनुष्यों का काम मशीनों द्वारा सैंकड़ों मनुष्यों द्वारा होने लगा। फलतः लाखों, करोड़ों मजदूर बेकार हो गये।

इस तरह एक एक राष्ट्रमें करोड़ों व्यक्ति बेकार हो गये। मुट्ठीभर लोगों के पास ही धन एवं पून्जी, रोजी-रोजगार रह गया। फलतः राष्ट्रों की क्रयशक्ति क्षीण हो गयी। बाजार में सब तरह की जिनिस भरी है, कपड़े हैं, गेहूं है, चावल है; चीनी है, तेल है, सायकिलें हैं, मोटरे हैं पर खरीददार नहीं। फलतः माल की खपत होनी रुक गयी। पून्जीपति किसी हालत में बाजार में माल को सस्ता नहीं होने देता। वह चाहता है भलेही उसे लाखों टन चीनी चावल समुद्र में कर देना पड़े। जहां तक औद्योगिक क्रान्ति सीमिति थी। कुछ ही राष्ट्रों तक थी वहां तक तो दूसरे राष्ट्रों के बाजारों में पून्जीपति अपने मालको भेजकर धन कमाता था। परन्तु अब तो सभी राष्ट्रों में औद्योगिक क्रान्ति हो गयी। अपने देश के माल से ही अपने देश

की बाजारे भरी पड़ी हैं, दूसरे देश के मालों के खपत की कोई गुन्जा-यश नहीं है ।

उपनिवेशवाद के द्वारा पून्जीवादी राष्ट्र अपने देश के माल को अपने उपनिवेश में भेजकर खपत कर लेते थे । परन्तु अब उपनिवेशवाद भी समाप्त हो रहे हैं । ऊर्जा संकट के कारण भी नयी नयी समस्यायें राष्ट्रों के सामने है । इस स्थिति में पून्जीपति मशीनों की उत्पादन की रफ्तारको कमकर कम माल उत्पादन करके अपने बाजारों में ही माल खपत करना चाहेगा । फलतः मजदूरों की छटनी करनी पड़ेगी जिससे और अधिक बेकारी बढ़ने से क्रयशक्ति और क्षीण होगी । फिर माल की खपत और भी कम होगी । फिर और छटनी करनी पड़ेगी । इस तरह पून्जीवाद के सामने माल के खपत कर मशीनों के चालू रखने का कोई रास्ता नहीं रह जाता है । तब अन्त में सिवा समाजवाद के कोई चारा नहीं रह जाता है । तब सभी कार-खानों का राष्ट्रीयकरण हो जाता है । सरकारें सबका प्रबंध करती हैं । तब उत्पादन मुनाफा के लिए नहीं, उपभोगके लिए ही मुख्य तौरपर होता है । मुनाफा के लिए फलतः उपभोक्ताओं के अनुसार ही उपभोग्य वस्तुएं उत्पन्न की जाती हैं । बेकार मजदूरों को अन्य कारखानों तथा अन्य उद्योगों द्वारा अन्य वस्तुओं के उत्पादन में लगाया जाता है । यह सब पून्जीपति के लिए संभव नहीं होता । इस तरह भौतिक पूंजीवाद के पेट से ही भौतिक पूंजी-वाद को नष्ट करके उसका पेट फाड़करभौतिक समाजवाद उत्पन्न होता है ।

अगर पून्जी पर, अर्थतन्त्र, शासन तन्त्र पर धर्म का नियन्त्रण न होगा तो भौतिक पून्जीवाद से भौतिक समाजवाद का उत्पन्न होना और पून्जी-वाद को समाप्त करना अनिवार्य है । इसीलिये अध्यात्मवाद पर आधारित धर्मनियन्त्रित शासन तन्त्र राम राज्य या धर्मराज्य से ही भौतिकवाद पर आधारित धर्मनिरपेक्ष शासन तन्त्र का मुकाबिला किया जा सकता है ।

समाजवाद में आध्यात्मिकता के लिये कोई स्थान नहीं है । उसमें धर्म नहीं, ईश्वर नहीं, आत्मा नहीं है दया, दान आदिकों का कोई महत्व नहीं

है। न व्यक्तिगत भूमि, न व्यक्तिगत संपत्ति न व्यक्तिगत खेत-खलिहान, न व्यक्तिगत उद्योग-धन्धे; न व्यक्तिगत मकान न व्यक्तिगत औरत और बच्चे ही हो सकते हैं होटल में खाना और हास्पिटल में सड़ना ही मनुष्य की जिन्दगी होती है।

साम्यवादी व्यवस्था

जो समाज के कर्णधार, सरकार के सञ्चालक, अधिनायक या डिक्टेटर होते हैं, उन्हीं के हाथ में समाज या राष्ट्र की बागडोर होती है। समाज के नाम पर राष्ट्र की सारी भूमि, सम्पत्ति, शक्ति उन्हीं के हाथमें होती है। सत्ता के लिये संघर्ष हो तो एक ड़िक्टेटर दूसरे डिक्टेटर का पेट फाड़कर ही पैदा होता है। शासनयन्त्र उसी के हाथ का खिलौना होता है। जनता शासनयन्त्र की नगण्य कल पुर्जा होती है। प्रतिकूल शासन या शासनाधिकारी डिक्टेटर को बदलने की शक्ति भी जनता के हाथमें नहीं रहती है। समाजवादी राष्ट्रों में एलेक्सन तो होता है, परन्तु पार्टी द्वारा मनोनीत उम्मीद्वार के मुकाबिले में कोई दूसरा उम्मीद्वार नहीं होता है। समाजवादी राष्ट्रों में कोई दूसरी पार्टी नहीं होती है। कोई स्वतन्त्र अखवार नहीं होता है। लेखन, भाषण की स्वतन्त्रता समाजवाद में नहीं होती है। कानून के बल पर जनता को पार्टी के मनोनीत व्यक्ति को वोट डालना पड़ता है। रुस में, चीन में यही हालत है।

राष्ट्रीयकरण का आधार

अधिकांशतः अन्य राष्ट्रों ने भी समाजीकरण या राष्ट्रीयकरण का सिद्धान्त मान रखा है।

अमरीका, इंगलैण्ड, फ्रांस आदि में भी अधिकांश इस्पात, विद्युत, अस्त्र शस्त्र निर्माण आदि के कारखाने सरकारी है। जब जिसके सरकारी करण की आवश्यकता समझी जाती है, सरलता से पार्लियामेन्ट के प्रस्ताव से

उसका राष्ट्रीयकरण कर लिया जाता है। भारतमें भी राज्यों, जमीन्दारियों जागीरदारियों तथा काश्तकारी आदि का; बैंकों, बीमा निगमों विद्युत उद्योगों का तथा अनेक कारखानों का राष्ट्रीयकरण हुआ है। इन सबका आधार मार्क्सवादी सिद्धान्त ही है। अन्यथा तो किसी भी व्यक्तिगत वस्तु का अपरहृण डाका या चोरी कोटि में ही परिगणित हो सकता है।

लोकतान्त्रिक समाजवाद

अनेक राष्ट्रों के कर्णधारों ने—(जैसे भारत के नेहरु, यूगोस्लाविया के मार्शल टीटो, पोलैण्ड के डाक्टर गोमुल्का आदि), अपने यहां लोकतान्त्रिक समाजवाद की घोषणा की है। उसका निर्वाचन लोकतन्त्र के ढंग का होता है। अन्य पार्टियां भी हो सकती है। कोई भी नागरिक पार्टी बनाकर या स्वतन्त्र रूप से चुनाव लड़ सकता है। स्वतन्त्र अखवार भी निकाल सकता है। लोकतान्त्रिक समाजवाद में प्रत्येक नागरिक को लेखन, भाषण की पूर्ण स्वतन्त्रता रहती है। राष्ट्रपति, प्रधान मन्त्री के विरुद्ध, शासनारुढ़ पार्टी के विरुद्ध भाषण दिये जा सकते हैं। लेख लिखे जा सकते हैं। अन्शतः न्याय पालिका भी स्वतंत्र रहती है। राष्ट्रपति, प्रधानमन्त्री के विरोध में न्याय दिया जा सकता है। परन्तु वस्तु स्थिति किसी दूसरे ही ढंग की होती है। अधिकांश वस्तुओं का समाजी करण, राष्ट्रीयकरण के पश्चात अधिकांश लोग धनहीन हो जाते हैं। मुठ्ठीभर व्यापारियों, शेयर होल्डरों, के पास ही सम्पत्ति होती है। फलतः अखबार निकालने की छूट होने पर भी अखबार निकालने और चलाने की शक्ति मुट्ठीभर लोगों के ही हाथ में रहती है। अधिकांश लोगों के पास अखबार निकालने तथा चलाने की शक्ति नहीं, भाषण देने की आजादी है, परन्तु सभा आयोजन की शक्ति नहीं, । पार्टी बनाने, एलेक्शन लड़ने की छूट सबके लिये है। परन्तु पार्टी बनाने, चलाने, एलेक्शन लड़ने की शक्ति नहीं, क्योंकि भूमि-सम्पत्ति, कल कारखाने, तथा खानों के छिन जाने से अधिकांश जनता गरीब है, कंगाल है। अतः सब की छूट होने पर भी जनता कुछ नहीं कर सकती।

लोकतंत्र का सच्चा स्वरूप

वस्तुतः लोकतन्त्र तो वही रहता है, जहां जनता में नापसन्द सरकार बदलकर मनचाही सरकार बना लेने की ताकत बनी रहती है। वह तभी संभव है, जब जनता के प्रत्येक नागरिक में निर्वाचन जीतने की शक्ति बनी रहे, वह तभी संभव होता है जब जनता के पास निर्वाचन लड़ने के साधन, नोटिस-पोस्टर, जीपों, लाउडस्पीकरों, तथा कार्यकर्त्ताओंके लिये अपेक्षित धन हो और निर्वाचन सस्ता हो, कम खर्चीला हो।

जहां एक-एक, एम० एल० ए०, के एलेक्शनों में भी लाखों खर्च होते हों और व्यक्तियों के पास नोटिस, पोस्टर, जीपों की बात तो अलग है, तन ढकने को कपड़ा, पेट भरने को रोटी भी सुलभ न रहे, बीमार बच्चे को इलाज के लिये कुछ पैसे भी दुर्लभ हों, निर्वाचन में जमानत दाखिल करने के लिये पैसे दुर्लभ हो, फिर वहां लोकतन्त्र कैसे संभव है ? जैसे किसी मनुष्य का दोनों टांग काटकर दौड़ने की मुकम्मिल आजादी देना, पक्षी का दोनों पङ्ख काटकर उड़ने की पूर्ण स्वतन्त्रता देना केवल मक्कारी है, वैसे ही जनता को धनहीन बनाकर, भूमि-सम्पत्ति, कल कारखानों से रहित बनाकर एम० एल० ए०, एम० पी० बनने या नापसन्द सरकार बदलने, मनचाही सरकार बनाने, की छूट देना, भी मक्कारी ही है।

धर्म नियन्त्रित शासन तन्त्र

इन सभी अनर्थों की निवृत्तिका उपाय न तो भौतिक पून्जीवाद है और न ही भौतिक समाजवाद और न तथाकथित लोकतान्त्रिक समाजवाद ही है। इनका समाधान तो धर्मनियन्त्रित अर्थतन्त्र, या अध्यात्मवाद पर आधारित धर्मनियन्त्रित शासनतन्त्र, रामराज्य या धर्मराज्य ही है। तथाकथित पून्जीवाद में सौ पचास व्यक्तियों के पास ही पून्जी होती है, शेष

जनता गरीब होती है। पूंजीपतियों के ही तन्त्र में रहकर कुछ सुविधायें कुछ लोगों को सुलभ होती है। यहां तक कि एम० एल० ए० एवं एम० पी० लोग भी उनके खरीदे हुये होते हैं। उन्हें सुविधा सहायता देकर वे उन्हें अपने हाथ में रखते हैं। पार्टियों को सहायता देकर सरकारों को अपने हाथ की कठपुतली बनाकर रखते हैं।

किन्तु जहां ईश्वर है, धर्म है, आध्यात्मिकता है, 'अमृतस्य पुत्रः' के अनुसार सभी प्राणियों को परमेश्वर का पवित्र पुत्र मान कर सबके साथ समानता, स्वतन्त्रता तथा भ्रातृता का व्यवहार किया जाता है। वहा सार्वजनिक न्याय एवं सुख सुविधाओं का सौलभ्य रहता है। जहां लोक-परलोक का डर, ईश्वर और यमराज का डर होता है, वही लोग स्वयं पापों, अन्यायों, शोषणों से बचने का प्रयत्न करते हैं। जहां व्यक्तिगत भूमि-सम्पत्ति, खेत-खलिहान, मकान-दुकान तथा उनके उत्तराधिकारी, पुत्र-पौत्र, प्रपौत्र, भाई-बन्धु, माता पिता, पत्नी आदि परिवार होते हैं। वहीं मानवता, सदाचार तथा सामाजिक न्याय सुव्यवस्था सफल हो सकती है। अतएव उस व्यवस्था के अनुसार भले ही हाथ अंगुलियोंके समान कुछ विषमता हो, बिल्कुल बराबरी न हो, तो भी उनमें संतुलन अवश्य बना रहता है। अंगुलियों में कोई बड़ी छोटी कोई मोटी-पतली हो सकती है। परन्तु उनमें सन्तुलन रहता है। बेहिसाब छोटाई, बड़ाई नहीं होती। हाथ पैर पतले हो, पेट मोटा हो तो यह जलोदर रोग का ही चिन्ह है स्वस्थता का नहीं। दस, बीस व्यक्ति अरबों के सम्पत्ति के मालिक हों, करोड़ों भूखे, नंगे गरीब हों, यह समाज की स्वस्थता का लक्षण नहीं है। किसी घर में लाखों कम्बल सड़ते रहें, लाखों को काला कम्बल भी पौष-माघ का जाड़ा काटने को न मिले। किसी घर में लाखों सन्तरे सड़ जाय, किन्हीं को औषधिके लिये एक सन्तरे की फांक न मिले ऐसा भौतिक धर्महीन पूञ्जीवाद समाज की स्वस्थता का प्रतीक नहीं है।

सबको स्वतन्त्रता पूर्वक रोजी रोजगार मिले, रोटी कपडे, शिक्षा और स्वास्थ्य की सुव्यवस्था हो, उन्नति का खुला मार्ग सबको सुलभ हो, फिर

भले ही किसी को कुछ सुख साधन अधिक हो, किसी के पास कुछ कम हो चीटी को कन भर, हाथी को मन भर, की व्यवस्था बुरी नहीं है।

मशीन का आविष्कारक बुद्धिजीवी श्रमिक

कहा जाता है कि 'पून्जीवाद ने मनुष्य की जगह मशीन ईजाद किया मनुष्य को हटाया श्रम से और मशीन को लगाया श्रम में। इसके दो परिणाम हुये। मशीन मनुष्य से हजार गुना काम कर सकती है। लाखगुना, करोड़गुना भी काम कर सकती हैं, मशीन की संभावनाएं अनन्त हैं, मनुष्य की संभावनाएं सीमित हैं। मशीन की वजह से सम्पत्ति का इतना ढेर लगना शुरू हुआ। दूसरा काम-जैसे ही मशीन आयी, मनुष्य गुलामीसे मुक्त हो सका, पूंजीवादकी दूसरी बड़ी देन यह है कि दासताका अन्त। गुलामीकी समाप्ति। अगर मशीन न आती तो आदमी की गुलामी कभी मिट नहीं सकती थी। आदमी को गुलाम रहना ही पड़ता, क्योंकि आदमी से काम लेना और आदमी के पीछे उसकी छाती पर या तो सवार हो कोई तभी उससे जीतोड़ काम लिया जा सकता है। मशीन स्थापित हुई तो आदमी गलामी से मुक्त हो सका। आज पृथ्वीपर गुलाम नहीं है, आज आदमी मुक्त है।' (पृष्ठ१२)

परन्तु चाहे जितनी बार इस एक बातका ही पाठ करो, पर वह निःसार है। कहा जा चुका है कि मशीनका आविष्कार बुद्धिजीवी श्रमिक वैज्ञानिकों ने किया। पून्जीपति केवल पैसेके बल पर उससे फायदा उठाता है। किसी भी पून्जी वाले ने कोई छोटी सी भी मशीन पैदा नहीं की। उसकी प्रतिभा केवल तिकड़म में है। वह प्रतिभा का प्रयोग शोषण में ही करता है। काश्तकार की भूमि से उत्पन्न कच्चे माल द्वारा, या खानोंसे निकाली गयी सामग्रियों द्वारा और वैज्ञानिकों के आविष्कृत मशीनों और मजदूरों के श्रम से फायदा उठाता है, उनको उनके साधनों, परिश्रमों के फलों से वंचित रखकर। अन्य विषयों में पून्जीपति पूरा भोंदू होता है। कोई भी कलाँ, कोई भी ज्ञान, उसमें नहीं होता है। आज का नवीनत आविष्कार कम्प्यूटर

की भाषा समझने की वात दूर रही, साधारण से साधारण गणित में भी वह भोंदू ही है, तथापि उसे जैसे तैसे लोगों को उनके जायज फायदों से वंचित करके, उनसे नाजायज फायदा उठाकर समाज का शोषण करना है।

सेव्य-सेवक भाव की निरन्तरता

रही गुलामी दूर करनेकी बात, वह भी गलत है। गुलामी या दासताका तो न कभी अन्त हुआ है न होने वाला है। हाँ, पहले मनुष्य किसी चेतन का गुलाम होता था, अब वह जड़ मशीनों का गुलाम हो गया है। उनके पराधीन हो गया है। आज मजदूर की छाती पर सवार होने के लिये मनुष्य की अपेक्षा नहीं है। आज तो मनुष्य की छाती पर मशीन सवार रहती है। कामों की लाईन या ताता उसके सामने रहता है, वह ठीक समय पर एक काम नहीं करता तो सैकड़ों उसके सामने खड़े होते हैं। आगे के मजदूर का काम रुक जाता है। पिछले लिये काम ही नहीं होता। फलतः सारे कामगारों, इञ्जीनियरों तक गतिरोध खड़ा हो जाता है। अतः सबको मशीन का गुलाम बन कर काम करना ही पड़ता है। हां, पहले सहृदय, दयालु स्वामी, गुलाम या दास के सुख दुःख का ध्यान रखता था, उसके साथ सहानुभूति तथा हमदर्दी रखता था। आज उसका कहीं दर्शन भी नहीं होता।

वस्तुतः गौण, प्राधान्य भाव ही सेव्य, सेवक भाव है। वह आज भी है, आगे भी रहेगा और सदा ही था। सदा ही सोल्जरों को फील्ड मार्शल के हुक्म पर अपने आपको युद्धाग्नि में झोकने, तोपों के चारा बनाने को तैयार रहना ही पड़ता है। प्रत्येक कर्मचारी को अपने अफसर का हुक्म मानना ही पड़ता है। राष्ट्रपति और उसके बाडी गार्ड और चपरासी में गौण प्रधान्य भाव रहता ही है। मनुष्य को मुक्तिएवं स्वतन्त्रता, तो तत्वज्ञान, ब्रह्मज्ञान से ही संभव है और वह ईश्वर-धर्म एवं शास्त्र बिना असंभव है। प्राणी को आधिव्याधि के पराधीन होना ही पड़ता है। बुढ़ापा और मौत से

छुटकारा कहाँ है। शरीर पराधीन है इन्द्रियां, मन, बुद्धि भी पराधीन है। चेतन निरूपाधि शुद्ध आत्मा ही स्वतंत्र हो सकता है। परन्तु जड़ धर्महीन पून्जीवाद या भौतिकवाद पर आधारित धर्मनिरनेक्ष समाजवाद में वास्तविक स्वतंत्रता कहां! फिर मनुष्य गुलामी से मुक्त हो गया, यह कथन निरर्थक है।

श्रमिक सम्पत्ति का उत्पादक है

कहा जाता है कि, "समाजवाद ने एक झूठी भ्रामक बात पैदा करनी शुरू कर दी है कि सम्पत्ति (पूंजी) श्रमिक पैदाकर रहा है। श्रमिक सम्पत्ति पैदा नहीं कर रहा है। वह तो एक श्रमिक सिर्फ सम्पत्ति पैदा करनेका बहुत गौण हिस्सा है। आज नहीं तो कल श्रमिक व्यर्थ हो जायगा। क्योंकि मशीन उसे पूरी तरह से व्यर्थ बना देगी। पचास साल के भीतर दुनियां में लेबर श्रमिक जैसा आदमी नहीं होगा, होने की जरुरत भी नहीं है।

अशोभन है कि किसी आदमी को मशीनका काम करना पड़े। सम्पत्ति के पैदा करने में श्रमिक धीरे धीरे व्यर्थ होता जायगा। पचास साल में बिल्कुल बेकार हो जायगा, क्योंकि श्रम उत्पादन में गैर जरूरी हिस्सा है। जरूरी हिस्सा उत्पादक वृद्धि है, जो प्रोडक्टिव माइन्ड है। सम्पत्ति मस्तिष्क से पैदा हुयी है, मसल्स से नहीं। अगर समाजवाद ने यह जिद्द की और मसल्स को मस्तिष्क के उपर विठा दिया तो मस्तिष्क विदा हो जायगा और तब मसल्स वहीं पहुंच जायगी, जहां हजार साल पहले गरीबी और भुखमरी थी, उससे आगे नही।" (पृष्ठ १२)

परन्तु यह कथन सर्वथा भ्रान्तिपूर्ण है और वह है समाजवादी सिद्धान्त न समझने के कारण। जैसा कि पहले कहा जा चुका है कि—जब एक आदमी किसी से दस रूपये कर्ज लेकर सूत खरीद कर कपड़ा बनाता है, और बाजार में बेचता है, उस पैसे में से दस रूपया कर्ज और उसका सूद चुका देता है, तब बाकी बचा दाम मजदूर का ही समझा जाता है। इसी

तरह मिलों से तैयार माल की बिक्री से जो मूल्य मिलता है उससे भी कच्चे माल का दाम, मशीन मकान का भाड़ा, मशीनकी घीसाई, सरकारी टैक्स, पूंजी का सूद चुका देने पर शेष आमदनी मजदूरों की ही समझी जानी चाहिये। यद्यपि पून्जी, कच्चे माल, मशीन का भी उत्पादन में हाथ है, तो भी चेतन मजदूर के बिना और सब जड़ होने के कारण मुर्दा के तुल्य ही रहती है। अतः जब तक इन तर्कों का उत्तर नहीं हो जाता है, मशीन को भी बनाने वाला मजदूर ही है।

चेतन संयोग की अनिवार्यता

हाँ श्रम दो प्रकार का होता है—एक बुद्धि या मस्तिप्क का श्रम, दूसरा शारीरिक श्रम। मशीन के निर्माण में दोनों ही श्रम का उपयोग होता है। अतः उक्त द्विविध श्रम के बिना मशीन का उत्पादन एवं चालन असंभव ही हो जायगा। अतः श्रम को बुद्धि से उपर बिठलाने का सवाल ही नहीं पैदा होता है। कोई भी मशीन अपने आप पैदा नहीं हो जाती है। दुनिया के मकान, पुल, रेल, मोटर आदि की मशीने, कम्प्यूटर वायुयान, राकेट की मशीनें, लोहा ढालने की मशीने, यद्यपि लोहा आदि विभिन्न वस्तुओंसे बनती हूं तथापि सर्वत्र चेतन संयोग की अनिवार्य आवश्यकता है।

कम से कम मनुष्यों द्वारा ज्यादा से ज्यादा उत्तम अधिकाधिक वस्तु बन जाय, इसमें भी चेतन मनुष्यों की आवश्यकता पड़ेगी। श्रमिक या मजदूर का तात्पर्य केवल ईट ढोने वाले से नहीं है, किन्तु इंजिनियर, वैज्ञानिक सभी श्रमिको के ही भीतर आते हैं। भूमि, सम्पत्ति, कल, कारखाने उद्योग, धन्धे वाले उत्पादन साधनों के मालिक हैं, वे पूंजीपति हैं। जो शारीरिक, बौद्धिक श्रम के मालिक हैं वे ही श्रमिक हैं। श्रमिकों द्वारा निर्मित मशीनों, कल कारखानों, मोटर, वायुयानों, मकानों, गेहूं, चावल, चीनी, कपास, आदि उपयोग सामग्रियों के मालिक वे बन जाते हैं, जिनका उनके निर्माण में कोई हाथ नहीं है, यही शोषण है। इसके बिरुद्ध समाजवादी

आन्दोलन होता है। कोई पून्जीपति किसी मशीनके किसी पुर्जे को नही बना सकता। फिर उसके पास मस्तिष्क कहां है? यदि मशीन का महत्व माना जाय तब तो पून्जी एवं पून्जी का महत्व सुतरां क्षीण हो जाता है। मशीन का मुख्य संबंध शारीरिक, बौद्धिक श्रम से होने के कारण श्रमिकों का ही उसपर अधिकार मुख्य है। पैसा और पैसे वाले सर्वथा बहिरंग हैं। वे नगण्य हैं। द्विविध क्रम से पहले पैसे भी थे, पैसे वाले भी थे पर वे उत्पादन के क्षेत्र में सर्वथा नगण्य ही थे।

यो भी जैसे पलंग, मकान आदि भोग्य वस्तुये भोक्ता के लिये ही होती है स्वतंत्र नहीं। देहादि कार्याकरण संघात भी उनसे भिन्न असंहत चेतन आत्मा के लिये होती है। उसी तरह मशीन भले ही मनुष्यों से अनंत गुणित काम कर ले। फिर भी वह मशीन चेतन पुरुषके पराधीन होती है। अतः किसी भी हालत में कोई भी मशीन कोई पून्जी या पून्जीपति नहीं बना सकता, क्योंकि वह शारीरिक एवं बौद्ध श्रम का ही परिणाम है। यदि मशीन ही सर्वोपरि है तब तो पून्जी एवं पून्जीपति नगण्य ही ठहरेगा। जिस शारीरिक एवं बौद्धिक श्रम से मशीन बनती है, जब मशीन उसे बेकार बना सकती है तो जिसका मशीन के साथ साक्षात संबंध नही है वह पून्जी एवं पून्जीवाला सुतराँ बेकार हो जायगा।

बेकारी दूर करने के लिए ही समाजवाद

वस्तु स्थिति तो यह है कि मनुष्यों की बेकारी ही दूर करने के लिए समाजवादी सभी उत्पादन साधनों का राष्ट्रीयकरण करके सबको यथायोग्य काम, दाम, आराम की व्यवस्था करके बेकारी दूर करने का प्रयास करते हैं। बेकारी रोकने के लिये ही समाजवादी सरकारें नये नये उत्पादन के लिये नये नये कारखाने चलाती हैं। कामगारों के काम करने के घण्टों में कमी करके अधिक से अधिक मजदूर को काम देने का प्रयत्न करते हैं।

धर्म नियन्त्रित शासन तन्त्रवादी महायन्त्रोंके निर्माण पर प्रतिबन्ध लगाकर

छोटे-छोटे उद्योगों को चलाकर, काम के घण्टों में कमी करके, अधिकाधिक लोगों को काम देते हैं।

मशीन मनुष्य के लिए है

'कथा सरित्सागर' के अनुसार ऐसे भी वैज्ञानिक कारीगर हो चुके हैं, जिन्होंने बड़े-बड़े यान्त्रिक नगरों का निर्माण किया था। जिनमें चेतन केवल एक सञ्चालक ही था। अन्य सभी नागरिक प्रबन्धक, बाजारें खरीद फरोख्त करने वाले, व्यवहर्त्ता सभी यान्त्रिक ही थे। वहाँ भी अन्त में उस यान्त्रिक नगर की सारी स्थिति उस एक चेतना पर ही निर्भर थी। मान लिया कि कि सम्पूर्ण राष्ट्र एवं सम्पूर्ण विश्व के सब काम यन्त्रों पर ही निर्भर हो जाय, तो भी उसकी सफलता तभी होगी, जब राष्ट्र या विश्व के जीवित मनुष्यों के सुखार्थ हो। यदि वह यान्त्रिक व्यवस्था सभी मनुष्यों के अहित में हो तो कोई भी उस व्यवस्था का निर्माण एवं रक्षण किस लिये करेगा।

कम्युनिस्ट भी कहते हैं कि साम्यवादी विश्व अधिकाधिक यन्त्रों का विकास करके, सबके लिये सरल तथा सुगम तरीके से, सबको सुख सुविधा की व्यवस्था करेगा। यदि कुछ काम करना भी होगा तो सबकी सुख सुविधा का ध्यान रखते हुये बहुत थोड़ा सुखमय काम में लगाया जायगा। इस दृष्टि से भी मशीनों को मनुष्य के लिये रखना होगा, मनुष्य को मशीन के लिये नहीं। अञ्जन आंख के लिये होता है, अञ्जन के लिये आंख नहीं। शैतान की वह पलंग नहीं चाहिये जिसके अनुकूल उसपर सोने वाले को बनना पड़ता है, जिसके सोने वाले को खींच तान कर, या काट पीट कर, पलंग पर सोने योग्य बनाया जाता है।

यह तो कभी हो ही नहीं सकता कि संसार के सभी श्रमिकों, मनुष्यों, [illegible] के बल पर पूंजी एवं पचीस, पचास पूंजी पति बने रहेंगे। क्यों कि भूखे मजदूर उन्हें सुख से कैसे रहने देंगे। पुलिस, मिलिटरी के लोग भी आखिर कहां से आयेंगे उनकी रक्षा के लिये। अतः

"श्रमिक बेकार हो जायेंगे, मिट जायेंगे, उनकी आवश्यकता भी नहीं है' यह सब निरर्थक प्रलाप मात्र है।

पूँजी, पूँजीपति के मस्तिष्क का परिणाम नहीं

यह कहना भी गलत हैं कि "सारी सम्पत्ति मस्तिष्क की ईजाद है और ध्यान रहे कि सारे लोगों ने सम्पत्ति पैदा करने का श्रम नहीं उठाया है। एक आइस्टीन ईजाद करता है, सारे लोग फायदे लेते हैं। एक फोर्ड सम्पत्ति कमाता है, सारे लोगों तक सम्पत्ति बिखर जाती है। (पृष्ठ १२-१३)

यह कथन गलत है क्योंकि—मस्तिष्क, पूंजी या पूंजीपति के पास न होकर, वैज्ञानिकों एवं श्रमिकों के पास होता है। उनके पासतो होता है। तिकड़म, केवल दूसरों की कमायी को हड़पने की बुद्धिहोती है।

पूंजीपति केवल कमाने के लिये ही पूंजी करता है। यों ही सम्पत्ति को बिखरने दे तो वह पूंजीपति ही नहीं रह जायगा। वितरण की बात तो दूर वह अधिकाधिक महंगायी फैलाने का प्रयत्न करता है। मन्दी रोकना उसका मुख्य व्वसाय है। वह अपना माल नष्ट कर देना मंजूर करेगा पर सस्ता नहीं होने देगा।

आय का वास्तविक स्वामी श्रमिक है

कहा जाता है कि, "पूंजीपति लोगों से सम्पत्ति शोषित करता है। इससे झूठी कोई बात हो नहीं सकती। जिसके पास सम्पत्ति है ही नहीं उसका शोषण होगा कैसे ? उस सम्पत्ति का शोषण होता है जो कहीं हो। लेकिन जो है ही नहीं उसका शोषण कैसे हो सकता है। पूंजीवाद सम्पत्ति पैदा करता है, शोषण नहीं। लेकिन जब सम्पत्ति पैदा होती है, तो दिखायी पड़नी शुरू होती है और हजारों आंखों में ईर्ष्या का कारण बनती है।"

(पृष्ठ १३)

परन्तु यह भी असंगत ही है, क्योंकि वस्तुतः या तो लेखक शोषण का अर्थ नहीं जानता, या जान-बूझकर उसे झुठलाना चाहता है। कारण पीछे कहा जा चुका है। जितनी सम्पत्ति उत्पन्न होती है, उसमें श्रम का ही प्रमुख हाथ है। श्रम से ही मशीन बनती है, श्रम से ही कच्चा माल तैयार होता है। श्रम से हीं कारखानों में बाजार जाने लायक माल तय्यार होते हैं। अतः लागत खर्च, सरकारी टैक्स, पूंजी का सूद, मशीन, मकान का भाड़ा निकाल देने पर सारी आमदनी श्रमिकों के श्रम का फल है। परन्तु श्रमिक को उसका बहुत थोड़ा सा अंश दिया जाता है। जैसे तांगे वाला घोड़े से खूब धन कमाता है, परन्तु घोड़े को उतना ही घास और दाना देता है, जितने में वह जीवित रहें, मर न जाय, काम करता रहे।

पूंजीवादी शोषण

बस इसी तरह मार्क्स वादियोंके अनुसार श्रमिकोंकी सारी कमाईका फल पूंजीपति हड़प लेता है। श्रमिकोंको उसमेंसे थोड़ा-सा ही देता है। श्रमिकों से आठ-दस या बारह घन्टेका काम लेता है। उसे एक घन्टे का फल देता है। ६ घन्टे का फल अपनी जेब में रखता है। वैज्ञानिकोंसे उत्तमोत्तम मशीन बनवा कर, उनसे अरबों की सम्पत्ति कमाता है, पर वैज्ञानिकों को उसका नगण्य अंश बेतन, पुरस्कार आदि के रूप में देता है। इसी को अतिरिक्त आय या अतिरिक्त लाभ कहा जाता है। यही शोषण है।

ऐसे ही खेतों में किसान, मजदूर काम करके कपास, गन्ना, पटसन आदि तय्यार करते हैं। उन्हें उनका नगण्य दाम देकर, कारखानों में उनके द्वारा कपड़ा, चीनी, आदि बना कर हजारों गुना कमाता है। यह सब शोषण है। आखिर पूंजीपति कहां से सम्पत्ति पैदा करता है, उसके मस्तिष्कसे, या छूमन्तर से, या आकाश से सम्पत्ति नहीं टपकती है। किन्तु खेतों, खानों से कच्चा माल लाकर, मशीनों, कारखानों द्वारा उनसे हजारों तरहकी उपयोगी वस्तुयें

उन्हीं श्रमिकों के द्वारा बनवा कर बाजारोंमें महंगे भावों में बेचकर, ज्यादा से ज्यादा लाभ कमाना ही, सम्पत्ति का पैदा करना है। वह सब खेतों से, खानों, मशीनों से, कारखानों से, श्रमिकों से, खरीददारों से आती है।

ईर्ष्या समाजवाद की जननी नहीं है

'सम्पत्ति हजारों आखों में ईर्ष्या का कारण बनती है", यह ठीक है परन्तु दरिद्रों, गरीबोंके मनमें इतनी ईर्ष्या नहीं होती, जितनी बराबरीवाले धनिकों में। लखपति, करोड़पति से, करोड़पति, अरबपतिसे ईर्ष्या करता है। बराबर केलोगों में भी ईर्ष्या एवं प्रतिस्पर्धा होती ही है। दुर्योधन की ईर्ष्या ही महा भारत का कारण बनी थी।

कहा जाता है कि, "समाजवाद के प्रभाव का कारण यह नहीं है कि हर आदमी हर दूसरे आदमी को समान समझता है। समाजवाद के बुनियादी प्रभाव का कारण है मनुष्य की जन्म-जात ईर्ष्या, उनके प्रति जो सफल है, उसके प्रति जो समृद्ध उनके प्रति जिन्होंने कुछ पाया, जिन्होंने कुछ खोजा है, जिन्होंने कुछ बनाया। मनुष्य जाति का बड़ा हिस्सा एकदम तपस में रहा है। उसने कुछ भी पैदा नहीं किया। मनुष्य जाति के बड़े हिस्से ने न तो ज्ञान पैदा किया है, न सम्पत्ति पैदा की है, न शक्ति पैदा की है, लेकिन मनुष्य जाति का वह बड़ा हिस्सा ईर्ष्या से पीड़ित जरूर ही हो गया है। उसे दिखाई पड़ रहा है—सम्पत्ति है, ज्ञान है, बुद्धि है, लोगों के पास कुछ है और निश्चित ही करोड़ों लोगों की ईर्ष्या को जगाया जा सकता है। रूस में जो क्रांति हुई है वह ईर्ष्या से। चीन में जो क्रांति हुयी वह ईर्ष्या से, इस देश में जो समाजवाद की बातें हो रही हैं, वह ईर्ष्या जन्य है। (पृष्ठ १३)

परन्तु यह कथन सर्वथा ठीक नहीं है। हो सकता है कि इन क्रान्तियों में ईर्ष्या का भी कुछ हाथ रहा हो, परन्तु संसार में समानता, स्वतन्त्रता

भातृता की भावनाओं का भी अत्यन्ताभाव नहीं है। सामूहिक अन्यायों अत्याचारों से भी जन क्रान्ति होती है। जब सर्व साधारण के लिये रोटी, कपड़े, शिक्षा, चिकित्सा, मकान-दुकान, रोजी, रोजगार की व्यवस्था रहते हुये किसी के धनादिहरण का प्रयास किया जाय तो उसे ईर्ष्या जन्य कहा जा सकता है। परन्तु जहाँ सब उत्पादन-साधन सिमिट कर कुछ व्यक्तियों के पास ही पहुंच जायं, करोड़ों व्यक्ति बेरोजगार होकर रोटी, कपड़े के लिये भी परेशान होते हैं, ऐसे स्थलों में विशिष्ट उन्नेताओं के द्वारा, संगठन संयोजन आदि द्वारा, जनक्रान्ति होती है। आम तौर पर ईर्ष्या-द्वेष के आन्दोलन सफल नहीं होते हैं।

विफल होहिं रावण सर कैसे।
खल के सकल मनोरथ जैसे॥

पुरुषार्थ वैषम्य से ही विषमता

करोड़ों लोग बुद्धि हीन, धनहीन, शक्तिहीन क्यों? क्या यह विषमता स्वाभाविक है? महाभारत की दृष्टि से तो प्रतीत होता है कि कृत युग में न कोई राजा था, न दन्ड था, न दण्डविधान था। सभी धर्म के द्वारा नियन्त्रित होकर परस्पर एक दूसरों की रक्षा करते थे। रामराज्य वर्णन प्रसंग में कहा गया है—

"नहिं दरिद्र कोउ दुखी न दीना।
नहिं कोउ अबुध न लक्षण हीना॥"

अतः कहना पड़ता है कि प्रमाद विषमता या पुरुषार्थ की विषमतासे ही विषमता का होना अधिक युक्ति संगत है, कारण हेतु तारतम्य के बिना कार्य तारतम्य नहीं होता है। तात्कालिक या अतत्कालिक कर्मों के कारण ही जन्मों, कर्मों, शक्तियों, बुद्धियोंमें भेद हो सकता है, फिर भी सर्वत्र अदृष्टके ही आधार पर व्यवस्था नहीं हो सकती है। प्रसिद्ध है जहां दृष्टकार्य कारण या भाव संभव हो, वहां अदृष्ट की कल्पना नहीं करनी चाहिये—

"संभवति दृष्टफलकत्वे अदृष्ट कल्पनाया अन्याय्यत्वात् ।"

जहां साधनाभाव के कारण, रोजी रोजगार न होने के कारण गरीबी है, जहां शिक्षा स्वास्थ्य की व्यवस्था न होने तथा अन्य प्रतिकूल स्थितियों के कारण बुद्धि एवं शक्ति का अभाव है, वहां उसे अदृष्ट या करोड़ों मनुष्यों के आलस्य एवं निकम्मापनका परिणाम नहीं कहा जा सकता है। जबकि देखते हैं कि जहां उसकी व्यवस्था है, प्रबन्ध है, वैसी गरीबी, अज्ञान, अस्वस्थता नहीं है, उचित प्रबन्ध न होने से १० में ९ बच्चों के मर जाने की बात हो ही सकती है।

यह ठीक है कि "ईर्ष्या से कोई समाज निर्मित नहीं होता है। ईर्ष्या से किया गया समाज का रूपान्तरण फलदायी, सुखदायो, मंगलदायी नहोगा। ईर्ष्या सृजनात्मक शक्ति नहीं है। वह मिटा सकती है, बना नहीं सकती है, बनाने की कल्पना ही ईर्ष्या से नहीं होती है।" (पृष्ठ १३)

परन्तु यह भी कुछ अंशों में ही सत्य है। क्यों कि एक आलसी को यदि ईर्ष्या से भी कुछ करने की प्रेरणा मिलती है तो वह उसके लिए लाभदायक ही है। इसीलिए तो कहा गया है कि ऐसे लोगों से विरोध भी अच्छा है—

"वरं विरोधोऽपि समं महात्मभिः"

युधिष्ठिर से विरोध के कारण ही दुर्योधन ने अपने और अपने शासन को आदर्श बनाया था। यह किरातार्जुनीय काव्य के वर्णन से स्पष्ट है। परन्तु ईर्ष्या बिना भी समाजके हितार्थ, विषमता, निवारणार्थ, आर्थिक असंतुलन मिटाकर सभी की सुव्यवस्था के लिए भी आन्दोलन होते ही हैं। कार्ल मार्क्स का साथ देने वाला एञ्जेल्स दरिद्र एवं निर्बुद्ध नहीं था। वह भी मिल मालिक था। "पावर्टी आफ फिलासफी" जैसे दर्शन एवं विज्ञान पूर्ण ग्रन्थ का लेखक था। मार्क्स धन कमा सकता था। किसी भी सरकार का उच्च कार्य कर्त्ता हो सकता था। परन्तु भूखों रहकर भी उसने जनहित के लिए कार्य किया, ग्रन्थ लिखे, सिद्धांत स्थिर किये। भले वह भारतीय दर्शनों की खरी कसौटी पर खरा न उतरे, पर इतना तो कहा ही जा सकता है कि वह ईर्ष्या से प्रेरित नहीं था।

"संसार में ऐसे लोगों की कमी नहीं है, जो अपने बेटोंको मरते समय यह कह जायं, कि मैं मरूं तो मेरी लाश के टुकड़े टुकड़े करके पड़ोसियों के घरों में फेंक देना, ताकि जब मेरी आत्मा स्वर्ग जा रही हो तो पड़ोसियों को जेलखाने की ओर जाते देखकर मझे बड़ी शांति मिलेगी, मेरा दिल तृप्त हो जायगा। जिन्दगी भर मैं चाहता था कि इन्हें जेल में भेज दूं। मकान एक पड़ोसी का बना है। मेरे पास छोटा मकान है। तीसरे पड़ोसी के पास यह है। चौथे के पास वह है, और मेरे पास नहीं है, लेकिन इतना तो कर ही सकता हूं, कि मरने के बाद मेरी लाश के टुकड़े टुकड़े करवा कर पड़ोसियों के घर में फेंकवा दूं। ईर्ष्या से बड़े मकान छोटे बनाये जा सकते हैं; लेकिन छोटे मकान बड़े नहीं बनाये जा सकते हैं। क्योंकि ईर्ष्या के पास सृजनात्मक शक्ति नहीं है।" पृष्ठ १३-१४

यह बात भी अंशतः ठीक हो सकती है। ईर्ष्या का सदुपयोग करने होते हैं पर छोटे मकान बड़े भी बन सकते हैं। अधिकांश कार्य आजकल ईर्ष्या से प्रेरित होते हैं ईर्ष्यासे प्रेरित व्यक्ति भी मकान बनवाते हैं। मोटर खरीदते हैं। ईर्ष्या से प्रेरित होकर दान-पुण्य करके नाम कमाया जाता है। पर समाजवाद का बुनियादी आधार ईर्ष्या है, यह कहना प्रमाण सापेक्ष ही है।

मध्यम वर्ग ईर्ष्यालु नहीं है

यह कहना भी ठीक नहीं है कि "ईर्ष्या शायद गरीब को उतना नहीं सता रही है, जितना गरीब-अमीर के बीच के जो नेता खड़े हैं, उनको सता रही है। परन्तु वह ईर्ष्या अमीरों के खिलाफ जितना नुकसान पहुंचायेगी वह बड़ा नहीं है। इसका अन्तिम नुकसान गरीबों को ही पहुंचने वाला है। क्योंकि अमीर जो सम्पत्ति पैदा कर रहा है, वह अन्ततः गरीब तक पहुंच रही है, पहुंच ही जाती है। उसे रोकने का कोई उपाय नहीं है।" पृष्ठ १४

यह बात लेखक के ही तर्क के विरुद्ध है। यदि गरीबी ही ईर्ष्या का मूल है, तब तो गरीबों को ही अधिक ईर्ष्या होनी चाहिये। मध्य के व्यक्ति को कम ही ईर्ष्या होनी चाहिये। इसके अतिरिक्त यह भी तो हो सकता है किमध्य वर्ग के लोग कुछ पढ़े लिखे होते हैं शक्तिशाली होते हैं, वे कुछ कर सकते हैं। गरीबों, कमबुद्धिवालोंको प्रबुद्ध एवं संघटित कर सकते हैं। वस्तुस्थितिका स्पष्टीकरण कर सकतें हैं। उनमें सहिष्णुता अधिक होती है। सामान्यगरीब, अप्रबुद्ध लोग शोषकों के उन अन्यायों का मुकाबिला नहीं कर सकते हैं। उनका वे स्वयं मुकाबिला करते हैं, और उन्हें भी तय्यार करते हैं। वे विरोध व्यक्त कर सकते हैं। सामान्य जन व्यक्त नहीं कर पाते। इसी लिये उन्हें ईर्ष्यालु की संज्ञा दी जाती है। जैसा कि मार्क्स ने किया था। उसने शोषितों, शोषकों, उत्पीड़ितों, उत्पीड़कों का वर्गभेद करके वर्गभेद, वर्ग चेतना, तथा वर्ग संघर्ष एवं वर्ग क्रान्ति के लिये श्रमिकों को जगाया।

ऐसे भी उदाहरण मिलते ही हैं कि, मध्यस्थ व्यक्ति शोषितों का पक्ष लेकर अपने ऊपर सब प्रकारका खतरा भी मोल लेते हैं, जैसा कि 'नाग' और 'गरूड़' के बीच में पड़कर 'जीमूत वाहन' ने नाग को बचाने के लिये ही अपने आपको गरूड़ का चारा बताया। अन्त में सर्वभूत हितैषिता के कारण गरूड़ का मन बदल कर सभी नागों के लिये गरूड़ का खतरा सदा के लिये मिटा दिया। अन्यथा तो अंग्रेजों के विरुद्ध भारतीयों का स्वतन्त्रता आन्दोलन तथा उपनिवेशवाद के विरुद्ध अन्यान्य आन्दोलनों को भी शोषकों के दलाल ईर्ष्या मूलक कह सकते हैं।

एक बड़े मकान के आसपास दस पांच झोपड़े या छोटे छोटे मकानों को देखकर कोई अत्यन्त मूर्ख ही कह सकता है कि इन मकानों को छोटा करके यह मकान बड़ा हो गया है। कोई भी समझदार यह जानता है कि बड़े मकान को हटा देने से आसपास के दश छोटे मकान बड़े नहीं बन जायंगे। वस्तुतः उस बड़े मकान बनने की वजह से ही छोटे छोटे अन्य दश मकान भी बन जाते हैं। कोई बड़ा मकान अकेला नहीं बनता क्योंकि उस बड़े मकान को बनायेगा कौन ? उस बड़े मकान को हटा दें तो ये दश मकान भी विदा हो जायंगे।'

ईर्ष्या भावना अमीरों की थाती

कहा जाता है कि, 'दुनिया में दस बच्चे पैदा होते थे, नव मर जाते थे। पूञ्जीवाद ने उन नव बच्चों को भी बचा लिया, सिर्फ एक बच्चा मरता है। उन नव बच्चों की भीड़ इकट्ठी हो गयी। उनके पास छोटे मकान है, दुःखद है यह बात। उनके पास अच्छे मकान होने चाहिये, लेकिन अच्छे मकान के लिये यह सूत्र नहीं है कि बड़े मकान मिटा दिये जायं। अगर बड़े मकान मिट गये तो छोटे मकान विदा हो जायंगे। ये बड़े मकान के पीछे आये हैं। ये नव मकान जो बच रहे हैं दश में से, ये बड़े मकान के बनाने में बच रहे हैं। मजदूर को काम है, नौकरी है, रहने की जगह है, वह पूञ्जी पैदा होने के कारण हुयी है। इस पूञ्जी को बिखेर देने से मजदूर बचेगा नहीं। कोशिश हमें यह करनी चाहिये कि मजदूर भी कैसे पूंजीपति बन जायं, छोटे मकान भी कैसे बड़े हो जायं। अगर छोटे मकान बड़े बनाने हैं, तो और बहुत बड़े मकान बनाने पड़ेंगे, तभी ये बड़े हो जायंगे अन्यथा ये बड़े नहीं हो पायेंगे।' पृष्ठ १५ उक्त बात आंशिक रूप से सत्य हो सकती है।

कई लोग अपनी नाक कटाकर भी पड़ोसी का सगुन बिगड़ने में ही अपना पुरुषार्थ समझते हैं। किसी व्यक्ति ने तपस्या करके समुद्र से एक शंख प्राप्त किया। समुद्र ने कहा, 'इस शंख की पूजा करके, इससे जो मांगोगे, वही मिलेगा, परन्तु तुम्हारे पड़ोसियों को उससे दुगुनी वस्तुएं मिल जायंगी। घर पहुंच कर उसने शंख से प्रार्थना किया कि उसके पांच लड़के हो जायं। उसके पांच लड़के हो गये, परन्तु पड़ोसियों को दश दश लड़के हो गये। उसने मांगा कि उसके पास दो बड़े बड़े मकान और दश लाख रुपये हो जायं। उसके दो मकान और दश लाख रुपये हो गये और पड़ोसियों को चार चार मकान और बीस बीस लाख रुपये हो गये। अब उसके मन में ईर्ष्या पैदा हो गयी। उसने ईर्ष्या से अत्यन्त पीड़ित होकर शंख से कहा कि 'मेरे पांच लड़के मर जायं। तब उसके पांच लड़के मर गये। उधर पड़ोसियों के दश दश लड़के

भी मर गये। उसने शंखसे कहा कि 'मेरी एक आंख फूट जाय। इससे पड़ोसियों की दोनों आंखें फूट गयीं।

चाहे यह कहानी सत्य हो या मिथ्या, परन्तु इसका अर्थ तो प्रत्यक्ष ही सर्वत्र उपलब्ध होता है। इससे यह भी सिद्ध है कि ईर्ष्या गरीब को उतना नहीं सताती जितना अमीरों को। देवताओं में दूसरे देवता की, अपने से बड़ी भोग सामग्री विमान, बनितादि सामग्रियों को देखकर ईर्ष्या होती है।

बिशुद्ध भारतीय भावना

भारतीय उदाहरण इसके विपरीत भी है। अन्य लोग पिछड़े हुये लोगों को आगे बढ़ाने और आगे बढ़े हुये लोगों का पैर पकड़ कर, पीछे खींच कर, समानता लाने का प्रयत्न करते है। परन्तु यह सम्भव नहीं होता है। दूसरों की एक आंख या दोनों आंख फोड़ देने से भी किसी अन्धे के लिए आंख नहीं पैदा की जा सकती है।

भारतीयों की तो भावना यह है कि, पिछड़े हुये लोगों को और आगे बढ़ाओ। इसी लिये हमारी प्रतिदिन की प्रार्थनाओं में कहा जाता है—

'अपुत्राः पुत्रिणः सन्तु, पुत्रिणः सन्तु पौत्रिणः।
अधनाः सधनाः सन्तु, जीवन्तु शरदां शतम्॥'

हे प्रभो! जिनको पुत्र नहीं है, उन्हें पुत्र मिल जायं। पुत्र वालों को पौत्र और प्राप्त हो। निर्धन धनवान हो जायं और धनवान दीर्घजीवी हों इत्यादि।

भक्तराज प्रह्लाद ने भगवान् के वरदान मांगने का अनुरोध स्वीकार करते हुये यही मांगा था कि—'विश्व का स्वस्ति (कल्याण) हो और खल प्रसन्न हों, दुर्जन सज्जन हो जायं, सब प्राणी एक दूसरे का शुभ चिन्तन करें, कोई किसी का शोषक, भक्षक, अनिष्ट चिन्तक न हो, सब एक दूसरे के

पोषक, रक्षक, हितचिन्तक हों, सबका मन भद्रदर्शी हो, हम सबकी निष्काम प्रज्ञा सर्वेश्वर भगवान् के स्वरूप में प्रतिष्ठित हो।

'स्वस्त्यस्तु विश्वस्य खलः प्रसीदतां
ध्यायन्तु भूतानि शिवं मिथो धिया
मनश्च भद्रं भजतादधोक्षे
आवेश्यतांनो मतिरप्यहैतुकी।' श्रीम० भा० ५।१८।९

सत्पुरुष यही चाहते है कि दुर्जन सज्जन बन जायं, सज्जन शान्ति लाभ करें, शान्त बन्धन से मुक्त हों। मुक्त दूसरों की मुक्ति के प्रयत्न में लग जायं।

नाक पर फुन्सी होने पर नाक कटाना बुद्धिमानी नहीं है। नाक बनी रहे, फुन्सी दूर हो, इसी का प्रयत्न होना चाहिये। प्राणिमात्र परमेश्वर का परम पवित्र पुत्र है। अविद्या, काम, कर्म के योग से हीं उसमें दुर्जनता आती है, स्वभावतः नहीं। अतः दुर्जनता या शोषण की प्रवृत्ति दूर करना ही उन्नायकों का लक्ष्य होता है—

दुर्जनः सज्जनोभूयात् सज्जनः शान्तिमाप्नुयात्।
शान्तोमुच्येत बन्धेभ्यो मुक्तस्त्वन्यानविमोचयेत्॥

इस तरह ईर्ष्या बिना हितमूलक चेष्टायें होती है और हो सकती हैं। रन्तिदेव ने ४८ दिन निर्जल व्रत रहने के बाद उपलब्ध सक्तु के द्वारा क्रमेण अतिथियों का सत्कार किया। पानी पीने के लिये प्रस्तुत होते ही जब एक पुल्कस शिकारी अपने कुत्तों के लिये पानी मांगता है, तो वे बिना झुंझलाहट के पानी पिलाते हैं, और अन्त में यही वरदान मांगते है कि मुझे राज्य, स्वर्ग एवं अपवर्ग भी नहीं चाहिये किन्तु आर्त्त प्राणियों की आर्ति ही मुझे वरदान के रूप में मिलनी चाहिये, जिससे आर्त्त प्राणी सुखी हो जायं।

सम्पत्ति का विकेन्द्रीकरण होना चाहिये

धर्म निरपेक्ष भौतिक पूञ्जीवाद में यह सब बात कहां है। बांटकर खाने के सिद्धान्त में बड़ी पूञ्जी का इकट्ठा होना असम्भव ही होता है। एक

घर में १०० मन गेहूं है। यदि घर दश अन्य सदस्यों को बांट कर खाने का सिद्धान्त अपनायेगा तो दश मन ही मिलेगा। अन्य को वंचित कर, स्वयं समेट कर, धनी बनने की नीति चलेगी तभी एक के पास १०० मन गेहूं रह सकेगा। इसी तरह यदि संसार के सभी उत्पादन साधन, भूमि, सम्पत्ति, खाने, मशीनें, मुट्ठी भर लोगों के हाथ में रहेंगे, तो शेष करोड़ों व्यक्तियों को उत्पादन साधनों से वंचित होकर, गरीबी, भुखमरी का शिकार बनना ही पड़ेगा।

यदि पून्जीपति बड़ी बड़ी मशीनों, कल-कारखानों द्वारा ज्यादासे ज्यादा उपयोग की वस्तुयें कपड़ा, कम्बल, सूत, तेल, चीनी, साइकिल—मोटर बनाकर संसार के बाजारों पर कब्जा कर लेंगे, तो छोटे उद्योग-धन्धे कैसे पनप सकते हैं ? तेल मिलों का मुकाबिला, कोल्हू-बैल कैसे कर सकेंगे ? चीनी की मिलों का मुकाबिला कोल्हू द्वारा गुड़ बनाने वाले कैसे कर सकते हैं ? कपड़े की मिलों का मुकाबिला, हथकरघे वाले कैसे कर सकेंगे ? भूमि और खानें निःसीम नहीं हैं। वड़ के समान वे बढ़ने वाली भी नहीं हैं। यदि उनपर थोड़े से लोगों का ही अधिकार हो जायगा, तो शेष करोड़ों मनुष्योंके लिए क्या होगा ? अतः उत्पादन साधनों या सम्पतियों का दश पांच संस्थानों में ही अधिक-अधिक मात्रा में एकत्रित होने की अपेक्षा, कम मात्रामें ही सही, परन्तु अधिकाधिक लोगों में वितरित होना ही, सामाजिक हितके पक्ष में होता है। इसीलिए सम्पत्ति के केन्द्रीकरण की अपेक्षा विकेन्द्रीकरण ही न्याय संगत है।

यह कहा जा चुका कि है पेट, पीठ, टाँग, हाथ आदि सभी अङ्गों की न बराबरी ही अपेक्षित है, न अत्यन्त विषमता ही इष्ट होती है। किसी-किसी एक अङ्गका असंतुलित रूप से मोटा या पतला होना, अस्वस्थता ही है, स्वथता नहीं है। इसी प्रकार समाजमें संतुलित वैषम्य, अक्षम्य, नहीं हैं, परन्तु असंतुलित विषमता समाज के लिये रोग ही है।

धर्म निरपेक्ष भौतिकवाद पर आधारित समाजवाद या मार्क्सवाद के अनुसार सब साधनों का राष्ट्रीयकरण करके यथा योग्य काम

दाम; आराम के वितरण की व्यवस्था होती है। उसमें राष्ट्र की सम्पूर्ण शक्ति राष्ट्र या समाज के नाम पर सरकार में केन्द्रित होती है। सरकार एक दल के हाथ का खिलौना होती है। दल भी एक दो अधिनायकों के तन्त्र में होता है। ऐसी सरकारें दल या अधिनायक यदि ईमानदारी से काम करें तो समाज का हित हो सकता है। परन्तु यदि अयोग्य, हानिकारक, हुये तो उनको हटाना असम्भव होता है, क्योंकि उनके हाथ में पुलिस, सेना, खजाना आदि सभी ताकतें होती हैं। धनहीन, शक्तिहीन समाज, कुछ भी नहीं कर रखता। इसीलिये भारतीय नीतिशास्त्र एवं आधुनिक दृष्टिकोण से भी शक्ति, सम्पत्ति का विकेन्द्रीकरण ही समाज के हित में है। जिसमें प्रत्येक व्यक्ति के पास भूमि, सम्पत्ति, लघु उद्योग आदि हों जिसमें नापसन्द सरकार को हटाने के लिये आन्दोलन विरोध आदि हो सके। पोस्टर, नोटिस, लाउडस्पीकर, जीप आदि का प्रयोग किया जा सके। उक्त साधनों के बिना न सरकार का विरोध ही किया जा सकता है न उसे हटाया ही जा सकता है और न निर्वाचन ही लड़ा जा सकता है। फलतः लाचार होकर जनता को अन्यायी सरकार के अन्याय को सहना पड़ता है। जनता सदा के लिये पराधीनता की जंजीरों में बंध जाती है।

पून्जीवाद के विविध हथकंडे

इसी तरह अनियन्त्रित भौतिक पून्जीवाद भी सरकारों को अपने हाथ में रखता है। पून्जीपति, एम० एल० ए०, एम० पी० लोगों तथा विभिन्न पार्टियों को, पैसे के बल पर खरीद कर सकता है, जिसमें उनके विरुद्ध कोई आवाज न उठा सके। उनके न्याय, अन्याय, सब कुछ चल सके। इन्हीं के प्रभाव से एक एक एम० एल० ए० के निर्वाचन में चालीस-चालीस लाख रुपये खर्च किये जाते हैं। जीपों, पोस्टरों, कार्यकर्त्ताओं एवं गुण्डों के बल पर निर्वाचन जीता जाता है। यदि पचास करोड़ रुपया खर्च करने मे कोई राज्य सरकार हाथ में आ जाय तो सौदा महंगा नहीं समझा जाता है। दश,

पाँच अरब खर्च करने से यदि राष्ट्र की सरकार काबू में आ सकती है तो पूञ्जीपतियों के लिये यह सरल काम है। इस प्रकार अनियन्त्रित भौतिक समाजवाद और पूञ्जीवाद दोनों ही जनहित के अनुकूल नहीं है। जहाँ धर्म नहीं है, ईश्वर नहीं है, पाप से डर नहीं है वहां धन और सत्ता के दर्प में कुछ भी अनर्थ हो सकता है।

यह ठीक है कि बड़े मकानों के सहारे छोटे मकान पनप सकते हैं। जितने अधिक बड़े मकान बनेंगे, उनके आसपास छोटे मकान भी कुछ अधिक बड़े हो जायंगे। परन्तु इसमें पूञ्जीपतियों की सद्‌भावना नहीं जैसी ही होती है, उसका स्वार्थ ही मुख्य है। छोटे झोपड़ों, छोटे बड़े कुछ मकानों बिना बड़े मकानों का निर्माण और रक्षा ही न हो सकेगी। इसलिये उनका अस्तित्व और पोषण एक सीमित मात्रा में पूंजीपति को सह्य होता है।

वही जैसे तांगेवाला घोड़ा को इसीलिये चारा, दाना देता है जिससे वह मर न जाय, उसका काम करता रहे, तांगा खींचता रहे। उसके लिये पैसों की कमायी करता रहे। इसी तरह पूंजीपति, मिल मालिक, उद्योगपति करोड़ों अरबों की कमायी के लिये हजारों वैज्ञानिकों, इंजीनियरों, ओवर-सियरों, कारीगरों, कामगारों को वेतन देकर, मकान देकर, सुख-सुविधा देकर उनसे काम लेते है। यदि उनके बिना भी उनकी कमायी होती रहे, बाधा न पड़े तो वे उन्हें फूटी कौड़ी भी देने को तय्यार न होंगे। उनके दान-पुण्य तथा उनकी विद्वानों-महात्माओं की भक्ति पूजा भी इसलिये होती है कि उनके सब कृत्यों पर परदा पड़ता रहे और परलोककी सीट भी रिजर्व हो जाय, और शान्तिमय धार्मिक उपदेशों से, मजदूरों की ईर्ष्या और क्रोध की ज्वाला कुछ ठण्ढी हो जाय।

गीता-वचन का दुरुपयोग

कम्युनिस्ट कहते हैं कि गीता मजदूरों से कहती है कि, तुम्हारा काम करने में ही अधिकार है फल में अधिकार नहीं है। 'कर्मण्येवाधिकारस्ते मां

फलेषु कदाचन' बोनस, भत्ता, वेतन मत माँगो, आंदोलन मत करो, कर्त्तव्य बुद्धि से काम करते चलो । यद्यपि उक्त कथन परमार्थ पथ के पथिक को श्रौत-स्मार्त्त साधनाओं की ओर निष्काम भाव से प्रवृत्त करने के लिये ही है, फिर भी आपात रूप में वैसा दुरुपयोग उक्त वाक्य का किया भी जा सकता है ।

समाजवाद पूञ्जीवाद के विनाश का हेतु

मार्क्स के अनुसार अपना मुनाफा बढ़ाने के लिये ही पूञ्जीपति बड़े बड़े कारखाने बढ़ाते हैं । हजारों, लाखों, मजदूरों को काम में लगाते हैं । उत्तरोत्तर नयी नयी मशीनों को बनवा कर अरबों डालर कमाते है । साथ ही करोड़ों व्यक्तियों की रोजी रोजगार छीनकर उन्हें बेकार बनाते हैं । जब राष्ट्र में बेकारों की संख्या बढ़ जाती है, तब राष्ट्र की क्रयशक्ति घट जाती है । कारखानों में बनी वस्तुओं के खरीददार नहीं रह जाते और उनकी खपत बन्द हो जाती है । तब उनके कृत्यों से ही उनके मार्ग में गतिरोध खड़ा हो जाता है और तब मजदूरों एवं बेकार बेरोजगारों की पल्टन उनके विरुद्ध संघटित होकर, उनको खत्म करते का प्रयत्न करती है । पूजीपतियों के कारण ही कारखानों की बहुतायत और मजदूरों को बेकारों को एकत्रित होने का अवसर मिलता है और हड़ताल आदि द्वारा उनका काम काज ठप्प करके शक्तिशाली कदम उठाने का अवसर मिलता है । इस तरह पूंजी-वाद के पेट से ही उत्पन्न होकर समाजवाद पूञ्जीवाद के अन्त या विनाश का हेतु बनता है ।

श्री रजनीश के ही शब्दों में 'पूंजीवाद के बदौलत उत्पन्न मशीनों की महिमा से मजदूर व्यर्थ हो गया, और पचास साल में मजदूर नाम की कोई वस्तु रहेगी नहीं और उसकी जरूरत भी नहीं होगी ।' इस तरह के कथना-नुसार ही जहां तक मजदूरों के बिना काम नहीं चलता वहीं तक पूञ्जीपति

के द्वारा कुछ वैज्ञानिकों, इञ्जीनियरों, मजदूरों की रक्षा हो सकती है। परन्तु उनका अन्तिम लक्ष्य यही रहता है कि कम से कम समय में, कम से मजदूरों से कम से, कम खर्च पर ज्यादा से ज्यादा माल तय्यार हो और उससे ज्यादा से ज्यादा मुनाफा मिले। यदि पचास साल के बाद मजदूर की आवश्यकता खत्म हो जायगी, तो पून्जीवाद की मांगी मुराद मिल जायगी। मशीन ही मशीन भी बनायेंगी। तभी पचास साल में मजदूर सदा से लिये मिट जायगा। सभी पूंजीपति बन जायंगे। सभी मिल मालिक बन जायेंगे, यह कहना सर्वथा गलत है, क्योंकि फ़िर माल की खपत भी कहां होगी?

कहा जाता है कि, "चीन का ख्याल है कि हम सब बड़े मकान मिटाकर छोटे मकानों को बड़ा कर देंगे। नहीं, बड़ा मकान मिट जायगा और छोटा मकान जिसके पास है अगर वह बड़ा मकान बना सकता होता तो उसने बहुत पहले बड़ा मकान बना लिया होता।' पृष्ठ १५ परन्तु यह सब बाते निरर्थक हैं। समाजवाद या मार्क्सवाद का ऐसी निरर्थक बातों से कोई सम्बन्ध नहीं है। उसके अनुसार तो उत्पादन साधनों के व्यक्तिगत रहने से उत्पादन के मार्गमें गतिरोध होना अनिवार्य है। अतः उनका समाजीकरण होना अनिवार्य है। समाज के विशेषज्ञों द्वारा उत्पादन साधनों से समाज के हितार्थ उत्पादन होगा। व्यक्तिगत मुनाफा के लिये बड़े मकानों को मिटाकर छोटे मकानों को बड़ा बनाना उद्देश्य नहीं, बड़े मकानों को भी समाज का ही बना लेना अभीष्ट है।

दण्ड का भय

ख्रुश्चेव का यह कथन सत्य हो सकता है कि आज रूस के सामने जो सबसे महत्वपूर्ण सवाल है, वह यह कि रूसमें कोई भी काम करने को तय्यार नहीं। रूस के ज़वान काम करने को उत्सुक नहीं। यह भी सत्य हो सकता है कि स्टालिन ने जो उससे काम लिया था वह भी जबरदस्ती था। इसलिये

स्टालिन के मरने के बाद, स्टालिन के साथ रूस में जो हुआ वह बिल्कुल तर्कसंगत मालूम पड़ता है। जिस क्रेमलिन के चौराहे पर, जिस रेड स्क्वायर पर जिन्दगी भर सलामी ली थी स्टालिन ने, उसी स्क्वायर पर उसकी गड़ी हुयी लाश को उखाड़ कर हटा दिया गया, क्योंकि जितने दिन स्टालिन जिन्दा रहा रूस पर प्रेतकी भाँति छाया रहा और गहरी हत्या कराता रहा। गहरी हत्या के भय से काम चलाया। लेकिन हत्या का भय ढीला होते ही काम बन्द हुआ। परन्तु किसी सत्य सिद्धान्त को कुछ उदाहरणों के आधार पर झुठलाया नहीं जा सकता है। वस्तुतः उपर्युक्त बातें कोई नयी नहीं हैं। आमतौर पर आलस्य और प्रमाद से कर्तव्य विमुख होना साधारण सी बात है। इसीलिये लाभ के लोभ और हानि के भय से लोग आलस्य प्रमाद को मिटाकर काम में प्रवृत्त होते हैं। लाभ का लोभ हानि का डर न होने से कर्तव्य विमुखता स्वाभाविक है।

एक विद्यार्थी जाग जाग कर, रातभर पढ़कर, प्रथम श्रेणी में पास होता है। एक रातभर खर्राटा लेकर सोता है। यदि सबको बराबर ही फल मिले तो कोई ज्यादा प्रयास क्यों करेगा। दाम, आराम में विशेषता लाने के लिये ही कोई भी काम में विशेषता लायेगा।

मनु के अनुसार "दुर्लभो हि शुचि र्नरः" शुचि, ईमानदार प्राणी संसार में दुर्लभ होते हैं। "दण्डः सुप्तेषु जागर्ति", संसार के सोने पर भी दण्ड ही जागता रहता है। दण्ड के ही डर से लोग प्रमाद रहित होकर कर्तव्य पालन करते हैं। लाभ का लोभ भी उतना आलस्य प्रमाद नहीं मिटाता, जितना दण्ड का डर। दण्ड के डर से ही लोग चोरी डाका से बचते हैं। अन्यथा बिना प्रयास के ही बड़ी पून्जी हाथ लग सकती थी। अतः स्टालिन के दण्ड भय से रूस में काम होता रहा है, यह असम्भव नहीं है।

पून्जीपति भी व्यक्तिगत कामों के लिये भय और लोभ का प्रयोग करता ही है। दण्ड का भय न रहने से ही—

"अद्यात्काकः पुरोडाशं श्वाच लिह्यात् हविस्तथा"

कौवा यज्ञ का पुरोडाश खा जाता है, कुत्ता देवता की खीर खा जाता है। चोरी, डाका, व्यभिचार में आजादी बढ़ जाती है। कन्या को शरम, व्यापारी को नरम और शासन को गरम होना ही चाहिये। सेना में उग्र शासन से ही मुस्तैदी रहती है। पून्जीवादी, समाजवादी सभी शासनों में सेना का अनुशासन अनिवार्य ही हैं।

किसी भी देश के लिये काम में उत्साह न होना हानिकारक है। फिर भी चीन में, रूस में यदि ऐसा ही होता तो इतनी उन्नति न होती, किन्तु दोनों देश उन्नत हो रहे हैं। अमरीका को भी उनका लोहा मानना पड़ता है। उनसे सम्बन्ध और सन्धि के लिये बाध्य होना पड़ता है। समाजों और राष्ट्रों के इतने बड़े बड़े कारखाने आज बने है, जो कभी भी व्यक्तिगत हो ही नहीं सकते थे। बोकारो, भिलायी, राउरकेला के कारखानों का मुकाबिला कोई व्यक्तिगत कारखाना नहीं कर सकता। रूस, चीन में तो इनसे भी बड़े बड़े कारखाने हैं, विशेषज्ञ हैं, कारीगर है। नये नये यन्त्रों का आविष्कार भी हो रहा है। रूस एवं चीन ने भी बड़े बड़े परमाणु बम, हाइड्रोजन बम बना लिये हैं।

पून्जीवाद सम्पत्ति उत्पादन का प्रेरक नहीं

कहा जाता है कि 'पून्जीवाद ने एक प्रेरणा पैदा की है, व्यक्ति के भीतर कि वह सम्पत्ति पैदा करे। सम्पत्ति पैदा करने का एक आकर्षण पैदा किया है। वह आकर्षण पूंजीवादके विदा होते ही विदा हो जायगा।' पृ०१६ परन्तु यह सत्य नहीं है, क्योंकि आपकें अनुसार पून्जीवाद केवल डेढ़ सौ वर्ष से ही उत्पन्न हुआ है। परन्तु अरबों वर्ष के संसार में प्रमाद पुरुषार्थ की बात कोई नयी नहीं है। अनेक सम्राट बलवान बुद्धिमान हुये है। एक मरी मूषिका को बेच कर करोड़पति हो सके थे। साधारण सिपाही से सम्राट् बन सके थे। जो धार्मिक, दार्शनिक, ऐतिहासिक साहित्यों का ज्ञान रखते हैं, उनके लिये उक्त कथन की निःसारता स्पष्ट है। कठिन से कठिन

परिश्रम करके लोग उन्नति करते चले आ रहे हैं। क्या आकर्षण के बिना ही एकलव्य की तत्परता ने उसे अर्जुन के समान धानुष्क बनाया था। हां, सामान्य जनों में, व्यक्तिगत कार्यों में, हानि का डर, लाभ का लोभ अधिक होने से तत्परता अधिक होती है। सामूहिक कार्यों में लापरवाही होती है। परन्तु विशिष्ट समाजसेवी लोग अपने व्यक्तिगत कामों में भी इतनी दिलचस्पी नहीं लेते, जितनी सामाजिक कामों में लेते हैं। जापानी लोग राष्ट्रिय वस्तु की रक्षा के लिये जान की बाजी लगा देते हैं।

आयात निर्यात सम्पन्नता की कसौटी नहीं

इसी प्रकार योग्य शिक्षा के प्रभाव से सामूहिक कार्यों में भी, सोत्साह प्रवृत्ति जवानों में हो ही सकती है। स्वयं सेवकों का सामाजिक कार्यों में उत्साह देखा भी जाता है। भाड़े के सैनिकों को पैसा ज्यादा मिल सकता है, परन्तु वे राष्ट्रीय सैनिकों की बराबरी नहीं कर सकते।

इस कहने में भी कुछ सार नहीं है कि—"अगर पूजीवाद पूरी तरह विकसित हो जाय और पूञ्जीवाद से समाजवाद सहज आये तो यह घटना नहीं घटेगी, ऐसा वह आकर्षण नहीं विदा होगा। ऐसा हो सकता है, अमेरिकामें ऐसा सम्भव हो जायगा। पर यही सत्य है कि आनेवाले पचास वर्षों में अमरीका रोज समाजवाद की तरफ कदम उठायेगा, और रूस हर रोज पूंजीवाद की तरफ कदम उठायेगा। अमरीका रोज समाजवादी होता जा रहा है, बिना जाने, बिना क्रांतिके क्यों? क्योंकि सम्पत्ति जब अतिरिक्त हो जाती हैं, तब व्यक्तिगत मिलकियत व्यर्थ हो जाती है। व्यक्तिगत मिलकियत तभी व्यर्थ होती है जब सम्पत्ति अतिरिक्त हो जाय, जब जरूरत से ज्यादा हो जाय। पानी पर कोई कब्जा नहीं करता, क्योंकि पानी बहुत ज्यादा है लोग कम है। यदि कल गांव में पानी कम हो जाय, लोग ज्यादा हो जांय, तो पानी पर व्यक्तिगत मिलकियत शुरू हो जायगी। आज हवा मुक्त है, सबके लिये, कल हवा कम हो जाय, लोग ज्यादा बढ़ जांय तो, आक्सीजन कम हो जाय, तो जिनके पास सुविधा है, समझ है, आक्सीजन के टैंक

अपने घरों में बन्द करके रखेंगे। उस पर भी व्यक्तिगत मिलकियत शुरू हो जायगी।

सम्पत्ति पर तब तक व्यक्तिगत मिलकियत रहेगी ही जब तक सम्पत्ति कम है और लोग ज्यादा है। एक ही तर्क संगत, एक ही स्वाभाविक संभावना है, व्यक्तिगत सम्पत्ति के विदा होने की, और वह यह कि, सम्पत्ति पानी और हवा की तरह अतिरिक्त मात्रा में पैदा हो जाय, यह संभव हो जायगा। आज भी अमरीका में, हम जिसे गरीब समझते हैं, वह रूस के मापदण्डों के हिसाब से अमीर है। आज रूस में जिसे बहुत सुविधा सम्पन्न कहें, वह अमरीका के गरीब से पीछे खड़ा हुआ है। लेकिन यह बहुत आकस्मिक नहीं है। लेकिन चिन्तनीय तो है ही।

क्या यह विचारणीय नहीं है कि पचास वर्ष की समाजवादी व्यवस्था के बाद भी रूस एक बड़ा गरीब देश है। दस सालों से तो अपना भोजन भी खुद नहीं पैदा कर पा रहा है। आप ही अपना भोजन बाहर से मगाँ रहे हैं ऐसा नही, रूस भी दस सालों से पून्जीवादी मुल्कों से भोजन खरीद रहा है। समाजवादी पेट को भी पून्जीवादी हाथों को ही भरना पड़ेगा, तो समाजवाद का क्या होगा ?" पृ०१६--१७ उक्त बातें केवल पून्जीवादियों के दलालों का प्रचार मात्र हैं।

वस्तु स्थिति ऐसी नहीं है। रूस, अमरीका से मुकाबिला करने के लिये उसके समान ही अणुबम, हाईड्रोजन बमका निर्माण कर रहा है। चन्द्र-लोक में उसकी गाड़ी सालों तक काम कर सकती है। अमरीका किसी भी हालत में अपने आपको रूस से बीस नहीं समझ सक रहा है। जिसने हिटलर की अज़ेय शक्ति को परास्त किया, संसार के अधिकांश देश जिससे शस्त्र और विविध वायुयानों का, अस्त्र का आयात करते हैं, वह बहुत बड़ा गरीब देश है, यह कहना संसार के आंख में धूलि डालने का प्रयत्न है। समृद्ध देशों में भी कभी परिस्थितिवसात् किन्ही वस्तुओं की कमी होती है। आयात निर्यात तो सभी देश आपस में करते ही रहते हैं। अमरीका को अरब देशों

से तेल का आयात करना पड़ता हैं। कई चीज उसे भारत से मंगानी पड़ती है। रूस, अमरीका के भी परस्पर व्यापार होते हैं। कई चीज अमरीका रूस से मंगाता है, कई चीज रूस भेजता है। अतः यह सब बातें गरीबी, अमीरी की कसौटी नहीं है। चीन भी गरीब नहीं है। उसकी आबादी सबसे बड़ी है ७०,८० करोड़ की आबादी वाले देश ने कभी कहीं से कोई अन्न मंगा लिये, इतने से ही वह गरीब नहीं कहा जा सकता है।

इङ्गलैण्ड, फ्रांस, इटली, नार्वे आदि देश भी पून्जीवादी ही देश हैं। वे भी अमरीका के समान ही क्यों नहीं धनवान हो गये हैं? वे देश भी विभिन्न देशों से अन्न, पटसन आदि कई वस्तुयें मंगाते ही हैं। आज तो अमीरी-गरीबी का मान दण्ड अन्न का मंगाना या न मंगाना है ही नहीं, अरब देश आज पेंट्रोल एवं डीजल बेचकर अधिकाधिक सम्पत्ति वाले हो रहे हैं। उन्होंने विकासशील देशों की सहायता के लिये सामूहिक बैंक की व्यवस्था की है, परन्तु गेहूं, चावल आदि उन्हें अन्य देशों से ही मंगाना पड़ता है।

आवश्यकता से ही सम्पत्ति पैदा होती है

वस्तुतः यह शुद्ध भ्रामक प्रचार है कि, पून्जीवाद के विदा होते ही सम्पत्ति पैदा करने का आकर्षण या प्रेरणा विदा हो जायगा। कारण सदा सर्वदा ही मनुष्यों में सम्पत्ति पैदा करने का आकर्षण रहता ही है। परिस्थितियों एवं साधन सामग्रियों के अनुकूल होने में आकर्षण, उत्साह या प्रेरणा कारगर होती है, अन्यथा असफल हो जाती हैं। क्षुधा, पिपासा प्रत्येक प्राणी को अन्न, जल प्राप्ति के लिये प्रेरणा करते रहते हैं। आवश्यकता आविष्कार की जननी होती है। वर्षा, शीत, उष्णा से पीड़ित होकर प्राणी उससे बचाव के लिये मकान बनाता है, कपड़ा बनाता हैं। रोग से पीड़ित होकर उससे बचाव के लिये चिकित्सा का प्रबन्ध करता है, औषधों की खोज करता है। अज्ञान निराकरणार्थ शिक्षा की व्यवस्था करता है। यह सब बातें वर्तमान भौतिक पून्जीवाद की देन नहीं हैं।

मनुष्य ही नहीं, पशु पक्षी भी, कीड़े-मकोड़ें भी सबेरा होते ही भोजनकी तलाश के लिये चल पड़ते है। पशु-पक्षी आदि भी अधिकाधिक चारा कहां, कब-कब मिलता रहेगा, इस बात की जानकारी प्राप्त करते हैं। चींटी, मधुमक्खी आदि अभीष्ट वस्तुओं का संग्रह भी पर्याप्त मात्रामें रखते हैं। इसी तरह मनुष्य भी करोड़ों वर्षों से, केवल डेढ़ सौ वर्षों से नहीं, नाना प्रकारकी उपभोग सामग्रियों एवं उनकी प्राप्ति के स्रोतों की खोज करता रहा है, उसे यह भी मालूम हो सका था कि गेहूं, चावल, घी, दूध, कपड़े आदि स्थायी वस्तु नहीं है। इनका संग्रह भी अधिक टिकाऊ नहीं होता हैं। इसी लिये विनिमय प्रथा का प्रचलन करके मुद्रा, दीनार, सुवर्ण, रत्न, मणि, नोट्स, हुन्डी आदि का प्रचलन करके, भोग प्राप्ति का स्थायी प्रबन्ध भी उसने किया है। सुवर्ण, रत्न, हीरे, मणि आदि बहुमूल्य वस्तुओं के बल पर वह कहीं पर भी विविध भूषण, वसन, भोजन आदि का प्रबन्ध कर सकता है। इसीलिये कौटल्य ने तो मनुष्यवती भूमि को ही मुख्य अर्थ माना है, क्यों कि सब सामग्रियों का स्रोत वही है। अरबों, खरबों धन बटोरने की प्रथा और प्रेरणा डेढ़ सौ वर्ष आयु बाले पून्जीवाद से नहीं मिली, किन्त मनुष्य की आवश्यकता, लोभ, तृष्णा, आदि के कारण मनुष्य में यह सब अनादि काल से ही है।

राजा, महाराजा, सम्राट् उनके वैभव मुकुट, किरीट, हीरें, मोतियों की मालाएं, दिव्य अङ्गद, कंकण दिव्य साल-दुसाल आदि का विकास केवल ड़ेढ़ सौ वर्ष के पून्जी वाद की देन नहीं है। यह सब लाखों करोड़ों वर्षों से दुनिया में है। बड़े-बड़े महलों का निर्माण भी बहुत पुरानी बात है। सोने की लंका, रत्नों, मणियों की द्वारका पुरी के चमत्कार, ड़ेढ़ सौ वर्ष के नही हैं। ताज महल भी ड़ेढ़ सौ बर्ष के पहले ही का है। ईर्ष्या से ही सही जिनमें सामर्थ्य है, वे वैसी ही बस्तुयें बनाने या प्राप्त करने का प्रयत्न करते हैं। पून्जीवाद की सम्पत्ति पैदा करने की प्रेरणा सफल होती तो आज बेकारों, बेरोजगारों की भीड़ न दिखाई पड़ती, फुट पाथ पर सोने वालों की संख्यामें वृद्धि न होती।

असल में तो बौद्धिक श्रम एवं शारीरिक श्रम वाले श्रमिकों के प्रभाव से मशीनों का युग आया है। उससे होने वाले फायदे से आकृष्ट होकर लाखों मजदूरों का काम सौ दो सौ मजदूरो से ही चलाने के लिये पून्जी पतियों ने मशीन को अपनाया, और उनसे बेहद लाभ उठाया। आज उसी के कारण संसार की सम्पत्ति एवं साधन मुट्ठी भर लोगोंको मिल गया। करोड़ों मनुष्यों के हिस्से में बेकारी, बेरोजगारी, भुखमरी आयी। उसी का अन्त करने के लिए समाजवादी योजना है।

पानी और हवा के समान सम्पत्ति मनुष्यों के उपयोग से बहुत अधिक हो जायगी, तो उसे बटोर कर कोई व्यक्तिगत बनाने का प्रयत्न नहीं करेगा, यह तर्क समाजवादियों का है। मार्क्सवाद आदि समाजवादी पुस्तकोंमें ऐसे तर्कों का बहुधा उल्लेख हुआ है। धर्महीन, आधुनिक पून्जीवाद के दलालोंने उसकी चोरी करके, पून्जीवाद के पक्ष में जोड़ा है, जो कि सर्वथा अनफिट है, क्यों कि कोई भी पून्जीपति व्यक्ति बिना मुनाफा के लोभ से कोई वस्तु पैदा ही नहीं करता। वह तो उसी वस्तु का निर्माण करेगा, उसीपर पून्जी लगायेगा; जिसकी खूब मांग हो, जिसकी कमी हो, जिससे खूब दाम वसूल हो।

पून्जीपतिके पास निःसीम पून्जी भी नहीं होती की वे नये-नये कारखाने बनाकर मुनाफा के लिये नयी उपयोगी वस्तुओं का निर्माण करे। जब पून्जी पति अपने माल का सस्ता होना पसन्द नहीं करता, तो विना मूल्य के ही सर्व साधारण को प्राप्त करानेके लिए माल क्यो तय्यार करेगा। सामान्य मनुष्य भी प्रयोजन के बिना, किसी लाभ की आशा विना कोई काम नहीं करता है। "नहि प्रयोजन मनुद्दश्य मन्दोऽपि प्रवर्त्तते" बिना प्रयोजन के कोई अनजान पुरुष भी नहीं प्रवृत्ति होता है। यह बात अलग है किसीका व्यक्तिगत प्रयोजन होता है, किसी का सामाजिक प्रयोजन होता है। पानी और हवा किसी मनुष्य की कृति नहीं हैं, वह ईश्वर की देन है। उसका भी प्रयोजन है प्राणियों का कल्याण। उसमें भी प्राणियों के धर्माधर्म का सहयोग है। हर एक सुख या दुःख तथा उनके साधन निहेतुक नहीं होते। अतः प्राणियों के धर्माधर्म के अनुसार उन्हें सुख, सुख साधन तथा दुःख एवं दुःख साधन मिला करते हैं।

लाभ का लोभ एवं असीमित तृष्णा

हां तो मनुष्य जो भी करेगा, जो भी बनायेगा वह लाभके लिए। पून्जी पति व्यक्ति अपने मुनाफे के लिए ही सम्पत्ति पैदा करेगा। इसी लिए पून्जी वाद के बलबूते पर पानी और हवा के समान सम्पत्ति का अतिरेक असम्भव है। कोई समय ऐसा भी था, जब बिना मूल्य के प्रकाश नहीं मिलता था। दीपक, लालटेन टार्च सभी मूल्य सापेक्ष है। हर जगह पानी भी नहीं सुलभ था। पानी का भी दाम देना पड़ता था। परन्तु आज की सरकारों, कारपोरेशन आदि के प्रबन्ध से सड़कों पर, राजमार्गों, उपमार्गों पर सर्वत्र विद्युत प्रकाश जगमगा रहा है। हर जगह फौव्वारे एवं सुन्दर जल नलों द्वारा सबको सर्वत्र सुलभ होता है। उसी प्रकार समाजवादी सरकारें इतना अन्न पानी पैदा कर देगी कि प्रकाश और पानी के समान सबको सर्वत्र विविध भोजन-पान, दुग्ध, दधि, मक्खन आदि भी सुलभ हो सकेंगे। वस्त्र, भूषण तथा विभिन्न आमोद-प्रमोद की सामग्रियां सुलभ हो सकेगी। पून्जी पति तो व्यक्तिगत मुनाफे के लिये ही सम्पत्ति पैदा करता है। परन्तु समाजवादी सरकारें तो केवल उपयोग के लिए ही सम्पत्ति पैदा करेगी। अधिकाधिक वैज्ञानिक विकास से, उत्तमोत्तम मशीनों कारखानों द्वारा विविध वस्तु में उपभोक्ताओं की संख्या के अनुसार निर्मित हो जाने पर कोई उन्हें संग्रह न करेगा। क्यों कि वह सबको सर्वत्र सुलभ रहैगी। फिर कोई जैसे पानी और हवा को बांधकर नहीं चलता, घर में भरकर नहीं रखता, वैसे ही कोई भी किसी भी उपभोग सामग्री वस्त्र, भूषण, मोटर, वायुयान, साइकिल, दुग्ध, मक्खन, भोजन आदि सामग्रियों का संग्रह नहीं करेगा, बांधकर घर में नहीं धरेगा। कोई ज्यादा से ज्यादा दश जोड़े बस्त्र, दश जोड़े जूते, दश मोटर रख लेगा। परन्तु पून्जीपति तो अरबों, हीरों को बटोरकर घर लेने पर भी सन्तुष्ट नहीं होता, तृष्णा बढ़ती ही चली जाती है। यदि तृष्णा मिट जाय तब तो व्यक्तिगत सम्पत्ति को सामाजिक बना देने पर तो समाजवाद हो ही जाता

है। धर्मनिरपेक्ष भौतिक समाजवाद और भौतिक धर्महीन पूञ्जीवाद के समर्थक तो इन बातों की केवल कल्पना ही करते हैं। कहीं भी उनके एतिहासिक उदाहरण नहीं है।

धर्म नियंत्रित शासन तंत्र में ही वास्तविक समाजवाद

आध्यात्मवाद पर आधारित धर्म नियन्त्रित रामराज्य में तो यह सब व्यावहरिक रूप में सम्पन्न हो सकता था। "वस्तु विनु गथ पाइये" तुलसी के अनुसार रामराज्य में बिना मूल्य के सबको सब वस्तु मिलती है, क्यों कि धर्म नियन्त्रित व्यक्ति या धर्मनियन्त्रित समाज तो समाज एवं प्राणियोंके कल्याणार्थ ही अनन्तानन्त वैभव उत्पादन करते थे। वहां व्यक्तिगत मुनाफा का प्रश्न ही नहीं था। उसी के छोटे-छोटे नमूने आज भी भारत में दिखाई देते है। कहीं-ठण्ढे सरबत के प्याऊं गर्मियों के दिनों में, वाराणसी आदि में मिलते हैं, जिनमें जो चाहे बिना मूल्य का शरवत पी सकता हैं। अनेक स्थानो में खीर पूड़ी के भण्डारे, लड्डू, पूड़ी, मोहन भोग के भण्डारे, और सदावर्त लगे हुये दिखाई देते है। कुम्भ पर्वो पर साधु सन्तों तथा किन्हीं भी अभ्यागतोंके लिए उत्तमोत्तम भोजन सामग्री बिना दाम के ही मिल सकती है। धर्मनियंत्रित धनवान् अपने गाढ़े पसीने की कमाई से समाज या जनता के हितार्थ सीमित मात्रा में कुछ अपने धन का सदुपयोग करते हैं। धर्मनियन्त्रित व्यक्ति तो समाजीकरण बिना भी अपनी सीमित सम्पत्तियों से भी परोपकार करते हैं। रन्ति देव का उदाहरण प्रस्तुत किया ही गया है।

कहा जाता है कि 'पून्जीवाद एक व्यक्तिगत प्रेरणा देता है, प्रत्येक व्यक्ति को काम करने के लिये वह प्रेरणा खत्म हो जाय तो फिर एक ही रास्ता है, पीछेसे बन्दूक लगाओ। लेकिन बन्दूक की व्यवस्था स्थायी व्यवस्था नहीं हो सकती" परन्तु यह सब पूर्वोक्त युक्तियों से समाहित है। सामान्य जनों के लिए हानि का डर और लाभ का लोभ प्रेरणा का स्रोत है।

ईर्ष्या भी प्रेरणा दे सकती है। परन्तु डेढ़ सौ वर्षों के पून्जीवाद द्वारा ही ऐसी प्रेरणा मिलती हैं, यह बात युक्ति शून्य ही है।

विवेकयुक्त दण्ड

कहा जाता है कि, "जब ख्रुश्चेव स्टालिनकी निन्दा करते हुये कह रहे थे कि स्टालिनने लाखों लोगों की हत्या की, साइबेरिया भेजा, जेलमें डाला, सारे मुल्क को खूनमें डूबो दिया, तब किसी ने उठकर पीछेसे कहा कि महाशय जो ये बाते आप कह रहे हैं, जब स्टालिन यह सब कर रहा था, तब भी आप स्टालितके साथ थे, तब आप कहां चले गये थे ! ख्रुश्चेव एक मिनट चुप रहे और फिर उन्होंने कहा—'जिन महाशय ने यह बात कही है, कृपा करके अपना नाम और पता दे दें।' लेकिन आदमी फिर नहीं उठा। फिर ख्रुश्चेवने कहा—'आप कृपा करके उठकर अपनी शक्ल ही दिखा दें।' लेकिन आदमीका कोई पता नहीं चला। फिर ख्रुश्चेव ने कहा जिस वजहसे आप दोबारा नहीं उठ रहे हैं, उसी वजहसे मैं चुप रह गया था, जिन्दा रहना था, तो चुप रहना जरूरी था।" पृ० १७ यह बात ठीक हो सकती है कि भीषण दण्ड विधान उद्वेजक होता है। इसीलिये धर्म शास्त्रों ने दण्ड विधान के लिये बहुत विवेककी आवश्यकता बतलायी है। अपराध के गौरव, लाघव के अनुसार ही दण्ड विधान में लाघव, गौरव वर्तना उचित है। परन्तु किसी भी अनियन्त्रित शासन तन्त्रमें यही शिकायत हो सकती है। धर्म विहीन साम्राज्य वाद से भी धर्म निरपेक्ष अधिनायकतन्त्र भयंकर होता है। परन्तु अपराध करने की प्रवृत्ति एवं कर्त्तव्य पालन में तत्परता का कारण भी होता है।

महाकवि कालिदास के अनुसार कार्त्तवीर्य्यार्जुन राजा, योग प्रभाव से अपने राज्यके नागरिकों के मनमें दुष्ट कर्म की कल्पना होते ही, उनके सामने धनुषवाण धारण किये हुये प्रकट होकर उनके आन्तर सूक्ष्म शरीर पर भी शासन करता है। इसी लिये तो शरीर से नहीं, मनसे भी कोई दुष्कर्मकी कल्पना करनेमें भी स्वतन्त्र नहीं था।

"अकार्य्यचिन्ता समकालमेव प्रादुर्भवंश्चापधरः पुरस्तात्।
अन्तः शरीरेष्यपि यः प्रजानां प्रत्यादिदेशाविनयं विनेता ॥" रघुवंश

शासन का गरम या उग्र होना लाभदायक ही होता है, परन्तु निरपराध को दिया गया दण्ड शासन और राष्ट्र के विनाश का हेतु होता है। इसी लिये विवेक अत्यन्त आवश्यक है।

परार्थ का प्राधान्य

कहा जाता है कि, "पून्जीवाद सम्पत्ति पैदा कराता है। बड़े सहज ढंगसे किसी के पीछे कोड़ा नहीं, किसीके पीछे बन्दूक नहीं। लेकिन व्यक्तिकी अपनी छोटी सी दुनियां है। उसकी अपनी प्रेरणा है। अगर अपनी पत्नी बीमार है, तो आदमी रात भर काम कर सकता है लेकिन मनुष्य बीमार है, तो वह सोचेगा, मनुष्य तो इतने दूर की बात हो जाती है। उससे कोई सम्बन्ध नहीं बनता है, उससे कोई प्रेरणा नहीं पैदा होती। अगर मुझसे कोई कहता है, मेरे बेटे को पढ़ाना है, तो मैं गढ़ा खोद सकता हूं, भरी धूप में। अगर कोई कहता है, मनुष्य को शिक्षित करना है तो बात हवामें खो जाती है। कहीं मेरे उपर चोट नहीं पहुंचती है। अपने लिये घर बनाना है, छाया करनी है बाग लगानी है, जिसमें फूल खिलेगा तो समझमें आती है बात। जब कोई राष्ट्र के बगीचे की बात करता है। तब बात खो जाती है।

आदमी के चेतनाका दायरा बहुत छोटा होता है। वैसे ही जैसे दिये का प्रकाश चार पांच फुटके आसपास पड़ता है। ऐसी ही आदमी की चेतना है। बहुत सीमित घेरेमें पड़ती है। जिस घेरेमें पड़ती है उसीका नाम है परिवार। अभी आदमीं परिवार से अधिक बड़े घेरे के योग्य नहीं है। परिवारके बाहर जैसे बडा घेरा हो जाता है, वैसा ही आदमी सुस्त होता चला जाता है। उसकी प्रेरणा खोती चली जाती है। राष्ट्र, मनुष्यता, विश्व इनसे बड़े घेरे हैं कि मनुष्यकी चेतना पर इनका कोई परिणाम नहीं होता। पून्जीवाद ने

उसकी व्यक्तिगत चेतनाके आधापर सम्पत्ति सृजनकी एक दौड़ पैदा कर दी हैं, और सम्पत्ति पैदा की है, ज्ञान पैदा किया है।

ईसाके मरनेके बाद १८५० वर्षमें जितना ज्ञान संसारमें पैदा हुआ, पून्जीवादके डेढ़ सौ वर्ष में उतना ज्ञान पैदा हुआ। उतना इधर पांच वर्षों में ज्ञान पैदा हुआ। पुरानी दुनिया १८५० वर्षमें जितना काम करती थी, वह पून्जीवादकी दुनिया पांच वर्षमें पूरा कर रही है। यह एक चमत्कार है, लेकिन हम पून्जीवादको गाली देते जा रहे हैं. बिना यह समझे कि मार्ग तय्यार कर रहा है जहां से सम्पत्ति बरस जायगी। मार्ग तय्यार कर रहा है, जहां वह प्रत्येक व्यक्ति को सम्पत्ति के सृजन में संलग्न कर देगा। वह मार्ग तय्यार कर रहा है, जहां से धीरे-धीरे सम्पत्तिका अतिरेक हो जायगा उसदिन पून्जीवाद का बेटा सहज ही में पैदा होगा।' इत्यादि पृ०१७-१८

परन्तु यह बात पूर्वोक्त रीतिसे निःसार सिद्ध हो जाती है, क्योंकि सम्पत्ति पैदा करने की प्रेरणा नयी नहीं है। धन कमाने की इच्छा, धनवान् बननेकी इच्छा सबको स्वभावसे ही होती है। अनुकूल साधनों और परिस्थितिके होने पर इच्छा सफल होती है अन्यथा विफल होती है। दुनियामें किसीको स्वार्थ का पाठ पढ़ना नहीं पड़ता है। अनादिकाल से प्राणी स्वार्थी होता है। परिवार तो फिर भी कुछ परार्थ से भी सम्बन्ध रखता है। संसारमें माता, पिता, पुत्र, भ्राता आदि सबके पहले अपना व्यक्तिगत स्वार्थ होता है। इसी लिये व्यक्तिगत सुखों, सुख साधनोंका विरोध होनेसे परिवारका हित भी पीछे पड़ जाता है। "आत्मनस्तु कामाय सर्वं प्रियं भवति" यह प्रसिद्ध ही है। परन्तु किंचित् विचार करने पर मनुष्योंमें ही नहीं, पशुओंमें भी परार्थ का ही प्राधान्य होता है। जंगलके पशु भी अपने बच्चोंकी रक्षाके लिये अपना प्राण तक दे देते हैं। व्यक्ति, परिवार के हितार्थ अपने हित को खतरे में डाल लेता है। पत्नी-बच्चों तथा माता-पिताका भरण पोषण करनेके लिये प्राणी बड़ा से बड़ा त्याग कर सकता है। ठीक इसी तरह समाज एवं राष्ट्रके लिये भी त्याग बलिदान किया जा सकता है। जहां समाजके हितके साथ ही आत्महित जुड़ा होता है, वहां तो कहना ही क्या है। राष्ट्र या समाजमें

यदि प्लेग या कालरा फैलेगा, तो व्यक्तियों पर भी उसका असर तत्काल ही पड़ता है। गांवमें आग लगती है, तो मेरे घरमें आग नहीं लगी है, यह समझकर कोई भी उपेक्षा नहीं करता है। सभी लोग आग बुझाने में सहयोग करते हैं। इसी तरह आदत डालने पर स्वार्थ गौण हो जाता है। एक सीमित घेरे और दायरे को छोड़कर परिवार, समाज, राष्ट्र और विश्व हितमें भी तत्परता और सहयोग होता है। जब राष्ट्रकी समृद्धिमें ही व्यक्तिगत सुविधायें भी सुलभ हो सकती हैं, तब तो स्वार्थ की दृष्टि से भी राष्ट्र की समृद्धि के लिये प्राणी दत्तचित होता है। इसी दृष्टिसे रूस, चीनमें तत्परता के साथ लोग राष्ट्रोन्नति में लगे हैं। जापान में तो वैसा समाज न होने पर भी राष्ट्रीयता की उत्कृष्ट भावना है।

सम्पत्ति पूर्व स्थिति निरपेक्ष नहीं

रूस चीन आदिमें भी शारीरिक एवं बौद्धिक योग्यता की परख और उपयोग होता है। इसलिये विशिष्ट वैज्ञानिक एक उत्कृष्ट इंजीनियरके उत्कृष्ट योग्यता के अनुसार ही उनके काम दाम, आराम की व्यवस्था होती है। दाम, आराम, की विशेषता के लिये योग्यता एवं कामों में भी विशेषता लाने की होड़ चलती ही है। इसीलिये पून्जीवाद ने व्यक्तिगत चेतना के आधार पर सम्पत्ति सृजन की एक दौड़ पैदा की है, यह कहता सही नहीं है। यह दौड़ अनादि काल से है। मनुष्यों में ही नहीं पशु, पक्षियों में भी, जीवन साधन, चारा, ढूंढ़ने और संग्रह की भावना प्रचलित है। डेढ़ सौ वर्षों में जो ज्ञान और सम्पत्ति पैदा हुयी है, वह पूर्व स्थिति निरपेक्ष नहीं हैं। यदि पूर्व पृष्ठ भूमि वैसी न होती, तो ज्ञान एवं सम्पत्ति अर्जन में वैसी स्थिति नहीं हो सकती है मनुष्य उत्पन्न होकर पहले धीरे-धीरे बुद्धि और शक्ति का संचय करता है। उस पृष्ठ भूमि पर ही अगली प्रगति निर्भर करती है। पूर्व, पूर्व के ज्ञानों की सहायता से ही पून्जी उत्तरोत्तर ज्ञानों का विकास करती है।

पिछले पन्द्रह वर्षों, और पांच वर्षों की प्रगति की भी यही स्थिति है। यह प्रगति की स्थिति भी पून्जीवाद या पून्जीपति की देन नहीं हैं, किन्तु इसमें मुख्य हाथ वैज्ञानिकों, महायन्त्रों, मशीनों, कारखानों का हैं। उसका आविर्भाव, बौद्धिक एवं शारीरिक श्रम करने का कार्य, तो श्रमिक ने किया है। पून्जी पतियों ने पून्जी लगाकर उनसे वैसे ही फायदा उठाया है, जैसे सामूहिक भूमि पर सबले लोगों ने अधिकार कर उसे व्यक्तिगत बना लिया था। जंगली सामूहिक फलों पर अधिकार कर, कोई,उनको बटोर कर व्यक्तिगत बना लेता है। वैसे ही कुछ पैसा खर्च कर पून्जीपतियों ने बौद्धिक एवं दैहिक कुशलता और श्रमसे निर्मित यन्त्रों, महायन्त्रों, को स्वायत्त करके पून्जी बना लिया और वे उसे पून्जीबाद की देन समझने लगे। वस्तुतः इन सभी विकासों का श्रेय यन्त्रों एवं उनके आविर्भाव करने वालों को ही देना चाहिये।

मशीनों के प्रभाव से ही जितना दशलाख मनुष्यों से उत्पादन हो सकता है, उतना हजार आदमी उत्पादन कर सकते हैं, जितनी वस्तु हजारों वर्षों में भी नहीं उत्पादित हो सकती है, उतनी एक दिन में उत्पादित हो सकती है। यन्त्रों, महायन्त्रों के कारण जैसे पून्जीवादी व्यक्ति उत्पादन कर रहे हैं, उससे अधिक सरकारें उत्पादन कर रही हैं। समाजवादी सरकारों की भी उत्पादन की रफ्तार वैसे ही है। फिर इसके लिये पून्जीबाद को श्रेय कैसे दिया जा सकता है? हाँ कल कारखानों की स्थापना करके उनसे लाभ लेना, पहले पहल पून्जीपतियों ने इस लिए किया कि उनके पास पैसे थे, जिसके कारण वे मशीन खरीद सके। इसी लिए समाजवादी भी इतना श्रेय तो पून्जीबाद को देते ही हैं कि उसने बड़े-बड़े कारखाने खोले और एक ही जगह सैकड़ों कारखाने खोलकर, श्रमिकोंको एकत्रित होने का अवसर दिया। वैज्ञानिकों को भी नये-नये यन्त्रों के ईजाद करने के लिए धन और सुविधा देकर प्रोत्साहित किया और समाजवाद की भूमिका बना दिया। पर इन कार्यो के द्वारा भी उसने अपने मार्ग में ही गतिरोध पैदा करके समाजबाद के लिए अवसर दिया और अपना विनाश भी

कर लिया। पून्जीवाद का बेटा समाजवाद सहजमें नहीं पैदा होता है। उसके पैदा होने में पून्जीवाद को मरना ही पड़ता है। अतः यह कहना निरर्थक है कि—"पून्जीवाद गर्भ का काल है। उसके नौ महीने पूरे हो जाते हैं। पून्जीवाद जी ऐतिहासिक प्रक्रिया को पूरा हो जाने दें, क्योंकि जैसे पून्जीवाद सामन्तवाद को समाप्त कर ही पैदा होता है, वैसे पून्जीवाद को समाप्त करके ही समाजवाद पैदा होता है।" पृ० १८-१९

समाजवाद लाने के अनेक मार्ग

यह कहना भी निरर्थक है कि 'मार्क्स को भी कल्पना न थी कि रूस में पून्जीवाद समाप्त होगा क्योंकि रूसमें पून्जीवाद थे, ही नहीं। चीन साम्यवादी हो जायगा, इसकी कल्पना मार्क्स को न थी। क्योंकि चीन तो अत्यन्त दरिद्र था। मार्क्स की दृष्टि में अमरीका या जर्मनी में पून्जीवाद पहले टूटेगा। लेंलिन टूटा रूसमें, टूटा चीनमें, तोड़नेकी कोशिश चलती है हिन्दुस्तान में ये सब गरीब मुल्क हैं। इनके पास पून्जी की व्यवस्था नहीं है। लेकिन इनके पास गरीबों का बड़ा समूह है। उस समूह की ईर्ष्या को जगाया जा सकता है। पृ. १९। स्पष्ट है कि फलके अनुसार कारणकी कल्पना करनी चाहिए। मार्क्स के अनुसार उत्पादन साधनों, भूमि, सम्पत्ति, कल, कारखानों, उद्योगों का व्यक्तिगत होना ही पून्जीवाद है। उसका समाज के आयत्त होना ही समाजवाद है। उस समाजवाद के लिए वर्ग भेद, वर्ग चेतना, वर्ग संघर्ष, वर्ग विध्वंस के मार्ग से भी समाजवाद आता हैं। पूंजीवाद का विकास भी समाजवाद का एक साधन हैं।

मार्क्स के अनुसार इंग्लैण्ड, अमरीका जैसे लोकतंत्रवादी देशों में पार्लियामेन्ट्री सिस्टम से भी समाजवाद लाया जा सकता है। समाजवादी विचार के लोगों का बहुमत हो जाने पर एक प्रस्ताव के द्वारा ही राष्ट्र की भूमि, सम्पत्ति, उद्योगों, खानों का राष्ट्रीय करण हो सकता है। भारत में उसी

रास्ते समाजवाद आ रहा है। मार्क्स के अनुसार श्रमिकों, मजदूरों के द्वारा ही समाजवादी क्रान्ति होती है, किसानों के द्वारा नहीं, क्योंकि किसान स्वयं भी पूंजीपति हैं। उसके पास भी उत्पादन साधन भूमि है। भले वह छोटी पूंजी हो, परन्तु है वह भी पूंजी। चीन में किसानों ने ही क्रांति की। जिस किसी तरह भी राष्ट्र के उत्पादन साधनों का समाजीकरण ही समाजवाद है। वह पार्लियामेन्ट के प्रस्ताव से हो सकता है, वर्ग संघर्ष से भी हो सकता है। चीन में किसानों की क्रांति से हो गया।

कहा जाता है कि, 'मार्क्स ने दृढ़तापूर्वक कहा था कि भी क्रान्ति होगी तब सर्व हारा के ही अधिनायकत्व में होगी। उसने श्रमिक वर्ग को ही उदीयमान वर्ग माना है। शोषित एवं गरीब होनेपर भी किसान वर्ग के द्वारा क्रांति नहीं हो सकती। परन्तु चीन में उसकी भविष्यवाणी बाधित हो गयी, यंत्रों, महायंत्रों के निर्माण से जैसे पूंजीपति उत्पादन बढ़ा सकता है, वैसे ही समाजवादी सरकार भी उत्पादन बढ़ा सकती है आजकल तो मजदूरों से काम लेने के लिए उनके पीछे बन्दूक लगाने की आवश्यकता ही नहीं। इस समय तो मशीन स्वयं मजदूर पर हावी होकर उससे काम करती है। मशीन के सामने खड़ा मजदूर काम करने से आना कानी या शिथिलता चाहे तो भी नहीं कर सकता। उसे सावधानी से, मुस्तैदीसे काम करना ही पड़ता है। थोड़ा सा भी प्रमाद छिप नहीं सकता। क्षण भर की शिथिलता से ही आगे पीछे कार्य की धारा ठप्प पड़ जाती है। ऊपर से नीचे तक जहां से काम में प्रमाद हुआ है उसका पता लग जायगा। अतः मजदूर को काम करना पड़ेगा या हटना पड़ेगा। कार्य की धारा बंधी रहती है, लाइन लगी रहती है। फलतः आज कल अपने या पराये कार्यों में भेद के कारण काम में तत्परता या लापरवाही का स्थान बहुत ही कम रह गया है। हाँ जहाँ पूंजीवाद में यन्त्रों, महायन्त्रों के विकास से अमीरी सिमट कर मुट्ठी भर लोगों में आ गयी है, शेष करोड़ों के हिस्से में गरीबी, बेरोजगारी मिलती हैं वहां समाजवाद में ऐसा नहीं होता। यन्त्रों, महायन्त्रों के विकास तथा संचालन में योग्यता के अनुसार विशेषज्ञों, वैज्ञानिकों, इंजीनियरों कारीगरों तथा शारीरिक श्रम जीवियों

को भी काम, दाम, आराम की व्यवस्था की जाती है। काम के घण्टों में कमी करके, तथा काम बढ़ाकर, सब की व्यवस्था की जाती है।

पूञ्जीवादी अव्यवस्था से ही क्रान्ति

प्रसन्नता है कि रजनीश ने यह माना की मार्क्स का चिन्तन बहुत वैज्ञानिक था। वह ठीक कह रहा था कि जहां पूञ्जीवाद ठीक व्यवस्था को विकसित कर लेगा, वहां से उसको विदा हो जाना पड़ेगा। यहां तक तो ठीक है, परन्तु उनका हेतूपन्यास "क्यों कि जब सम्पत्ति ज्यादा हो जायेगी तो व्यक्तिगत सम्पत्तिको कोई अर्थ नहीं रह जायगा" पृ० १९ गलत है, कारण प्राणी की तृष्णा का अन्त नहीं हैं। अनन्त-अनन्त सम्पत्ति रहनेपर भी प्राणी उसके बढ़ाने में ही सुख का अनुभव करता है

"यत्पृथिव्यां व्रीहियवं हिरण्यं पशवः स्त्रियः।
सर्वं नैकस्य पर्याप्तमितिमत्वा शमं व्रजेत ॥"

व्यक्तिगत लाभ के बिना पूञ्जीपति के उत्पादन में प्रवृत्ति ही असंभव होगी। अतः मार्क्स का अभिप्राय यही था कि पूञ्जीवाद का पूर्ण विकास होने से उसके सामने गतिरोध खड़ा हो जायगा। बेकारी बढ़ने से राष्ट्र की क्रय शक्ति क्षीण होगी, बाजार में माल की खपत न होगी। खपत न होने से उत्पादन की गति मन्द करनी पड़ेगी। उसके लिये मजदूरों की छटनी करनी पड़ेगी। उससे और भीं बेकारी बढ़ेगी। राष्ट्र की क्रय शक्ति भी क्षीण होगी। इस तरह पूञ्जी वाद के सामने सिवा समाजीकरण को निमन्त्रित करके, स्वयं विदा होनेके अतिरिक्त कोई मार्ग ही नहीं है।

रजनीश कहते है कि 'लेकिन उसे पता नहीं था कि जब क्रांतियां होगी तब पूञ्जीवादका, सम्पत्तिका कोई अर्थ नहीं रह जायगा। पृ. १९ परन्तु यह कथन निरर्थक है। शोषित, श्रमिक वर्ग की क्रान्तियों से शोषक वर्ग का, पूञ्जीवाद का विध्वन्स होता है। अर्थात उत्पादन साधन, भूमि, सम्पत्ति, कारखाने सब समाज के बन जाते हैं। तब मुनाफा कमाने के लिये किसी का शोषण नहीं किया जा सकता है।

इसी तरह यह उनका कथन भी सार शून्य है कि—'लेकिन उसे मार्क्स

को पता न था कि जो क्रान्तियां होगी वह पून्जीवाद के सम्पत्ति पैदा करने से नहीं। वह गरीब की इर्ष्या भड़का कर हो जायगी।" क्योंकि जब पूर्वोक्त तर्कसंमत क्रांति के कारण विद्यमान है, तो गरीबों की इर्ष्या भड़काने मात्र से क्रांति की कल्पना कैसे की जा सकती है? ईर्ष्या तो गरीब-अमीर सब में ही होती है। थोड़ी देर के लिये मान लें कि—गरीबों की ईर्ष्या होती है और उसे भड़काया जा सकता है तो पूर्वोक्त लाभ के बिना इससे पहले क्रांति क्यों नहीं हुयी? स्पष्ट है ईर्ष्या मात्र निरर्थक होती हैं। कौवा कांव कांव करता रहता है। गेहूं पकता रहता है। खेत चर जाने पर, मृगों के रहने पर भी, धान और गेहूं बोये जाते हैं; सिंचे और काटे जाते हैं। किन्तु जब पून्जीवाद के द्वारा ही पून्जी के विकास में रुकावट आती हैं, उत्पादन साधन अतिस्वल्प लोगों में रह जाते है, राष्ट्र के अधिकांश लोग बेकार हो जाते हैं, क्रय शक्ति क्षीण हो जाती है, माल की खपत में बाधा पड़ती हैं पून्जीपति की मशीन एंव उत्पादन निरर्थक होने लगता है, तभी क्रांति होती है। उसमें ईर्ष्या न भी हो तो परिणामत: क्रांति अनिवार्य हो जाती है।

प्रचार से ही परिवर्तन सम्भव

कहा जाता है कि, 'समाजवाद आना चाहिये था अमरीका में। लेकिन वहां वैसा समाजवाद नहीं आया। वहां एक अर्थ में समाजवाद आ रहा हैं, वह बैण्ड बजा कर नहीं आता चुप-चाप आता है। बाज टूटता है तो कोई खबर नहीं होती। सूरज निकलता है, तो कोई घोषणा नहीं होती, जिन्दगी में जो भी महत्वपूर्ण होता है, चुप चाप आता है। आ जाने पर ही पता लगता है, पर जो बैण्ड बजाकर आता है तो समझना कि कुछ जल्दी आने की कोशिश चल रही है। समाजवाद भी बैंण्ड बजाकर आना चाहता है। परन्तु पून्जीवाद पूरा न हो तो समाजवाद नहीं आ सकता है!" पृ.१९ परन्तु यह सब नि:सार है। प्राचीनकालके नीति

के अनुसार -- फल देखकर ही लोग योजना का अनुमान लगाते थे। योज-नाओं को अत्यन्त गुप्त रखा जाता था। और वह अनेक दृष्टियों से अच्छी बात भी थी। अब भी किन्ही अंशों में अनेक योजनाओं को गोपनीय रखा जाता है। फिर वर्तमान काल की नीति के अनुसार कोई भी योजना और उसकी रूप रेखा, पहले रेडियों एवं अखबारों में देश विदेश में प्रचारित हो जाती है। तभी उनका आरम्भ किया जाता है। विशेषतः आन्दोलन संघटन साध्य तो प्रचार के बिना संभव ही नहीं। कोई भी पूञ्जीपति अपनी सम्पत्ति को प्राणों से भी अधिक प्रिय समझता है। वह मरने को प्रस्तुत होगा, परन्तु अपना धन देने को तय्यार न होगा। फिर एक नहीं, अनेक नहीं, सम्पूर्ण राष्ट्र व पूञ्जीपतियों के हाथों से भूमि, सम्पत्ति, कल, कारखाना छीन कर सबको सामाजिक बनाना कैसे संभव होगा ? इसी लिये वर्ग चेतना, वर्गभेद, वर्ग संघर्ष, वर्ग विध्वन्स के द्वारा ही यह संभव हैं। यह सब बिना बैण्ड बजा कर प्रचार किये संभव नहीं। शक्तिशाली संघटन से, आन्दोलन से अथवा पार्लियामेंट के प्रस्ताव से ही यह सब संभव होता है। सीधी अंगुली से घी नहीं निकलता है। सीध सीधे कोई भी व्यक्तिगत सम्पत्ति किसी को सौपने को तैय्यार नहीं होगा।

पानी, हवा के समान कभी आम के फल, महुवा के फल, कभी कभी सेव, अंगूर भी आवश्यकता से अधिक हो जाते है। गेहूं, चावल, दूध भी कभी आवश्यकता से अधिक हो जायेंगे तो मुफ्त में बांटे जा सकते है। फिर भी उनमें स्थायित्व नहीं हो सकता है। मुनाफा कमाने वाला तभी अपने काम में सफल होगा, जब वस्तुओं की कमी से और मंहगाई बढ़े। उत्पादन साधनोंको, विशेषकर हीरा,जवाहर, स्वर्ण, रत्न, नोट्स आदि कभी भी दूसरों के हाथ में नहीं देगा। अतः बिना आन्दोलन और आर्डिनेन्स या कानून का वैण्ड बजाये समाजवाद कभी आने वाला नहीं है।

धर्म नियन्त्रित शासन तन्त्र रामराज्य या धर्म राज्य में तो वैध सम्पत्ति भूमि, खान, कारखाने आदि का राष्ट्रीयकरण अभीष्ट भी नहीं है। वैध सम्पत्ति आदि का हरण पाप भी है और उनका अपहरण एक प्रकार का

दस्युकृत बलात्कार, डाका ही है और जायज सम्पत्ति का मालिक धर्म एवं कर्त्तव्य बुद्धि से ही आवश्यकता से अधिक वस्तुओं का दान, वितरण आदि कर सकता है। आर्थिक असंतुलन दूर करने के लिये, आमदनी का पञ्चधा विभाग, यज्ञादि द्वारा समाज में विभाजन, आदि किया जाता है। कर्त्तव्य विमुख होने पर शासन भूमि, सम्पत्ति आदि का अपहरण करके बेकारों की बेरोजगारी दूर करने का प्रयत्न करता है। मनके अनुसार इस तरह दोनों का ही हित होता हैं।

श्रमिक क्रान्ति से ही समाजवाद

कहा जाता हैं कि 'आज समाजवाद हिन्दुस्तानमें सम्पत्तिको बांट लें और पूञ्जी की बढ़ती हुई, बनती हुई बिल्कुल प्राथमिक व्यवस्था को तोड़ दें, तो क्या होगा ? गरीब की ईर्ष्या तुष्ट होगी, लेकिन गरीब और भी गरीब होगा। गरीब भूखों मरेगा 'गरीब की ईर्ष्या तृप्त होगी। लेकिन गरीब अपने हाथ नें आत्म घात कर लेगा। हिन्दुस्तान में पूञ्जी की बनती हुई व्यवस्था को सब तरह का सहयोग चाहिये। आज तो हिन्दुस्तान को पूञ्जी वादी होने का ठीक अर्थों में निर्णय लेना चाहिये कि हम पचास वर्षो में ठीक पूञ्जीवाद पैदा कर लें। समाजवाद उसके पीछे ही आने वाला है! उसे लानेके लिये किसी इन्दिरा जी की जरूरत नहीं पड़ेगी। वह आ जायेगा अपने आप। पूञ्जीवाद कौन लाया था ? जब सामन्तवाद की वस्था उस जगह पहुंच गयी तो पूञ्जीवाद आया। ऐसे ही समाजवाद आयेगा लेकिन धैर्य चाहिये। अधैर्य इतना नुकसान कर सकता है, जिसका हिसाब लगाना मुश्किल हो जायेगा।

सुना गया है कि, एक बार रथ चाइल्ड के पास एक समाजवादी गया और उसने कहा कि तुमने सारे देश की सम्पत्ति हड़प कर ली है। बांट दो तो सारा देश अमीर हो जायगा। रथ चाइल्ड ने उसकी बात सुनी, कागज पर कुछ हिसाब लगाया और उससे कहा कि ६ पैसे आपके हिस्से में पड़ते

हैं, आप लीजिये और जो जो आयेंगे, उनके हिस्से में जो पड़ता हैं, उनको देता जाऊंगा। मेरे पास जितनी सम्पत्ति है, अगर मैं सारी दुनिया में बांटू तो एक एक आदमी को ६-६ पैसा बांट दूंगा।

हिन्दुस्तान में तो अभी सम्पत्ति अङ्कुरित हो रही है। पूरा देश गरीब है। हिन्दुस्तान पूरा का पूरा इस तरह जी रहा है, जैसे औद्योगिक क्रांति के पहले यूरोप था। अभी औद्योगिक क्रांति भी यहां नहीं हो पायी है। औद्योगिक क्रान्ति हो तो सारा देश उद्योग से भर जाय, सारा मुल्क सम्पत्ति पैदा करे। मुल्कमें करोड़ों छोटे, बड़े टाटा, बिड़ला हों तो ही वे सपने पूरे हो सकते हैं। सम्पत्ति पैदा मुल्क में हो जाय तो कोई टाटा, कोई बिड़ला सम्पत्ति विभाजनको न रोक पायेगें। वे ही सम्पत्ति इतनी पैदा कर जायंगे कि वह बांटी जा सके। अन्यथा वह बांटी भी नहीं जा सकती। समाजवादसे सावधान होने का यह मतलब नहीं है कि मैं समाजवाद का शत्रु हूं।" (पृ० १९-२०-२१)

वस्तुतः पूर्वोक्त पूर्वापर विरुद्ध ही है। जिस समाजवाद को रजनीश जी खपुष्पवत् अत्यन्त असत् बतला रहे थे, वही अब उनकी दृष्टि में पून्जीवाद के ठीक विकसित होने पर अनिवार्य रूप से आता है। पर जो अत्यन्त असत् वस्तु है, बादशाह के झूठे कपड़ों के तुल्य होता है, वह कभी अनिवार्य रूप से आ सकता है? समाजवाद के सिद्धान्त से जो सर्वथा अपरिचित है, जिन्होंने केवल समाजवाद के सम्बन्ध में अखबारी हो हल्ला सुन रखा है, समाजवाद की कोई पुस्तक नहीं पढ़ी है, वे ही समाजवाद में सम्पत्ति के बंटवारे की बात करते है। सम्पत्ति के बंटवारे पर व्यक्तिगत सम्पत्ति बनी ही रहेगी, तो समाजवाद कहां आया? वह तो पून्जीवाद ही है। सभी भूमि, सम्पत्ति, उद्योगों, खानों का बटवारा नहीं, राष्ट्रीकरण ही समाजवाद है।

रथ चाइल्ड ने, अपनी सम्पत्ति का हिसाब लगाकर ६-६ पैसा देने की बात भले कही हो, पर वह समाजवाद नहीं है। समाजवाद अपने आप कभी नहीं आयेगा। जैसे पून्जीवाद लाने में व्यापारियों का प्रमुख हाथ माना

जाता है, वैसे ही समाजवाद लाने में श्रमिकों की क्रान्ति का ही प्रमुख हाथ होता है। भारत में औद्योगिक क्रान्ति हो रही है। जो देखते हुये भी अन-देखी कर रहे है, उनको कोन दिखायेगा। यहां पलियामेण्ट्री सिस्टम से समाजवाद लाया जा रहा है, और इसीलिये औद्योगिक क्रान्ति का शुभद परि-णाम व्यक्ति विशेषों, पून्जीपतियों को नहीं, किन्तु समष्टि जनसमूह में हो रहा है। पिछड़े लोगों को वढ़ाने का प्रयास चल रहा है। परन्तु फिर भी यहां अभी अधकचड़ा समाजवाद है। इसीलिये अभी अपना पेट भरने, बच्चों के पालन-पोषण, शिक्षण तथा शादी विवाह की चिन्ता सबको रहती है।

इस समय राष्ट्रीय उद्योगों के सामने टाटा, बिड़ला आदिकों के उद्योग नगण्य हैं। लाखों कारखाने देश के कोने कोने में खुल रहे हैं। उनमें प्रमुख हाथ सरकार का ही है। इस देश में टाटा, बिड़ला के खत्म करने की कोई योजना ही नहीं है। टाटा, बिड़ला भी आज अरबों सम्पत्तियों के मालिक नहीं हैं। वे भी विभिन्न कम्पनियों के डायरेक्टर मात्र हैं। अधिकांश कम्प-नियां पब्लिक से सम्बन्धित हैं। अतः उनके बांटने का प्रश्न ही नहीं उठता है।

अतएव यह कहना भी निःसार है कि 'आज जो समाजवादी हैं, वे ही समाजवाद के शत्रु हैं। उन्हें पता नहीं है कि वे क्या कर रहे हैं। उसी पर वे बैठे हुए हैं, वे गिरेंगे अपने साथ सबको लेकर डूब जायंगे।'

सोच विचार कर काम करना चाहिये। जो सम्पत्ति पैदा हो रही है। उसकी व्यवस्था कहीं टूट न जाय", (पृ० २१) परन्तु आज कोई बंटवारे की बात ही नहीं है। है तो केवल इतना ही, कि सम्पत्ति पैदा करनेवाले कारखाने व्यक्तिगत है। जिनके द्वारा व्यक्ति विशेषोंको ही लाभ पहुंचता है। उसके द्वारा सम्पूर्ण राष्ट्र को लाभ पहुंचे। उसके द्वारा उत्पादन के मार्ग में गतिरोध न हो, राष्ट्र में बेकारी न बढ़े, राष्ट्र की क्रयशक्ति न घटे, माल की खपत न रुके, मजदूरों की और बेकारी न बढ़े, उत्पादन की रफ्तार मन्द न करनी पड़े। अलबत्ता यह बात ठीक है कि, जिस काम को शासन हाथ में लेता है वही नुकसान पहुंचाने लगता है। निजी उद्योगों में जितनी सम्पत्ति लगी है, सरकारी उद्योगों में उससे दुगुना ही नहीं, हजारों गुना अधिक लगी है।

लेकिन सब सरकारी उद्योग नुकसान पहुंचा रहे हैं, यह भी अतिरंजित वर्णन मात्र है।

उत्कृष्ट अधिकारियों की आवश्यकता

वस्तुतः व्यक्तिगत उद्योगों में भी स्वयं उद्योगपति सबका मन ही देखता है। किन्तु अनुभवी कर्मचारी ही उन कामोंको देखते हैं और लाभ बढ़ाते हैं। अनुभवी उत्कृष्ट अधिकारियों के न मिलने पर उन्हें भी नुकसान उठाना पड़ता है। फलतः कितने ही उद्योगपति दिवालिये हो जाते हैं। ऐसे ही सरकार भी ढूंढ़ ढूंढ़ कर जहां ऐसे अनुभवी लोगों के जिम्मे देखभाल सौंपती है, वहाँ लाभ अवश्य होता है। कितने ही व्यक्तिगत मिलों के मैनेजरों को अधिक वेतन देकर सरकार उनको अपने उद्योगों में नियुक्त करती है। कई उद्योगों में पहले नुकसान होता था परन्तु अब लाभ हो रहा है। बैंकों, बीमा निगमों, कोयले के उद्योग तथा स्टील के अनेक क्षेत्रों के उत्पादनों में रिकार्ड स्थापित किये जा रहे हैं। अस्त्र-शस्त्र, वायुयान निर्माण क्षेत्र में भारत की विदेशी लोग भी प्रशंसा करते हैं।

अवश्य ही अध्यात्मवाद पर आधारित धर्म नियन्त्रित अर्थ तन्त्र हो, तो उसमें सामूहिक की अपेक्षा वैयक्तिक उत्पादन उत्कृष्ट हो सकता है और उसमें उत्पादनमें गतिरोध मिटाया जा सकता है। बेकारी,बेरोजगारी दूरकर राष्ट्रकी क्रयशक्ति की रक्षा जा सकती है। वह भौतिकवाद पर आधारित धर्म निरपेक्ष शासनतन्त्र और धर्म निरपेक्ष पूञ्जीवाद से उत्कृष्ट व्यवस्था हो सकती है। किन्तु धर्म निरपेक्ष पूञ्जीवाद में शोषण, बेकारी, आर्थिक सन्तुलन अनिवार्य है। धर्मनिरपेक्ष समाजवाद के द्वारा उसका निराकरण हो जाने पर भी वैयक्तिक स्वतन्त्रता सर्वथा मिट जाती है। सर्वापहारी अधिनायक वादी शासन का अन्त करना अत्यन्त असंभव हो जाता है।

रजनीशजी कहते हैं कि, "समाज वाद का नाम चलता है, होता है राज्य पूञ्जीवाद, समाजवाद का मतलब है समाज़ के हाथ में सम्पत्ति हो, लेकिन

समाज के हाथमें सम्पत्ति कहाँ आती है ? हाँ समाजके हाथ की सारी सम्पत्ति राज्य के हाथ में पहुंच जाती है। जहाँ बंटे हुए पूञ्जीपति, थे बहुत वहां एक राज्य ही पूञ्जीपति रह जाता है। राज्य और राज्य की कुशलता हम देख ही रहे हैं। हमारे मुल्क में राज्य जितना अकुशल है, उतना गांव का छोटा दूकानदार भी अकुशल नहीं। आज राज्य जितना मूढ़ सिद्ध हो रहा है, किराना बेचने वाला भी इतना मूढ़ नहीं है। इस राज्य के हाथ में सारी सम्पत्ति दे देने का ख्याल सारे, उत्पादन स्रोत दे देने का ख्याल है। अगर हिन्दुस्तान ने मरने का ही तय कर रखा है। तब दूसरी बात है।' (पृ० २८)

परन्तु, वह कुछ अंशों में सत्य होते हुए भी सर्वांश में सत्य नहीं है। कारण समाज तो व्यक्तियों का समविष्ट रूप ही है। किसी व्यवस्था का प्रबन्ध समष्टि व्यक्ति नहीं कर सकते किन्तु समाजके प्रतिनिधि ही प्रबन्ध का कार्य कर सकते हैं। उन्हीं प्रतिनिधियों की सरकार होती है। इतना ही नहीं सरकारें भी कुछ व्यक्तियों के हाथ की कठपुतली ही होती है। इसीलिये जानलाक की वह उक्ति ठीक ही है कि-स्वतन्त्रता तभी अच्छी चीज है, जब उसके साथ उसकी सगी बहन सतर्कता भी रहे। बिना सतर्कता की स्वतन्त्रता आत्महत्या की स्वतन्त्रता से खतरनाक है। फिर भी समाज विस्तृत होता है। उसमें अच्छे भी व्यक्ति होते हैं। पूञ्जीवाद में सम्पति कुछ लोगों की ही वपौती, मिलकियत बनकर रह जाती है। परन्तु समाजवाद में सम्पत्ति किसी की व्यक्तिगत न होकर समाज की ही रहती है, और समाज के द्वारा ही उसका प्रयोग होता है।

अकुशलता व्यक्तियों में भी होती है। आपके ही पूर्व कथानानुसार बुद्धि, विद्या, शक्ति, कुशलता, सम्पत्ति पैदा करने की क्षमता बहुत थोड़े ही लोगों में ही होती है। अज्ञान, आलस्य, प्रमाद, अकुशलता, गरीबी, करोड़ों लोगों के हिस्से में आती है। फिर आज किराना बेचने वाला, ठेले का काम करने वाला भी आदमी उतना मूढ़ नहीं है, जितना राज्य मूढ है, यह कहना क्या पूर्वापर विरुद्ध नहीं है ?

वस्तुतः जैसे अनेक पूञ्जीपति पूरे भोंदू होते हैं, किन्तु उनके अनुभवी

मैनेजर आदि व्यक्ति ही उद्योगों में उन्नति करते हैं, एक व्यक्ति सब काम नहीं देख सकता है। उसी तरह राज्यों में कुछ लोगों के अकुशल रहने पर भी अनेक क्षेत्रों में, अनेक योग्य व्यक्तियों के द्वारा कार्यों में उन्नति होती है। इसी लिए मिला जुला कर चीन, रूस, भारत सभी जगह उन्नति ही हो रही है। प्रत्येक व्यक्ति का जीवन स्तर और कमायी अपेक्षाकृत बढ़ रही हैं। इतना और समझना चाहिये कि भ्रष्टाचार तथा भाई भतीजावाद के कारण योग्य व्यक्ति पीछे रह जाते हैं, अयोग्य आगे आ जाता है। कुशल उपेक्षित हो जाते हैं। अकुशल अधिकारारूढ़ हो जाते है। परन्तु यह सब बातें पून्जीवाद में भी समान ही हैं। इसी लिए अध्यात्मवाद और धर्म नियन्त्रण के बिना कहीं भी न्याय और सुव्यवस्था नहीं हो सकती है।

धर्म ही शासन का सच्चा नियंत्रक

यह ठीक है कि, 'राज्य की सत्ता जिनके हाथ में होती है, वे पागल हो जाते हैं। पर अब वे सम्पत्ति भी जनता के हांथ में देखना नहीं चाहते। सम्पत्ति की सत्ता भी अपने हाथ में चाहते हैं। राज्य के मद में जो पागल है, वे चाहते हैं कि सम्पत्ति की ताकत भी उनके हाथ में हों, अकेले राज्य की शक्ति ही उन्हें दीवाना बना देती है। धन की शक्ति भी उनके हाथ में पहुँच जाय तो वे निरंकुश ही हो जाते हैं फिर उनके ऊपर कुछ भी नहीं किया जा सकता। स्टालिन को हटाने के लिए कुछ भी नहीं किया जा सका।

क्या आपको पता है कि हिटलर भी सोशलिस्ट था। उसकी पार्टी का नाम नेशनल सोशलिस्ट पार्टी था। माओ को हटाने के लिये कुछ भी नहीं किया जा सकता। दुनिया में राज्य के हाथ में इतनी ताकते हैं कि अगर धन की ताकत भी उन सबके हाथ में चली जाय तो व्यक्ति बिलकुल नपुंसक हो जाता है, पूरा राष्ट्र नपुंसक हो जाता है। फिर व्यक्ति में कोई शक्ति नहीं रह जाती।" पृ० २२ परन्तु फिर भी व्यक्ति स्वातन्त्र्यकी एक सीमा

माननी ही पड़ती है। अन्यथा तो अराजकता को ही प्रश्रय मिलेगा। शासन की निरंकुशता दूर करने के लिये धर्मनियन्त्रण की आवश्यकता होती है। जैसे ऊंट के नाक में नकेल आवश्यक होता है, हाथी पर अंकुश, घोड़े के मुख में लगाम आवश्यक है, सायकिल और मोटर में ब्रेक आवश्यक है, वैसे शासन पर धर्म का नियन्त्रण आवश्यक है, पर सम्पत्ति शासन पर नियन्त्रण नहीं कर सकती। क्योंकि अनियन्त्रित शासन जब चाहे, पून्जीपतियों के हाथों से सम्पत्ति छीन ही सकता है, उसके पास पुलिस, सेना, अदालतें रहती ही हैं।

अराजकता में किसी की भी सुख सम्पत्ति सुरक्षित नहीं रहती। अराजकता में कमाता कोई है, खाता कोई है। अतः राज्य का मद पागलपन का हेतु होने पर भी, राज्य व्यवस्था खत्म नहीं कर दी जाती है। हर एक समझदार राज्यव्यवस्था का हामी होता है। मद उसकी विकृति है। उसे ही दूर करने का प्रयत्न आवश्यक है। नाक में फुन्सी हो जाय तो फुन्सी ही दूर करने का प्रयत्न ठीक है। नाक कटा देना बुद्धिमानी नहीं है। उसी तरह राज्य के दोषों को मिटाने के लिये ही आन्दोलन और बगावत होनी चाहिए। राज्य व्यवस्था मिटाने के लिये नहीं। हां प्रत्येक व्यक्ति के पूर्ण रूपेण धर्म नियन्त्रित एवं अध्यात्मनिष्ठ हो जाने पर तो राज्य की आवश्यकता भी नहीं होती। पर वह स्थिति सदा संभव नहीं होती।

न वै राज्यं न राजासीन्नदण्डो न च दाण्डिकः।
धर्मणैव प्रजाः सर्वा रक्षन्तिस्म परस्परम्॥
(म० भा० शा० प०)

कृतयुगमें राज्य, राजा, दण्ड और दाण्डिक कुछ भी नहीं था, किन्तु धर्मके द्वारा सभी प्रजा आपस में रक्षा की व्यवस्था कर लेते थे। अध्यात्मनिष्ठ, धर्मनिष्ठ होने से सब एक दूसरे के पोषक, रक्षक और हितचिन्तक ही होते हैं, शोषक नहीं।

इसी तरह जब व्यक्तिगत पून्जी से बेकारी, बेरोजगारी बढ़ जाती है, राष्ट्र की शक्ति, सम्पत्ति साधन कुछ व्यक्तियों के ही हाथ में रह जाती है, करोड़ों, अरबों व्यक्ति सम्पत्ति साधन शून्य होकर भुखमरी के शिकार होने

लगते हैं. तब सम्पत्ति का या तो धर्म नियन्त्रित शासन द्वारा आर्थिक असंतुलन मिटाकर वेकारी, बेरोजगारी दूर करने का प्रयत्न आवश्यक होता है, अथवा स्वाभाविक रूप से जनक्राँति द्वारा सभी साधनों, सम्पत्तियों का राष्ट्रिय करण होकर समाजवादी व्यवस्था के द्वारा सभी नागरिकों के लिए योग्यता, आवश्यकता अनुसार काम, दाम, आराम की व्यवस्था और सबको अपनी रुचि के अनुसार शिक्षा और रोजगार अपनाने का समान अवसर और अपने परिश्रम का पूरा फल पाने का समान अधिकार की व्यवस्था होती हैं।

स्टालिन आखिर किसी न किसी रूप में हटाया ही गया। श्वेतलाना के अनुसार उसे अपने साथियों के द्वारा ही मौत का शिकार बनना पड़ा था। स्टालिन ने कड़ायी के साथ काम लिया, पर जो भी कुछ किया, रूस के लिए किया, अपने व्यक्तिगत लाभ के लिए नहीं। श्वेतलाना उसकी एकमात्र सन्तान थी। उसको उसकी कोई कमायी नहीं मिली। वह गरीबी का जीवन बिताती थी, यह उसकी श्वेतलाना पुस्तक से स्पष्ट है।

खुश्चेव भी कुछ कम प्रभावशाली नहीं था। किसी समय दुनिया के सभी पत्रों में, अखबारों में सदा ही छाया रहा। आज उसका पता भी नहीं है, वह कहां है? कैसा है? उसको हटाया ही गया। माओ तो अपनी सूझ-बूझ के लिये प्रसिद्ध ही है। आज चाङ्गकाईशेक के चीन में और माओ के चीन में आकाश-पाताल का अन्तर है। चीन उत्तरोत्तर विकास कर रहा है। परन्तु व्यक्तिगत सम्पत्ति में तो करोड़ों व्यक्तियों का शोषण होता ही रहता है। इतना ही नहीं पूर्वोक्त युक्ति के अनुसार पूंजीवाद के मार्ग में ही गतिरोध खड़ा होकर, उसकी प्रगति को अनिवार्य रूप से रोक ही देता है। अतः अनिवार्य रूप से पूंजीवाद के स्थान में दूसरे बाद को आना ही पड़ता है।

जनहित के लिए शक्तिशाली राज्य आवश्यक

रजनीश जी कहते हैं कि, "राजनीतिक एवं आर्थित स्वतन्त्रता हो तो व्यक्ति की वैचारिक स्वतन्त्रता शेष रहती है। रूस, चीन में विचार की कोई

स्वतन्त्रता नहीं है। हिंदुस्तान में भी कल नहीं रहेगी। एक व्यक्ति की संपत्ति छीन लो, सम्पत्ति छिनने के साथ उसके व्यक्तित्व का ९० प्रतिशत हिस्सा समाप्त हो जाता है। सम्पत्ति छिनते ही उसके सोचने विचारने की क्षमता भी छिन जाती है, क्योंकि उसके पास व्यक्ति होने की सामर्थ्य क्षीण हो गयी। राज्यके पास सारी ताकतें, पहुंच जाँय तो व्यक्ति की हत्या हो जायगी। इस समय सारी दुनिया में सबसे बड़ा सवाल है कि व्यक्ति को कैसे बचाया जाय। राज्य हड़प लेना चाहता है सब, पर इस ढंग से हड़पता है और समझा कर हड़पता है। वह कहता है कि तुम्हारे ही हित में हड़प रहे हैं। यह जो हम सम्पत्ति और उत्पादनके साधन अपने हाथमें लेते हैं वह तुम्हारे लिये। इसलिये जय जयकार भी होता है और वे ही लोग जय जयकार करेंगे जो फाँसी पर लटक जायंगे और उन्हें पता भी नहीं चलेगा। सम्पत्ति एक बार राज्य के हाथ में चली जाय तो राज्य निरंकुश है फिर व्यक्ति की क्या हैसियत।

रूस में पचास सालसे पचास आदमियों का एक छोटा सा ग्रुप, एक छोटा सा समूह मालिक बना बैठा है। उस ग्रुप के हाथ के बाहर ताकत नहीं जाती है। स्टालिन मरे, चाहे ख्रुश्चेव आ जायं, चाहे कोसीजन रहे, चाहे ब्रेझनेव, कोई भी हो, वह एक पचास आदमियों का छोटा सा ग्रुप सारे मुल्क की छाती पर हावी है। कोई इनकार नहीं हो सकता क्योंकि विरोध करने के पहले ही जबान कट जाय। इनकार करने के पहले ही आदमी का कोई पता नहीं चले।

राज्य के हाथ में जब पूरी शक्ति हो तो व्यक्ति क्या कर सकेगा? इस लिये राज्य की शक्ति निरन्तर कम करनी है, बढ़ानी नहीं है, क्योंकि अन्ततः एक ऐसा समाज चाहिए जिसमें राज्य काम चलाऊ व्यवस्था मात्र रह जाय। खाद्य मन्त्री कोई एक बड़ा रसोइया है। अगर अच्छा खाना प्रान्त को खिलाता है, तो कभी भी उसकी प्रशंसा करनी चाहिये, लेकिन रसोइये से ज्यादा नहीं। लेकिन आज का खाद्य मन्त्री रसोइया नहीं है, उसके पास ताकत है। लेकिन वह यह जानता है कि उसकी ताकत में

एक कमी यह है कि लोगों के पास व्यक्तिगत सम्पत्ति है और व्यक्तिगत सम्पत्ति बगावत कर सकती है, विरोध कर सकती है और जिसके पास व्यक्तिगत सम्पत्ति है, उसके पास व्यक्तिगत सोच विचार का मौका है, उसे भी वह छीन लेना चाहता है।

महत्वाकाङ्क्षी राजनीतिज्ञ सारी शक्ति को अपने हाथ में लेना चाहता है। जिस दिन राज्य के हाथमें पोलिटिकल पावर और इकनामिक पावर दोनों हो जाते हैं, उस दिन क्रान्ति का, बगावत का, विद्रोहका कोई उपाय नहीं रह जाता। यह कैसे मजेकी बात है कि रूसमें क्रांति हुयी, परन्तु अब रूसमें क्रांति नहीं हो सकती है। क्योंकि राज्यके पास इतने अद्‌भुत साधन हैं, सब दीवालों के पास कान हैं। राज्य का जाल सब तरफ फैला हुआ है। पति भी अपनी पत्नी से बोलते वक्त दो वक्त सोच लेता है कि वह जो कह रहा है वह कहना है कि नहीं कहना है, क्योंकि क्या भरोसा पत्नी खबर कर दे।

बाप बेटे से भी खुलकर बात नहीं कर पाता क्योंकि खुलकर बात करना खतरनाक है। हो सकता है बेटा यङ्ग कम्युनिस्ट हो। जवान कम्युनिस्ट ग्रुपका सदस्य हो और खबर पहुंचा दे। क्यों.के एक-एक बेटे को समझाया जा रहा है कि बाप की कीमत नहीं, कीमत है राष्ट्र की। पत्नीकी कोई कीमत नहीं है, कीमत है समाज की।

समाजवाद एक बड़ी भ्रान्त बात समझा रहा है कि व्यक्ति की कोई कीमत नहीं, जबकि एकमात्र कीमत व्यक्ति की है। समाज है क्या? समाज एक कोरा शब्द है, व्यक्ति है वास्तविक, व्यक्ति है यथार्थ। समाज सिर्फ जोड़ है। लेकिन समाजवाद ने इतना शोरगुल मचाया है कि जो नहीं हैं उसकी कीमत है, समाजकी कीमत है। इसलिये व्यक्तिको समाजकी बलिबेदीपर चढ़ायाजासकता है। हमेशा से व्यक्ति को चढ़ाया जाता रहा है ऐसे देवताओं के लिए जो नहीं हैं। कभी भगवान के लिए, कभी कालीके लिए, कभी किसी यज्ञ में! अब नया देवता है समाज और उसके पीछे असली देवता खड़ा है राज्य। इस पर व्यक्ति को चढ़ाया जा रहा है। काट डालो सबको, क्योंकि व्यक्ति की कोई कीमत नहीं हैं, कीमत है समाज की। समाज कहाँ हैं? उससे कहीं मिलना नहीं

हुआ, बहुत खोजता हूं। सब जगह जाता हूं, पूछता हूं, समाज कहां है। जगह-जगह पता मिलता है कि वहां मिलेगा। वहां भी व्यक्ति ही मिलते हैं। जब भी मिलेगा व्यक्ति ही मिलेगा।

व्यक्ति का मूल्य चरम है। अल्टीमेट बेल्यू है। व्यक्ति के मूल्य को खोना खतरनाक है। हाँ निश्चित ही किसी दिन समाजवाद आयेगा, लेकिन व्यक्ति को समाप्त करके नहीं, व्यक्ति को तृप्त करके, व्यक्ति को फुलफिल करके, व्यक्ति को पूरा करके। व्यक्ति को मिटाकर जो समाजवाद आता है, उससे सावधान होनेकी जरूरत है, वह समाजवाद नहीं है, वह व्यक्तिकी हत्या है और समाजवाद के पीछे खड़ा है स्टेट, खड़ा है राज्य और खड़े है राजनीतिज्ञ। उनको कठिनाई मालूम होती हैकि ताकत कहीं भी बंटी हो, सारी ताकत उनके हाथ में होनी चाहिए। राज्य के पास इतनी ताकतें कभी न थी, जितनी आज हो सकती है। क्योंकि टेक्नालॉजी ने ऐसा विकास किया है जिसका हमें पता नहीं।

एक वैज्ञानिकने एक घोड़ेकी खोपड़ीको काटकर उसमें एक इलेक्ट्रोड रख दिया है, एक यंत्र रख दिया है भीतर खोपड़ी बन्द कर दी गयी। घोड़ेको कुछ पता नहीं। अब वायरलेससे उस घोड़ेको हजारों मिल दूर कहींसे इशारा किया जा सकता है। जो भी इशारे किये जायंगे घोड़े को वही करना पड़ेगा, क्योंकि घोड़े को लगेगा वे इशारे उसके भीतरसे आ रहे हैं। हजार मील दूरसे वह वैज्ञानिक कहे कि घोड़ा पैर उठाये; इशारा करे पैर उठाने को, तो घोड़ा पैर उठायेगा। कहे नाचो, तो वह नाचेगा। मेरी दृष्टि में यह आविष्कार बड़ा दुर्भाग्यपूर्ण है, क्योंकि राज्य यह इलेक्ट्रोड आज नहीं कल आदमी की खोपड़ी में भी लगा देगा। फिर विद्रोह असंभव हो जायगा, केमिकल रेब्यूल्यूशन हो रहा है। कुछ ऐसे ड्रग्स खोज लिये गये है जो क्रांति को असंभव कर देते है। क्यों कि यह बात पकड़ ली गयी है कि जो लोग विद्रोही होते हैं, उनके शरीर में, उनके व्यक्तित्व में, कुछ तत्व होते हैं जो गैर विद्रोही में नहीं होते तो अब ऐसे ड्रग्स एल० एस० डी० मेस्कलीन हैं, ये और ड्रग्स भी खोजे जा रहे हैं। कल यह हो सकता है कि

आपके गांव के रीजर वायर में, तुलसी लेक में, पवई लेक में, केमिकल डाला दिये जांय, पूरा गांव पिये । पता भी न चले कि पानी में कुछ है और गांव के सारे व्यक्तियों के भीतर से वे तत्व क्षीण हो जायं, जो बगावत कर सकते है, जो कह सकते हैं नहीं, वे तत्व विदा हो जायं। राज्य के हाथ में आज पूरी ताकत जाना बहुत खतरनाक है, क्योंकि उसके पास टेक्नालाजी है कि व्यक्ति को बिल्कुल ही पोंछ सकता हैं। माइण्डवाश की नयी-नयी ईजादें है। किसी भी आदमी की स्मृति पोंछी जा सकती है। छः महिने आदमी को वन्द कर दिया जाय और इलेक्ट्रिक के शाक है, केमिकल ड्रग्स है, माइण्डवाश के मेथड्स् है, उससे उसकी स्मृति पोंछी जा सकती है। अगर वह कहता है कि मैं विरोधी हूं तो उसकी स्मृति विदा हो जायगी उसे पता ही नहीं रहेगा कि मैं कौन हूं।

अगर वह कहता है कि मेरा यह ख्याल है तो उसका वह ख्याल खो जायगा, क्यों कि वह यह नहीं बता सकेगा कि मैं कौन हूं? मेरा ख्याल क्या हैं? वह छोटा बच्चा हो जायगा। उसको नये सिरे से क ख ग से सीखना पड़ेगा। उसे भाषा, नाम सब सीखना पड़ेगा। जब इतनी ताकत विज्ञान दे रहा है राज्य को और धन की सारी ताकत भी राज्य के हाथों में हो तो हम अपने हाथ से मनुष्य की हत्या का आयोजन कर रहे हैं।

राजनीतिज्ञ इस योग्य नहीं है। सच तो यह है कि राजनीतिज्ञ ने मनुष्य के इतिहास में जो किया है, उससे सिवाय अयोग्यता के उसने योग्यता कभी भी सिद्ध नहीं की है। राजनीतिज्ञके हाथसे सत्ता लौटनी चाहिये। उसे बढ़ाने की कोई जरूरत नहीं है। वह भी जानता है कि अगर वह कहे कि राज्य के हाथ में सब होना चाहिये तो लोग कहेगें नहीं, तो वह एक दूसरा चेहरा बनाता है। वह कहता हैं - समाज के हाथ में सब होना चाहिये। समाज के पास तो कोई हाथ नहीं। इस लिए फिर राज्य के हाथ में ही सब चला आता है।

आज सोशलिज्म के नाम से दुनिया में जो भी चल रहा है, वह स्टेट कैपटलिज्म हैं। वह राज्य पूञ्जीवाद है। मैं जानता हूं कि राज्य पूञ्जीवाद

से व्यक्ति पून्जीवाद श्रेष्ठ है। श्रेष्ठ इसलिये कि व्यक्ति स्वतन्त्र हैं। श्रेष्ठ इसलिये कि वह प्रत्येक व्यक्ति को पून्जी पैदा करने की प्रेरणा देता है। इस लिये भी की शक्ति विभाजित और विकेन्द्रित है। इस लिये भी कि सम्पत्ति अगर अतिरिक्त मात्रा में पैदा हुई तो समाजवाद आयेगा। आना चाहिये लेकिन लाना नहीं है, क्यों कि लाया हुआ समाजवाद खतरनाक सिद्ध होगा।

एक माली को बीज में से अंकुर निकालना हैं तो अंकुर आयेगा कि निकालना पड़ेगा? अगर निकाला तो संभव है बीज टूट भी जाय और अंकुर न निकले। लेकिन आने देना है तो माली क्या करे? माली वह व्यवस्था करे जिससे अंकुर आता है। वह व्यवस्था करे खाद की, बीज को डाले जमीन में, पानी डाले, सूरज को आने दे, झाड़ को हटा दे, आयेगा अंकुर, अंकुर अवश्य फूटेगा बृक्ष भी खड़ा होगा। अगर समाजवाद लाना है तो पून्जीवाद के बीज को ठीक सिंचित करने की जरूरत है। यह बात सीधी और साफ है। पून्जीवाद अपना काम पूरी तरह से कर ले तब विदा हो। लेकिन पून्जीवाद जो है, डरा हुआ है। वह भी हिम्मत से नहीं कह सकता कि पून्जीवाद के होने का कोई कारण है। वह भी कहता है कि समाजवाद ठीक है। उसके पास अपना दर्शन नहीं है। वह भी भयभीत है। भीड़ में डरा है। वह भी नारे, झण्डे आवाजों से घबरा गया है।

आइजनहावर ने लिखा है कि एक कम्युनिस्ट से मैं बातें करता था तो मैं उत्तर नहीं दे पाता था क्यो कि मुझे भी लगता तो यही था कि यही ठीक कह रहा है। आइजन हावर के पास भी तर्क नहीं था। पून्जीवाद के पास तर्क नहीं, दर्शन नहीं तो वह अवश्य मरेगा। पून्जीवाद के पास अपना तर्क, दर्शन होना चाहिए ताकि वह ठीक से जी सके। समाजवाद को जन्म देने योग्य हो सके। समाजवाद पून्जीवाद की सन्तान है। अगर बाप अस्वस्थ होगा तो बेटा स्वस्थ होने वाला नहीं। लेकिन बाप मारकर बेटा पैदा करने की कोशिश चल रही है, मां कि हत्या करके गर्भ निकालने की कोशिश चल रही है।" (पृ० २३-२७)

रजनीश के उक्त विचार अविचारित रमणीय ही हैं। कुछ बाते अच्छी भी हैं। परन्तु उनका उपयोग अनुचित स्थल पर किया गया है कोई उत्तर अस्त्र शस्त्र प्राप्त भी कर लें तो भी उनका उचित प्रयोग बिना वे हानिकारक ही होते हैं। पूञ्जीवाद के पास तर्क की कमी नहीं हैं। मील, बेन्थम आदि व्यक्ति वादियों के तर्क पूञ्जीवाद के ही तर्क हैं। उन्हीं का अधिकांश प्रयोग रजनीश ने भी किया है। बीज से अङ्कुर पैदा होने वाला तर्क रजनीश के अनुकूल नहीं है। क्योंकि बीज के फूटने पर ही अङ्कुर पैदा होता है। बिना मृत्पिन्ड के नष्ट हुये उससे घट पैदा नहीं होता। यही बौद्धों का तर्क है—'नानुपमृद्य प्रादुर्भावात्। बिना बीज या कारण का उपमर्दन हुये अङ्कुर की उत्पत्ति नहीं होती है। धरणी, अनिल, जल, सूर्य के संयोग से भी बीज क्लिन्न होकर उच्छून होता है, फूलता है फिर फूटता है, तभी उससे अंकुर पैदा होता है। बीज को उपमर्दन करके ही अङ्कुर पैदा होता है। यदि बीज निर्विकार बना रहे तो अङ्कुर उत्पन्न ही नहीं हो सकता। इसलिये यहां माता पिता के स्वस्थ रहने पर ही बेटा स्वस्थ रहता है, यह दृष्टान्त सर्वथा असंगत है।

वस्तुतस्तु बेटा भी उत्पन्न होता हुआ अंशतः माता पिता को क्षीण करता ही है। परन्तु प्रकृत में तो जैसे सामन्तवाद को खत्मकर पूंजीवाद पैदा हुआ है, वैसे ही पूंजीवाद को खत्म करके ही समाजवाद पैदा होता है। पूञ्जीवाद अस्वस्थ होता जाता है। उसका विकास रुक जाता है। साधन, शक्ति, एवं सम्पत्ति का अधिकाधिक रूप में कुछ व्यक्तियों में ही केन्द्रीकरण हो जाता है। करोड़ों बेकारों की पलटनें तैयार हो जाती हैं, तभी क्रान्ति होती है। तभी पूञ्जीवाद को खत्म करके समाजवाद पैदा होता है। कहीं कहीं समझदार नेता अत्यन्त केन्द्रीकरण के पहले ही क्रान्ति कराने की चेष्टा करते हैं, कहीं पार्लियामेन्ट के प्रयत्न से समाजवाद आता है।

रजनीश ने पीछे कहा था कि मनुष्य से अनन्त गुणित महत्व मशीन का है। मशीन की अनन्त शक्ति है। उसके प्रभाव से श्रमिक नाम की कोई वस्तु संसार में न होगी और उसकी आवश्यकता भी न होगी

पचास सालमें श्रमिक मिट जायगा। परन्तु अब वे मशीन से, विज्ञानसे, उद्विग्न हो रहे हैं। क्यों कि वैज्ञानिक इलेक्ट्रोड यन्त्र मनुष्य के मस्तिष्क को पराधीन कर देगा। वैज्ञानिक केमिकल्स मनुष्य में से विरोध करने की, बगावत या क्रान्ति करने की, शक्ति नष्ट कर देगा। पहलेकी बात पून्जीवादके पक्ष में थी और ये वैज्ञानिक विकास पून्जीवाद के खिलाफ है। इसीलिए वे श्रमिक की आवश्यकता खत्म करने वाले वैज्ञानिक विकास से प्रसन्न दिखते थे। परन्तु व्यक्ति स्वातन्त्र्य खत्म करने वाले वैज्ञानिक विकास की कल्पना से तिलमिला उठे।

वस्तुतः जैसा कि मैंने पहले कहा था, कि मशीन की अनन्त शक्ति और वैज्ञानिक उच्चतम विकास वहीं तक उचित है, जहां तक वह मानवता का विरोधी न हो। आखिर श्रमिक की आवश्यकता न रह जायगी तब उनका क्या होगा? क्या वे सब पून्जीपति हो जायगें? क्या यह सम्भव है? क्या भूमि रबड़ की तरह बढ़ जायगी? खानें तथा कच्चे माल बढ़ते जायंगे? यदि राष्ट्र का प्रत्येक व्यक्ति मिल मालिक हो जायगा तो आखिर मिलों से उत्पन्न माल को खरीदेगा कौन? मशीन बनवाने वाले कौन होंगे? शरीर का हृष्ट पुष्ट बलवान् होना अच्छा है, परन्तु उससे रहना होगा, बुद्धि, मस्तिष्क दिमागके पराधीन। यदि शरीर बलवान् होकर उन्मत हो जाय, मस्तिष्क के नियन्त्रणमें न रहे, तो वह वरदान नहीं, अभिशाप है। ठीक इसी तरह श्रमिक को बेकार बनाने वाली मशीन भी अनन्त शक्तिशाली होने पर भी अभिशाप होगी, वरदान नहीं। मनुष्य के मस्तिष्क को बुद्धि को, क्षमता को, मिटानेवाला वैज्ञानिक विकास भी अभिशाप है, वरदान नहीं।

सब कुछ चेतनभोक्ताके लिये है। चेतनभोक्ता मनुष्य, जड़विज्ञान के लिये नहीं 'अन्जन कहा आंख जो फूटे' उस अन्जन की आवश्यकता नहीं है, जिससे आंख फूटती है। ऐसा वैज्ञानिक विकास होगा तो किसी हालत में मानवता नहीं बचेगी। जिसके पास भी वह शक्ति होगी। वह स्वेच्छा से न देने पर भी सम्पत्ति छीन सकता है। फिर भी पूज्जीवाद के

बचने की कोई संभावना नहीं रहेगी। राजा के समान ही पूज्जीपति भी उनका दुरुपयोग कर सकता है, क्यों कि बगावत और विरोध और क्रांति को रोकना तो उसे भी अभीष्ट ही है। हड़ताल और आन्दोलन से सर्वाधिक घबड़ाहट पूंजीपतिकी ही होती है। जिस प्रकार उसने वैज्ञानिकोंके द्वारा अनन्त शक्तिवाली मशीन बनवाकर, करोड़ों श्रमिकों को बेकार निरर्थक बना दिया, बड़े कारखानों को खोल कर छोटे-छोटे कारखानों, लघु उद्योगों को बेकार बना दिया, चीनीके मिलोंके कारण कोल्हूके द्वारा गन्ने पेरकर गुड़ बनानेकी स्थिति खराब हो गयी, कपड़ों की मिलों के सामने हाथ करघे शिथिल हो गये। ट्रैक्टर के सामने हल बैल की खेती की प्रगति शिथिल हो गयी। रुपये के बल पर उत्कृष्ट यन्त्रों, महायन्त्रों को खरीदकर, सर्वाधिक सर्वोत्कृष्ट माल बनाकर, सभी बाजारोंपर पून्जीपति कब्जा कर लेता है। किसी अपने प्रतिद्वन्दी को नहीं रहने देता, नहीं चाहता। उसी प्रकार ही वह आन्दोलन करने, कराने वालों,क्रान्तिकी आग सुलगानेवालों, हड़ताल कराकर काम ठप्प करके उत्पादन में रुकावट डालने वालों, या मुनाफा में हिस्सा बंटाने की बात करनेवालों के विरुद्ध उक्त क्रान्ति नाशक विरोधोन्मूलक, तेजोनाशक, मस्तिष्क मार्जक, स्मृति विनाशक, पुंस्त्व नाशक, वशीकरण कारक वैज्ञानिक यन्त्रों, केमिकल्स ड्रग्स आदि का प्रयोग कर सकता है। रुपयेके बलपर वे वैसी वस्तुओं को तथा बनाने वालों को भी खरीद सकते हैं। उस स्थिति में भी व्यक्ति एवं राष्ट्र की स्वतन्त्रता खतरे में पड़ सकती है। सोचने, समझनेकी क्षमता खत्म हो सकती है। व्यक्तिकी क्रान्ति भावना, क्षमता मिट सकती है। व्यक्ति मात्र ऐसे यन्त्रों, केमिकल्स के आविष्कार पर प्रतिबन्ध नहीं लगा सकते। सरकार ही वैसा कुछ कर सकती है। राज्य कमजोर या शक्तिहीन होने पर भी देश की स्वतन्त्रता खतरेमें पड़ सकती है। कोई भी आक्रान्त, शक्तिहीन राज्य या सरकार को सरलता से पराजित कर सकता है। वैसा होने पर कोई भी विकास खतरे में पड़ सकता है। अतः राज्य को कमजोर बनाने की बात कभी भी जनता के हित में नहीं हो सकती।

पूञ्जीवाद की भीतरी स्थिति

पून्जीवाद में पून्जी व्यक्ति के हित में ही पर्य्यवसित होती है। परन्तु समाजवाद की सारी कमायी का पर्य्यवसान समाज के ही हित में होता है। स्टालिन, खुश्चेव हटते हैं, खाली हाथ। उनके कुटुम्बको, उनकी उस कमायी की कौड़ी भी नहीं मिलती। व्यक्तियों की सारी कुशलतायें ही राज्य की कुशलता होती है। यदि व्यक्ति अकुशल होंगे, तो पून्जीपति भी वैसा ही होगा समाज में कोई अकुशल भी हो सकता हैं, उसकी जगह कोई कुशल, ले सकता है। परन्तु पून्जीवाद में तो अकुशल मालिक पुस्त दरपुस्त भी बरक़रार रह सकता है।

वस्तुतः सत्ता और सम्पत्ति विभक्त रूप से तो साम्राज्यवाद में ही रहती थी। पून्जीवादमें तो—पून्जीवादके हाथमें ही सत्ता और पून्जी दोनों रहती है। अतः यदि राज्य मद के साथ सम्पतिके मद का खतरा है, तो वह पून्जी वाद में ही है। पून्जीवादी राष्ट्रों की सरकारें, पून्जीपतियों के हाथ का खिलौना ही होती हैं। दो चार लाखों में एक एक एम० एल० ए० कों, १० लाख में एम० पी० लोगों को खरीदा जा सकता है। एक स्टेट या एक राष्ट्र की सरकार यदि दश बीस अरब में खरीदी जा सके तो यह सौदा महंगा नहीं होता।

यदि समाजवादके पीछे राज्य खड़ा है तो पून्जीवादके पीछे भी राज्य तो खड़ा ही है, और वैज्ञानिक विकास में भी पून्जीवाद आगे है। ऐसी स्थिति में समाजवादी राज्यों के प्रति जो भी शंकायें हो सकती हैं। वे सबकी सब पून्जीवादी राज्यों पर भी हो ही सकती है। ऐसी स्थिति में पून्जीपति और पून्जीवादी राज्य क्रान्ति या विरोध भावनाओं को कुचलने के लिये सब कुछ कर सकते हैं।

इसी प्रकार पून्जीवादी सरकार को हटाना भी असम्भव होता है। पून्जीवादी राष्ट्रों में प्रायः लोकतन्त्रत का नाम लिया जाता है, और कहा

जाता है कि जनता की सरकार है। शासन की सर्वोच्च सत्ता जनता में निहित है। राष्ट्रपति, प्राइममिनिस्टर सब जनताके सेवक हैं। मालिक जनता है, जनता के प्रत्येक व्यक्तिको अधिकार है कि वह नापसन्द सरकार बदलकर मनचाही सरकार बना ले। सब को भाषण, लेखन की स्वाधीनता है। प्रेस चलाने तथा अखबार निकालने की सबको छूट है। राष्ट्रपति प्राइममिनिस्टर की समालोचना घड़ल्ले से की जा सकती है। हर एक व्यक्ति पार्टी बना सकता है। निर्वाचन लड़ सकता है। जनता से कहा जाता है कि आपकी सरकार है, आवो एम० एल०ए० बनो, प्राइममिनिस्टर बनो, राष्ट्रपति बनो, मनचाही सरकार बना लो, नापसन्द सरकार बदल दो परन्तु जनता कंगाल है। उसके पास तन ढांकने को कपडा नहीं है। पेट भरने को रोटी नहीं है। बीमार बच्चे के लिये इलाज नहीं हैं। निर्वाचन की जमानत दाखिल करने के ढाई ढाई सौ या पांच सौ रुपये नहीं, फिर निर्वाचन कौन, कैसे लड़ेगा? निर्वाचन की मंहगाई यहां तक बढ़ जाती है कि एक एक एम० एल० ए०, एम० पी० के एलेक्शन जीतने के लिये ४० लाख खर्च किया जाता है। राष्ट्र का धन सिमिटकर मुट्ठी भर लोगों के पास पहुंच गया है। करोड़ों व्यक्ति कंगाल हैं। ऐसे मंहगे एलेक्शन में कोई आदमी कभी सफल ही नहीं हो सकता है। छोटी सी बातों के लिये गरीब को फांसी पर लटका दिया जाता है। अमीर के बड़े-बड़े अपराध पैसे के बल पर छिप जाते हैं। हत्यायें, बलात्कार करके भी पैसे के बल पर पूंजीपति छूट जाता है।

ऐसी स्थिति दिखाने के लिये है, जनता को पूंजीवादी जनतन्त्र में सब सुविधायें हैं, पर जनता को कंगाल बना दिया जाता है जिससे वह कुछ नहीं कर सकती। अखबार निकालनेकी छूट है, परपैसा ही नहीं, प्राइममिनिस्टर बननेकी छूट है, पर एम० पी० बनना कठिन है, बहुमत बनाना कठिन है, यहां भी वही बात है कि, जैसे पैर काटकर मनुष्यको दौड़ने की मुकम्मिल आजादी देना केवल मक्कारी है, उसी तरह जनताका शोषण करके बेकार, बेरोजगार बनाकर, कंगाल बनाकर, राष्ट्रपति बनने की, सरकार बनानेकी आजादी देना मक्कारी ही है। इसी लिये सामान्य जनता के लिये जैसे रूस एवं चीन में

सरकार बनाना या हटाना असंभव है, उससे भी अधिक कठिन पूंजीवादी राष्ट्र में हैं। अभी भी भारत मे जनतन्त्र है। अनेक पूंजीपतियों के वैयक्तिक बड़े-बड़े उद्योग भी हैं। परन्तु यहाँ पचपन-साठ करोड़ की आबादी वाले देश में पचास लाख भी व्यक्ति ऐसे नहीं मिलेंगे, कि जो निर्वाचन की जमानत दाखिल कर सकें, जीप दौड़ा सकें, पोस्टर, नोटिश बांट सकें, कार्यकर्त्ता रख सकें।

मुट्ठी भर लोगों के हाथ में ही पूंजी हैं। वैसे बड़े-बड़े कारखाने, इस्पातके उद्योग, विद्य त् के उद्योग, अस्त्र-शस्त्र निर्माण, वायुयान निर्माण, परमाणु अनुसंधान आदि उद्योग तो पूंजीवादी राष्ट्रों में भी सरकारों के ही हाथ में ही हैं।

बुद्धि का आधार सम्पत्ति नहीं

यह भी कहना तर्क शून्य है कि व्यक्तिगत सम्पत्ति रहने से ही सोचने विचारने की शक्ति रहती है, सम्पत्ति न रहने से ९० प्रतिशत उसका व्यक्तित्व खत्म हो जाता है। सोच विचार की क्षमता क्षीण हो जाती है। क्योंकि संयुक्त परिवारों में व्यक्तिगत सम्पत्ति नहीं होती है। फिर व्यक्तित्व की समाप्ति नहीं होती। सोच-विचारकी शक्ति क्षीण नहीं होती। वैज्ञानिकों, कारीगरों के पास उतनी सम्पत्ति नहीं होती, जितनी मिल मालिकों के पास होती है। जो क्षमता, जो विद्या, बुद्धि, मस्तिष्क, वैज्ञानिकों, कारीगरों के पास होता है, किसी भी धन कुबेर के पास नहीं होता। यदि सम्पत्ति ही क्षमता और बुद्धि का आधार हो तो धनपति में ही सर्वोत्कृष्ट बुद्धि होनी चाहिये।

आम तौर पर लोग जानते हैं कि लक्ष्मी का वाहन उल्लूक होता हैं। भारतीय दृष्टि में तो प्रायः लक्ष्मी, सरस्वती दोनों के आश्रय एक ही नहीं रहते हैं। सरस्वती उपासक, लक्ष्मी निरपेक्ष हो कर ही सफल होते हैं। भारतीय दृष्टिकोण से तो जो अधिकाधिक त्यागी होता है, धन निरपेक्ष होता है, वहीं

विज्ञान पारंगत होता है। ब्रह्मात्म साक्षात्कार सम्पन्न तत्वज्ञ अकिंचन ही होता है। "कौपीन वन्तः खलु भाग्यवन्तः", प्रसिद्ध वैराग्यबर्धक स्तोत्र है।

दोनों वादों में सम्पत्ति का केन्द्रीकरण

समाजवाद में सम्पूर्ण राष्ट्र की सम्पत्ति राष्ट्र के सभी नागरिकों की सम्पत्ति है। इसी लिये सभी को उससे लाभ मिलता है। सभी का जीवन स्तर उच्च बनाने, शिक्षित, सक्षम बनाने में ही उसका उपयोग होता है। स्टालिन, ख़ुश्चेव, ब्रेझनेव या माओ के व्यक्तिगत घर में कोई सम्पति नहीं जाती, नहीं उनके भाई-भतीजों, बेटों-पोतोंको वह मिलती है, इसीलिये बराबर, लगातार समाजवादी राष्ट्र विकास के मार्ग में अग्रसर हैं। पूंजीवादी राष्ट्रों ने जिन ज्ञान, विज्ञानोंपर प्रतिबन्ध लगा रखा था, जिससे दूसरे विरोधी राष्ट्रों को न प्राप्त हों, उन सभी ज्ञान विज्ञानों का स्वतन्त्र रूप से समाजवादी राष्ट्रों ने अपने यहां विकास किया है। रूस के वैज्ञानिक, किसी दृष्टि से भी पूंजीवादी राष्ट्रों के वैज्ञानिकों से पीछे नहीं है। चीन ने भी पुराने, घिसे पिटे रास्ते से ही नहीं, किन्तु अपने स्वतन्त्र ढङ्ग से सब प्रकार के टेकनोलाजी का विकास किया है। अतएव व्यक्ति के बचाने की चीख पुकार पून्जीवादियों का एक स्टण्ट मात्र है। उसमें कुछ भी दम नहीं है। आज का मनुष्य वैसा बुद्धू नहीं है, कि जो आत्महित के नाम पर फांसी देने वालों की जयजयकार करता हुआ फांसी पर लटक जाय।

समाजवादी राष्ट्रों में तो राष्ट्र की सारी शक्ति, सम्पत्ति, सामूहिक है। अतएव सबको ही उसका गर्व होता है। सबको उसमें ममत्व होता है। अत एव राष्ट्र के प्रत्येक व्यक्तिके लिये काम, दाम, आराम की व्यवस्था राज्य को करनी ही पड़ती है। परन्तु पून्जीवादी राष्ट्रों में व्यक्ति अनाथ एवं असहाय बेकार, बेरोजगार रहता है। क्योंकि जैसे जैसे उत्कृष्ट मशीनों का आविष्कार होता जायगा, वैसे वैसे राष्ट्र में जनता बेकार, बेरोजगार होगी। बड़ी मिलों, उद्योगों के सामने, छोटे उद्योग, कारखाने टिक नहीं पायेंगे। सबके साधन और

काम समाप्त हो जायेंगे, फिर फुटपाथों पर आराम करने के लिये कंगालों की पलटनें अनाथ, असहाय होकर या तो मरेंगी या क्रान्ति करेंगी।

मान लिया कि रूस में पचास आदमियों का ग्रुप रूस पर हावी है, पर वह समष्टि राष्ट्र के प्रतिनिधि के रूपमें रूस का शासन चलाता है, वैयक्तिक रूप से नहीं। आज रूसके ख्रुश्चेव का पता है, वे कहां हैं, कहां गये ? किन्हीं भी राष्ट्रों या पार्टियों अथवा दलों में ग्रूप ही नहीं, इने-गिने व्यक्तियों का ही प्रभाव होता है। जैसे आप के अनुसार सबमें सम्पत्ति पैदा करने की क्षमता नहीं होती, वह क्षमता कुछ पून्जीपति में ही होती है, वैसे ही पार्टी चलाने, संघटन करने का सामर्थ्य भी सबमें नहीं होता। शासन चलाना भी सबके वश की वात नहीं होती हैं। रूस में तो विरोध करने पर जबान कट सकती है, परन्तु पूंजीवादी राष्ट्रों के कंगालों में तो वेकारी, भुखमरी के कारण विरोध की कल्पना भी नहीं उत्पन्न होती है। भारत में ही आज आपात स्थिति घोषित है, सबकी जबान बन्द है, अखबारों की कलम बन्द है।

वस्तुतः व्यक्तिगत रूप में आवश्यक सम्पत्ति न समाजवाद में रहेगी न पूंजीवाद में। क्योंकि दोनों वादों में सम्पत्ति का केन्द्रीकरण ही रहता है। समाजवाद में सारी शक्ति राज्यमें केन्द्रित रहती है। पूंजीवादमें कुछ धन्ना-सेठों में, पूंजीपतियों में। राज्य की सम्पत्ति फिर भी राष्ट्र के व्यक्तियों के काम आती है। परन्तु पूंजपतियों की सम्पत्ति तो केवल उनके परिवार के लोगों, नौकरों, गुलामों, चापलूसों के ही काम आती है। करोड़ों जनता को उससे कुछ भी लाभ नहीं।

शक्ति का विकेन्द्रीकरण तो अध्यात्मवाद पर आधारित धर्मनियन्त्रित शासनतन्त्र में ही सम्भव है। उसके अनुसार आर्थिक असंतुलन ही सब अनर्थ की जड़ है। अतः प्रत्येक व्यक्ति को स्वस्थ, समृद्ध शक्तिशाली होना चाहिये। सदाचारी धार्मिक होना चाहिये। आवश्यकता पड़ने पर राज्य के संघटन, विघटन में सक्षम होना चाहिये। पेट का बढ़ जाना, हाथ पैर का पतला हो जाना रोग है, स्वस्थता नहीं। योग्य व्यक्तित्व और पर्याप्त सम्पत्ति रहने पर

ही बगावत की भावना जग सकती है। बेकार, बेरोजगार, भूखे नंगे या १०० रुपये की नौकरी वाला व्यक्ति बगावत क्या कर सकेगा ?

पार्टी को सभी श्रेष्ठ मानते हैं

रूस में अब क्रांति न होने का यह भी हेतु हो सकता है कि वहाँ क्रांति की आवश्यकता न हो, लोगों को क्रान्ति के लिये बाध्य न किया जाता हो। बेकारी, बेरोजगारी, भुखमरी क्रान्ति करने के लिये बाध्य करती हैं। वहाँ वह सब न हो, सबको काम, दाम, आराम की व्यवस्था हो।

भारत मे कुछ न कुछ सम्पत्ति अधिकांश लोगों के पास है। किसी के पास एक एकड़ धरती है, किसी के पास दुकान है, किसी पास कोई नौकरी है। परन्तु उससे उसका काम नहीं चलता। पर वह भी उनका दुर्भाग्य ही है, क्योंकि उससे पेट की भूख नहीं मिटती। कपड़ा, इलाज की व्यवस्था नहीं हो पाती, बच्चों की शिक्षा नहीं हो पाती। ऐसी व्यक्तिगत सम्पत्ति भी बगावत नहीं करा सकती, क्योंकि सभी अपनी नोन तेल की चिन्ता में ही परेशान रहते हैं।

राज्य के पास जो अद्‌भुत साधन होते हैं, वे सभी राज्यों के पास हैं। चाहे पूञ्जीवादी राज्य हों, चाहे समाजवादी राज्य हों, पूञ्जीवाद भी उन अद्‌भुत साधनों का उपयोग कर सकते हैं। यह कहा जा चुका है कि दिवालों के कान होते हैं। यह नयी बात नहीं है। पति पत्नी, पिता, पुत्र, भाई-भाई भाई, बहन सबसे श्रेष्ठ पार्टी है। पार्टी को मानों, यह बात समाजवाद ही नहीं, सभी दल सिखाते हैं।

आर० एस० एस० के सरसंघ संचालक स्वर्गीय श्री गोलवल्कर जी, (जो समाजवाद के विरोधी थे), ने अपने विचार नवनीत,में लिखा है कि—

"तजिये तिनहि कोटि वैरी सम यद्यपि परम सनेही"
तजेऊ पिता प्रहलाद, विभीषण बन्धु भरत महतारी।
बलिगुरु तजेउ, कन्त ब्रजवनिता, भये जग मंगलकारी।

"तुलसीदास के पद्य के अनुसार—माता, पिता, गुरु, पति, पत्नी सब से ऊपर अपने संघ को बतलाया था। संघ के स्वयं सेवकों की यही धारणा भी होती है। वे माता, पिता, गुरु किसी की भी उपेक्षा कर सकते हैं, सङ्घ के लिये। अतः समाजवादी ऐसा सिखाते हों, तो क्या आश्चर्य? माता, पिता, गुरु, पति पत्नी आदि के महत्वपूर्ण सम्बन्ध तो शास्त्र की मान्यता पर निर्भर करते हैं, धर्म निरपेक्ष भौतिकवादी, पूंजीपति या धर्मनिरपेक्ष समाजवादी सभी शास्त्र को धता बताते हैं। जैसे बानरी अपने बच्चे के मुख में से रोटी निकाल लेती है, ऐसे अर्थतन्त्र परायण पून्जीवादी, माता, पिता, बन्धु सबका गला काट कर, धन बटोरने का प्रयत्न करते ही हैं। उसका सब कुछ धन ही होता है। 'कौड़ी कारण मोहवश करहिं विप्र गुरु घात', प्रसिद्ध ही है।

व्यक्ति एवं समाज एक दूसरे के पूरक

'समाज एक कोरा शब्द है, व्यक्ति वास्तविक है, यथार्थ है। समाज सिर्फ जोड़ है, ढूंढने पर भी समाज नाम की वस्तु नहीं मिलती, जहाँ जायं वहाँ व्यक्ति ही मिलता है" इत्यादि कथन व्यक्तित्व का अतिवाद मात्र है। लोग कहते हैं कि 'सरकार का पता नहीं लगता है। राष्ट्रपति कहता है कि हमारी सरकार यह कर रही है, वह कर रही है। प्रधानमन्त्री भी अपनी सरकार के कार्यों का विवरण पेश करता है, गृहमन्त्री भी यही कहता है। परन्तु सरकार कौन है? कहां है? किसी को नहीं मिल पाती' यह सब बातें उपहास मात्र है।

कुछ लोग व्यक्तिवाद के अन्ध भक्त होकर समाज की उपेक्षा करते हैं, तो कुछ लोग समाज के नाम पर व्यक्तित्व का विनाश करना चाहते हैं। कई सम्राटों ने, पून्जीपतियों ने, व्यक्तित्व के मद में समाज का शोषण किया, समाज की उपेक्षा की ही। कई समाजवादी अधिनायकोंने, लाखों व्यक्तियों के हित स्वत्व को रसातल में भेजा है। परन्तु वस्तुस्थिति यह है कि व्यक्ति और समाज दोनों का समन्वय ही कल्याणकारी है। समाज का निर्माण

व्यक्तियों से ही होता है। एक-एक पाषण स्थाली, बटलोयी नहीं धारण कर सकते हैं। परन्तु तीन पाषण मिल जाय तो बटलोयी धारण करने वाला चूल्हा वन जाता है। एक-एक तन्तुओं से अङ्ग प्रावरण, शीतापनयन, नहीं हो सकता है। परन्तु तन्तुओं से ही बने वस्त्र से अङ्ग प्रावरण, शीतापनयन हो सकता है। मृत्तिका से जलानयन नहीं हो सकेगा। परन्तु मृत्तिका निर्मित घट से जलानयन हो जाता है। रस्सीकी तीन लड़े अलग-अलग टूट सकती हैं, पर मिलकर एक हो जायं, तो उनका टूटना असम्भव हो जाता है।

एक-एक सोल्जर को हरा देना सरल है, पर सेना को हराना सरल नहीं है। एक-एक भाई कमजोर होते हैं, पर वे ही मिल जानेपर बलवान् हो जाते हैं। एक-एक वृक्ष सहज में च्छेद्य होता है। वृक्षों से बना हुआ बन दुरुच्छेद्य होता है। एक एक परमाणु महत् परमाणु का आरम्भ नहीं कर सकते। परन्तु दो परमाणु मिलकर द्वयणुक प्रारम्भ कर देते हैं, तीन द्वयणुक मिलकर त्रसरेणु आरम्भ करते हैं। वह महत्परिमाणका होता है। परमाणु और द्वयणुक अदृश्य होते हैं। त्रसरेणु दृश्य होता है। इस तरह अवयवसे अवयवी स्पष्टतया द्वयणुक भिन्न प्रतीत होता है। परमाणुओं का संघात संसारमें भरा पड़ा है, पर उसमें स्थूलता नहीं आती। अतः उसमें दृश्यता भी नहीं आती है, इसी लिये सेना, बन प्रत्यय के समान अवयवी का प्रत्यय पृथक् रूप से होता है।

ठीक इसी तरह कुछ व्यक्तियों के समुदायका कुटुम्ब बन जाता है। कुछ कुटुम्बोका समुदाय ग्राम या नगर बन जाता है। कुछ ग्रामों, नगरोंसे तहसील, जिला, जिला से प्रान्त, प्रान्तों से राष्ट्र एवं राष्ट्रों से विश्व बन जाता है। व्यक्तियों से समाज बनता है। अतः व्यक्तियों की अच्छाई पर समाज की अच्छाई निर्भर है। व्यक्ति निर्बल, दुर्बल, वेदीन, बेईमान होंगे तो राष्ट्र भी निर्बल, दुर्बल, बेईमान होगा। व्यक्ति बलवान्, पहलवान, धनवान् बुद्धिमान् होंगे, तो राष्ट्र भी बलवान्, धनवान्, शक्तिशाली, एवं बुद्धिमान् होगा।

अतः व्यक्ति की उपेक्षा करना समाज के लिये आत्मघाती सिद्ध होगी।

बेईमान, वेदीन राष्ट्र से ईमानदार राष्ट्रपति या प्रधानमन्त्री नहीं निकल सकते। बेईमान राष्ट्र में ईमानदार न्यायाधीश, कर्त्तव्य परायण हाकिम, पुलिस कैसे मिल सकेगी? अतः व्यक्तियों के विकास पर ही राष्ट्र का विकास निर्भर है। परन्तु समाज या राष्ट्र का निर्बल होना व्यक्तियों के विकास में महान बाधक हो सकता है। समाज के द्वारा व्यक्तियों के विकास के लिये सारी सुविधायें मिलती है। शिक्षा मिलती है, सभ्यता, संस्कृति के संस्कार मिलते हैं। समाज में ही व्यक्ति जीवित रहता है। मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। समाज बिना उसका विकास ही रुक जाता है। जीना ही कठिन हो जाता है। समाज में विवाह-शादी होती है। समाज व्यक्ति को नियन्त्रित संस्कृत, विकसित करता है। अतः दोनों का समन्वय ही आवश्यक है।

समाज को व्यक्ति का बाधक नहीं बनना चाहिये। व्यक्ति खूब विकसित हों, समुन्तत हों, परन्तु समाज का नुकसान पहुंचा कर नहीं। व्यक्ति अपनी उन्नति का प्रयास करते हुये, कुटुम्ब के अभ्युत्थान का भी ध्यान रखे। कुटुम्ब उन्नत हो, शक्तिशाली हो, परन्तु ग्राम का बाधक बनकर नहीं। ग्राम उन्नति करे पर तहसील और मण्डल के हित का ध्यान रखते हुये। इसी प्रकार प्रांत उन्नत हो, पर राष्ट्र की हानि पहुंचा कर नहीं, राष्ट्रों को भी उन्नति करते हुये, विश्वहित का ध्यान रखना अत्यावश्यक है। परन्तु यह सब सदाचार, सद्धर्म और सच्छास्त्र सापेक्ष होता है। अतः धर्म निरपेक्ष भौतिक पूंजीवाद और समाजवाद में कम सम्भव होता है।

जंगल के गाय, बैल, सांढ़ आदि के भी समाज पर, समुदाय पर हिंस्र जन्तुओं के लिये हमला करना कठिन हो जाता है। मधुमक्खियों की छत को छेड़ना सरल नहीं है।

एक मत होकर, कपोत गण व्याध को उड़ा ले जाते हैं वहाँ उनका मित्र चूहा जाल काट कर उन्हें मुक्त कर देता है। अतः समाज कुछ है ही नहीं, यह कहना सर्वथा भ्रान्ति मूलक है। समाज द्वारा ही व्यवस्था चलाने, कानून बनाने तथा व्यवस्था पालन कराने के लिये राज्य या सरकार अपेक्षित है। उसका निर्बल होना जनता के अहित में ही है, हित में नहीं।

राज्य बिना, शासन बिना, अराजकता फैलकर अव्यवस्था पैदा करती है कोई भी सुख की नींद नहीं सो सकता। प्रबल दुर्बलों के धन, स्त्री छीन लेते हैं। सब एक दूसरे के भक्षक, शोषक हो जाते हैं, और प्रजा में मात्स्य न्याय फैल जाता है। किसी को किसी का डर-भय नहीं रहता है, फिर योग्यता अयोग्यता छोटे बड़े का लिहाज शरम मिट जाता है। अभक्ष्याभक्ष्य, अगम्यागमन, अग्राह्य ग्रहण चल पड़ता है। दस्यु प्राय सारी प्रजा हिंस्र पशुओं जैसी हो जाती है। तब कौआ पुरोडाश खाता है। कुत्ता चरु भक्षण करता है। गर्दभ द्राक्षा और मनुष्य घास खाने को विवश हो जाता है। अतः समाज, राष्ट्र, राज्य, मनुष्य के लिये, मनुष्यता के लिये, मानवता के लिये अपेक्षित ही नहीं, अनिवार्य है।

भारतीय आदर्श

अध्यात्मवाद पर आधारित धर्म नियन्त्रित शासन तन्त्र में सत्ता और सम्पत्ति की संतुलित व्यवस्था होती हैं। प्रमाद वशात् आध्यात्मिकता और धार्मिकता से विमुख होने से राजतन्त्र निरन्कुश साम्राज्यवाद बन जाता है। निरन्कुश साम्राज्य को समाप्त कर चक्रवर्ती शासन खत्म होने से सामन्तवाद आता है। सामन्त वाद को खत्म कर निरंकुश धर्महीन भौतिक पून्जीवाद बद्धमूल होता है। उसको समाप्त कर समाजवाद आता हैं। निरन्कुश पून्जीवाद से समाजवाद उत्कृष्ट है। इन दोनो ही वादों में निरन्कुशता आने पर, अयोग्य शासन बदलने की सामर्थ्य आमजनता में नहीं रहती। धन हीन होने से यज्ञ, दान आदि की संभावनाएं खत्म हो जाती है। अतः धर्म नियन्त्रित लोकतन्त्र या जनतन्त्र सर्वाधिक उपयोगी होता है। विकेन्द्रीकरण द्वारा शक्ति, सम्पत्ति का व्यक्तियोंमें वितरण द्वारा, व्यक्ति और समाज राज्य समन्वय के साथ विकसित होकर धर्म, अर्थ, काम मोक्ष के भागी होते हैं। इस लोक में सुख शान्ति हो, अन्त में बैकुण्ठ धाम मिले, यही भारतीय आदर्श रहा है:—

"इह लोके सुखं भुक्त्वा चान्ते सत्य पुरं व्रजेत"

समाजवाद अभौतिक आत्मा की स्वीकृति नहीं देता, यह ठीक है। वह एक भौतिकवादी जीवन व्यवस्था है। यद्यपि वैज्ञानिक अपने आपको खोजका विद्यार्थी मानता है, वह यह दावा नहीं करता है कि हमारी खोज अन्तिम हैं। डार्विन, स्पेन्सर, हैकल आदि विकास वादियों ने स्पष्ट कहा है कि हमारी बातें तभी ठीक मानी जानी चाहिये जब तक उसका ठीक से खण्डन न हो जाय। ईश्वर आदि के सम्बन्ध में हमें कुछ ज्ञान नहीं हैं।

हीगेल के अनुसार किसी वाद का विरोधी कुछ दिनों में प्रतिवाद उत्पन्न हो जाता है। चलते चलते कुछ दिनों में वाद प्रतिवाद के समन्वय से सम्वाद उत्पन्न होता है। आगे चलकर वही सम्वाद वादका रूप धारण कर लेता है। हीगेल के अनुसार राष्ट्रीय समाज वाद ही अन्तिम संवाद है, पर मार्क्स के अनुसार वह भी वाद कोटि में आ गया। उसकी दृष्टि में भौतिक द्वन्द्ववाद प्रक्रिया के अनुसार श्रमिक क्रान्ति जनित सर्वहारा के डिक्टेटर शिप में बनने वाला समाज एवं साम्य वाद ही अन्तिम सम्वाद है। पर उस प्रक्रिया के अनुसार हो सकता हैं कि वह भी आगे चलकर वाद बन जाये, और फिर अध्यात्मवाद पर आधारित धर्म नियन्त्रित शासन तन्त्र ही अन्तिम सम्वाद हो। यही अनादि है, यही अन्त में रहेगा। यह अनेक बार वाद-प्रतिवादों द्वारा संवाद बन चुका है।

समाजवाद शाश्वत नियम नहीं मानता

समाजवाद किसी नियम को शाश्वत नहीं मानता। उसकी दृष्टि में सब नियमों का आधार माली हालत है। रजनीश जी मानते हैं कि सम्पत्ति छिन जाने पर मनुष्यका ९० प्रतिशत व्यक्तित्व विदा हो जाता है। विचारने, साधने की क्षमता समाप्त हो जाती है। मार्क्स का भी कहना है कि माली हालात् उत्पादन साधनों पर निर्भर हैं। हाथ करघा द्वारा उत्पादन में माली

स्थिति सामान्य रहती हैं। महायन्त्रों द्वारा उत्पादन में माली स्थिति बहुत ऊंची हो जाती है। गरीब नोन, तेल की चिन्ता में परेशान रहता है। उन की दृष्टि में आत्मा, ब्रह्म आदि की कल्पना भी नहीं होती। धनवान्, बलवान्, खाने पीने की चिन्ता से मुक्त होकर, आत्मा आदि की कल्पना में मन बहलाव करता है। अथवा भयभीत जंगली मनुष्य रात्रि के समय बादलों के घेराव एवं गर्जनों से तथा विजलियों के चकाचौंध युक्त कड़कड़ाहट से, बून्दों की गोलियों से भीत होकर, बादलों के पिछे छिपे हुये अपने इर्द गिर्द हजारों आत्माओं, भूतों प्रेतों की कल्पना करने लगता है।

वही भूत प्रत की कल्पना सभ्यता के साबुन में घुलकर देव कल्पना और वैज्ञानिक चमत्कृति से चमत्कृत होकर ईश्वर कल्पना हो जाती है। यदि ईश्वर एंव आत्मा शाश्वत होगा, तो उसके नियम भी शाश्वत होंगे। ऐसी स्थिति में वैयक्तिक सम्पत्तियों का राष्ट्रीयकरण शाश्वत नियमों के विरुद्ध माना जायगा। अतः आत्मा, ईश्वर उसके शाश्वत धार्मिक आध्यात्मिक नियम मानने पड़ेगे। उस स्थिति में व्यक्तिगत सम्पत्तियों का राष्ट्रीयकरण भी असंभव हो जायगा। इस दृष्टि से आत्मा, ईश्वर तथा कोई शाश्वत धर्म या धर्मशास्त्र समाजवाद को, विशेषतया मार्क्सीय समाजवाद को नहीं मान्य है। कई राष्ट्र तो ईश्वर एंव धर्म न मानने पर भी धर्म निरपेक्षताका सिद्धांत मानते हैं।

श्री रजनीश जी कहते हैं कि 'समाजवाद मनुष्य जाति के इतिहास में आत्मा के विरोध में खड़ा हुआ सबसे बड़ा विचार है। दुनिया में नास्तिकता कभी नहींसफल हो पायेगी और दुनियामें कोई नास्तिक समाज, कोई नास्तिक संघटन, कोई नास्तिक देश चरम आत्मिक संभावनाओं को प्राप्त नहीं कर सकता। इसका कारण यह है कि नास्तिकों ने सीधे हीं आत्मा और परमात्मा पर हमला बोल दिया। वे हार गये, जीत नहीं सके। लेकिन साम्यवाद ने पीछे के रास्ते से हमला बोला है और साम्यवादने पहली बार जमीन पर एक नास्तिक देश और एक नास्तिक समाज को पैदा कर दिया है, और चार्वाक नहीं जीता, एपीकुरस नहीं जीता, जहां दुनिया के नास्तिक हार गये, वहां

मार्क्स, लेनिन, एन्जेल्स जीत गये। रहस्य क्या है ? रहस्य यही है कि साम्यवाद पीछे के दरवाजे से नास्तिकता को लाया है। वह धर्म का सीधा विरोध नहीं करता। वह सीधा विरोध सम्पत्ति का करता है और पीछे यह कहता है कि अगर धनपति को मिटाना है तो धर्म को मिटाना जरूरी है। क्योंकि धर्म को बिना मिटाये धनपति को मिटाया नहीं जा सकता है। वह यह भी कहता है कि अगर धनपति को समाप्त करना है, तो अब तक की जो विचारधाराये धनपति को खड़े होने का आधार बनती थी, उनको गिरा देना होगा।

मार्क्स की भी मान्यता थी कि सर्व दृष्टिकोण वर्गीय होते है। अगर धन पति धर्म की बात करता है तो सिर्फ इसीलिये करता है कि धर्म उसकी सुरक्षा बन जायगा। यह धारणा आमूल भ्रान्त है। धर्म का वर्ग से कोई सम्बन्ध नहीं है, नहीं दर्शनों का। उत्पादन व्यवस्थाओं से बंधा है। लेकिन मार्क्स की अति स्थूल भौतिकवादी दृष्टि ऐसा ही देख सकती थी। इस लिये उसने पून्जीवाद को हटाने के लिये धर्म को हटाने का भी विचार दिया। उसकी दृष्टि में मनुष्य के भीतर आत्मा जैसी कोई वस्तु नहीं है। इस विचार के कारण ही तो स्टालिन इतनी हत्यायें करने में सफल हुआ है। क्यों कि यदि आदमी केवल पदार्थ है, तो गर्दन काटने से कोई भी नहीं कटता है। पदार्थ न कटता है, न मरता है। माओ भी सुविधा से हत्या कर सकता है क्यों कि आदमी सिर्फ पदार्थ है, वहां पीछे कोई आत्मा नहीं हैं। साम्यवादी पहली बार दुनिया में निःसंकोच बिना, अन्तःकरण की किसी पीड़ा के हत्या करने में सफल हो सके। उसका कारण केवल यह है कि आदमी की आत्मा को इन्कार ही कर दिया गया है और आदमी की आत्मा के विकास और आविष्कार की जो संभावनाये हैं, उन्हें भी क्षीण करने का प्रयत्न निरन्तर चलता रहा है" पृ० २८-२९

परन्तु उक्त तर्क अत्यन्त निःसार है। क्यों कि यह पीछे कहा जा चुका है कि शाश्वत आत्मा या ईश्वर मानने पर कोई शाश्वत शास्त्र या नियम मानना पड़ता है। वैसा मानने पर, जैसा मनुष्यों ने वेद, बायबिल, कुरान

आदि मान रखे हैं, उनके अनुसार व्यक्तिगत सम्पत्ति, भूमि आदि हो सकती है। बिना मालिक की मर्जी के उसे कोई ले नहीं सकता। उनका राष्ट्रीकरण या समाजीकरण नहीं हो सकता। इसी लिये मार्क्स आदि को आत्मा और ईश्वर आदि का विरोध करना पड़ा, क्यों कि व्यक्तिगत सम्पत्ति रहते हुये समानता, स्वतन्त्रता, मातृता का उद्घोष केवल नारा मात्र रह जाता है। संसार में कौड़ीपति, करोड़पति का अन्तर, अमींर गरीब का अन्तर एक दम न्याय संगत एवं जायज माना जायगा। करोड़पति का लड़का करोड़पति ही रहेगा, चाहे कितना भी अयोग्य क्यों न हो, कौड़ीपतिका लड़का, कौड़ीपति ही रहेगा, चाहे वह कितना ही योग्य क्यों न हो। अतः मार्क्स ने सीधे ही आत्मा, ईश्वर, धर्म एवं शास्त्र पर हमला किया है। उनका यह पक्ष खण्डनीय है। परन्तु वह खण्डन रजनीश जी के वश का नहीं है।

धर्म की वर्ग सम्बद्धता

धनपति को मिटाने में तो वर्ग चेतना, वर्ग संघर्ष ही पर्याप्त है। परन्तु व्यक्तिगत सम्पत्ति का हरण अनैतिक है, धर्म विरुद्ध है, न्याय विरुद्ध है। सिर्फ इन बातों का उत्तर देने के लिये ही उसने ईश्वर का विरोध किया हैं। अन्य नास्तिकों का खण्डन निष्प्रयोजन भी था। इसलिये उनका निराकरण सहज हो सका था। वस्तुतस्तु शून्यवादी बौद्ध सबसे बड़े नास्तिक थे। उन्होंने ईश्वर, वेद, एवं वेदोक्त धर्म एवं आत्मा सबका ही निराकरण किया। सब कुछ शून्य है। फिर भी वे फले फूले। उनका ही एक भाग कहता है कि क्षण भंग विज्ञान मात्र सब कुछ है। क्षण भंग प्रवृत्ति विज्ञान की धारा जगत है। आलय विज्ञान धारा आत्मा है। उनकी संख्या भी दुनिया में कम नहीं है। बौद्धों की संख्या संसार में सबसे अधिक है। जैनों ने भी ईश्वर और वेद को मानने से इन्कार कर दिया, वे भी जीवित हैं। श्री राहुल जी कहते थे कि यदि बुद्ध भगवान आज होते तो वे अवश्य मार्क्सवादी हो गये होते। इसी तरहधर्म जितने भी हैं, सब भले शोषक शोषित वर्गसे सम्बन्ध न हो परन्तु वर्ग

सम्बन्ध तो है ही। वैदिक धर्म ब्राह्मणादि वर्णाश्रम धर्म से सम्बद्ध है। बौद्ध, जैन, इसाई, इस्लाम आदि धर्म वर्णाश्रम व्यवस्था के विरोधी हैं।

शरीर के भीतर कोई आत्मा नहीं है, यह बुद्ध का भी मत था। वे स्पष्टतया अपने को नैरात्म्यवादी कहते थे। जैन भले बौद्ध मत का खण्डन करते हैं, परन्तु उनकी आत्मा देह के समान ही मध्यम परिमाण का सावयव एवं संकोच विकाश शाली आत्मा हैं। यदि सावयय घटादि नष्ट हो सकता है, तो सावयय आत्मा भी क्यों नहीं। फिर मार्क्स को ही क्या कहा जाय? मनुष्य के भीतर आत्मा जैसी कोई वस्तु नहीं है। यह मानकर यदि कोई भौतिक वादी हत्यायें कर सकता हैं, तो आत्मा को अजर, अमर, अच्छेद्य, अभेद्य, अदाह्य, अक्लेद्य, असंग मानने वाले वेदान्ती हत्याओं में क्यों नहीं सफल हो सकते—

"नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः।
न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः॥
य एनं वेत्ति हन्तारं यश्चैनं मन्यते हतम्।
उभौ तौ न विजानीतो नायं हन्ति न हन्यते॥

(गीता-२।२३,१९)

इस आत्मा को शस्त्र काट नही' सकते। अग्नि जला नहीं सकता, पानी सड़ा नहीं सकता, मारुत सुखा नहीं सकता। जो इस आत्मा को हन्ता मानता हैं और जो उसे हत मृत मानता है, दोनों ही अज्ञ हैं। आत्मा वस्तुतः न हन्ता होता है न हत होता है। इतना ही क्यों गीता में यह भी कहा है कि—जिसे अहंकार नहीं है, जिसकी बुद्धि कर्ममें लिप्त नहीं होती, वह सपूर्ण लोकों को मारकर न मारता है न उससे लिप्त होता है।

यस्य नाहं कृतो भावो बुद्धिर्यस्यनलिप्यते।
"हत्वापि स इमां लोकान् न हन्ति न निवद्धयते"

(गीता१८।१७)

रजनीश जी अपनेको वेदान्ती मानते हैं, फिर स्टालिन ही पर ऐसा दोषारोपण क्यों? बौद्धमत में आत्मा स्वयं ही क्षण-क्षण में मरती रहती है।

जैन मत में भी आत्मा परिणामी है। परिणामी में पूर्व रूप का त्याग, नव्य-रूप का ग्रहण होता ही रहता है। सांख्य योग दृष्टि से भी आत्मा अमर, असंग है, कभी मरता नहीं है। आत्मा समाजवादकी दृष्टिमें ही नहीं, सभी दार्शनिकों की दृष्टि में पदार्थ तो है। नैयायिक वैशेषिक की दृष्टिमें आत्मा पदार्थ नहीं किन्तु द्रव्य, गुण कर्म सामान्य समवाय, विशेष अभाव रूप सप्त पदार्थों के भीतर नव द्रव्यों में एक द्रव्य है।

गर्दन काटने से कोई भी नहीं कटता है। पदार्थ न मरता है, न कटता है, क्योंकि आदमी सिर्फ पदार्थ है। यह कितना स्थूल तर्क है, दुनिया में वृक्षादि पदार्थ ही कटते हैं। पदार्थ ही मरतेहै, आत्मा पदार्थ होने पर भी नहीं मरती। सांख्ययोग, वेदान्त की आत्मा भी नहीं कटती है; नहीं मरती है। यदि शून्यवादी का शून्य भी आत्मा हो सकता है, विज्ञानवादी का क्षणिक विज्ञान आत्मा हो सकता है, जैनों का परिणामी संकोच विकासशाली मध्यम परिणाम पदार्थ आत्मा हो सकता है, तो मार्क्स का जीता जागता मनुष्य आत्मा क्यों नहीं हो सकता? यदि क्षणिक विज्ञान की धारा या शून्य का चिन्तन धर्म है, तो पिछड़े वर्ग का हित चिन्तन भी धर्म क्यों नहीं?

समाजवाद, आत्मा एवं स्वतन्त्रता

कहा जाता है कि, 'मनुष्य के भीतर जो आत्मा है उसको भी प्रकट होने के लिये सुविधायें और परिस्थितियां चाहिये। एक बीज के भीतर पौधा छिपा हुआ है, लेकिन अभी बीज को तोड़ देंगे तो पौधा मिलेगा नहीं। पौधा छिपा है जरूर, लेकिन प्रकट होने के लिये व्यवस्था चाहिये, पानी चाहिये, खाद चाहिये, जमीन चाहिये, सूरज की किरणे चाहिये, कोई प्रेम करने वाला चाहिये जो बीज के भीतर से पौधे को प्रकट कर पाये। प्रत्येक आदमी के भीतर आत्मा बीज की तरह है। आदमी को काटने से मिलेगी नहीं, इस लिये प्रयोग शाला में आदमी की आत्मा कभी भी नहीं पायी जा सकेगी।

मैंने सुना है मार्क्स ने कभी मजाक में कहा था कि—मैं तुम्हारे ईश्वर को मान लूंगा, अगर प्रयोग शाला की टेस्ट ट्यूब में ईश्वर को पकड़ कर बताया जा सके और फिर उसने यह भी कहा, ध्यान रहे भूल कर कहीं अपने ईश्वर को प्रयोगशाला की टेस्ट ट्यूब में ले मत आना, क्योंकि जो ईश्वर टेस्ट ट्यूब की पकड़ आ जायेगा, वह ईश्वर ही क्या रह जायगा ? ईश्वर को टेस्ट ट्यूब में नहीं पकड़ा जा सकेगा। इसका यह अर्थ नहीं कि वह नहीं है। टेस्ट ट्यूब बहुत छोटी चीज है और आदमी के शरीर को काट कर भी हम उसकी आत्मा को नहीं पकड़ पायेंगे। पर इसका यह अर्थ नहीं है कि वह नहीं है।

अगर मेरे मस्तिष्क को अभी काट दिया जाय तो वहां विचार जैसी कोई चीज नहीं मिलेगी, लेकिन विचार है। अगर आप के हृदय को काटा जाय तो वहां प्रेम जैसी कोई चीज नहीं मिलेगी, लेकिन प्रेम है। प्रमाण क्या है ? प्रयोग शाला में कहीं पकड़ में आता है ? आप सिद्ध नहीं कर सकते हैं कि प्रेम है। क्योंकि हृदय में खोजने से, तोड़ने-फोड़ने से, कहीं उसका पता नहीं चलता, लेकिन फिर भी आप जानते हैं कि वह है और आप कहेंगे कि दुनिया भर की प्रयोग शालायें सिद्ध कर दें कि प्रेम नहीं है, तो भी मैं मानने को राजी नहीं हूं, क्योंकि मैंने प्रेम को जाना है। अनुभव है, जो पदार्थ के पार है। लेकिन समाजवाद का बुनियादी आधार अनात्मवाद है। यदि एक बार किसी समाज ने स्वीकार कर लिया कि आत्मा नहीं है, तो वह बीज बोना बन्द कर देगा, क्योंकि जब बीज अंकुर है ही नहीं तो फिर बीज बोने की जरूरत नहीं है। मनुष्य जाति के ऊपर सबसे बड़ा दुर्भाग्य यह होगा कि यदि यह स्वीकृत हो जायगा, कि आत्मा नहीं है तो आत्मा का प्रकट होना निरंतर धीरे-धीरे बन्द हो जायगा, बीज पड़े-पड़े सड़ जायंगे।' (पृ०२९-३०)

परन्तु यह सब बातें तर्क शून्य ही हैं। विचार वस्तु प्रत्यक्ष है। उसमें किसी को सन्देह नहीं है। प्रेम भी मनोग्राह्य है। परन्तु आत्मा, विचार और प्रेम के समान मनोग्राह्य भी नहीं है। यह तो भौतिकवादी भी मानता ही है कि, जैसे गुलाब के डण्ठल, पत्ते, कांटे आदि उत्पन्न होते हैं, वैसे ही

भौतिक देह के भीतर मस्तिष्क, दिल- दिमाग का आविर्भाव होता है। हृदय में प्रेम की उत्पत्ति होती है। ऐसे ही ज्ञान भी देह में उत्पन्न होता है। परन्तु वह सब माता पिता के शुक्र शोणित का ही परिणाम है। यदि ज्ञान ही आत्मा है, तो भी वह स्थायी तो नहीं है, उसकी उत्पत्ति विनाश लोकसिद्ध ही है।

अगर बीज पड़े-पड़े सड़ जायगा तो वह आत्मा ही नही है। क्षण भंगुर विनश्वर वस्तु आत्मा है, यह आत्मवादियों को मान्य नहीं है। जैसे गोधूम, मधूक, द्राक्षा (गेहूं, महुआ, या अंगूर) की किसी विशिष्ट स्थिति से मादकता की उत्पत्ति होती है, उसी तरह गर्भस्थ शुक्र शोणित की किसी विशिष्ट अवस्था में ज्ञान या चैतन्य की अभिव्यक्ति या उत्पत्ति हो जाती है। अतः यह सब भूत का ही धर्म है। जैसे जल की उष्णता वृद्धि में गुणात्म परिणाम भाप बन जाता है, शीतलता वृद्धि में गुणात्मक परिणाम वर्फ हो जाता है, उसी तरह चेतना भी भूतों का ही गुणात्मक परिणाम है। जैसे धरणी, जल, वायु, सूरज के सम्बन्ध से अंकुर पैदा होता हैं, अगर इसी तरह किसी परिस्थिति में किसी बीज से आत्मा पैदा होती है, तो भी वह उत्पन्न होने वालीं वस्तु अंकुर के समान ही नष्ट भी हो जायगी। अतः ईश्वर या आत्मा का अस्तित्व उक्त दृष्टान्तों से सिद्ध नहीं होता। बीजों से अंकुर पैदा हों तो भी इसके मानने से आत्मा के अस्तित्व की सिद्धि नहीं होती। अतः कौन बीज बोयेगा? कौन बीजको पानी देगा? कौन बीजको बड़ा करेगा? इत्यादि प्रश्न सभी वेतुके हैं।

कहा जाता है कि आत्मा की प्रकट होने के लिये जो सुविधायें चाहिये वह समाजवाद छीन लेता है। अभी जो समाजवाद आयेगा, वह निश्चित छीन 'लेगा' (पृ-३०) परन्तु यह भी तर्क निर्जीव है। कौन सी सुविधा चाहिये उसे? समाजवाद कैसे छीनता है? इसका कोई निरूपण नहीं हो सका।

कहा जाता है कि, 'समाजवाद के लिये पहली आवश्यकता तो यह है कि आदमी की स्वतन्त्रता छीन ली जाय, और आदमी की स्वतन्त्रता का बहुत बड़ा हिस्सा उसकी आर्थिक स्वतन्त्रता है। अर्जन की स्वतन्त्रता,

अर्जित के स्वामित्व की स्वतन्त्रता, आदमी की मूलभूत स्वतन्त्रता है। मैं जो पैदा करूं वह मेरा हो सके, जो नियमित करूं वह मेरा हो सके। मनुष्य की बुनियादी स्वतन्त्रता है, उसकी आर्थिक स्वतन्त्रता। उसके हाथ से आर्थिक स्वतन्त्रता के छीने बिना समाजवाद स्थापित नहीं हो सकता। हां, पून्जीवाद ठीक से विकसित हो जाय तो किसी आदमी की स्वतन्त्रता बिना छीने समाजवाद का जन्म हो सकता है। वह जन्म होगा, पून्जी के अत्यधिक हो जाने पर, उसके पहले नहीं। इसलिए अभी दुनिया में कोई भी देश, अमरीका भी अभी इस हालत में नहीं आ सका है जहां समाजवाद जन्म ले। लेकिन अमरीका शायद पचास वर्षों में उस जगह पर आ जाये। अभी तो हमें बलपूर्वक समाजवाद आरोपित करना पड़ेगा। आरोपित समाजवाद में स्वतन्त्रता का हनन होगा और जितनी स्वतन्त्रता मरती हैं, उतनी ही भीतर आत्मा के फैलने की संभावना कम हो जाती है। आत्मा के लिए स्वतन्त्रता का आकाश चाहिये। और जब आर्थिक स्वतन्त्रता छीनती हैं तो दूसरा हमला वैचारिक स्वतन्त्रता पर होता है, क्योंकि समाजवाद के पक्षधर यह कहते हैं कि अगर हम वैचारिक स्वतन्त्रता दें तो हम समाजवादी व्यवस्था का निर्माण नहीं कर पायेंगे। रूस में एक ही दल है और कैसे मजे की बात हैं कि एक ही दल चुनाव भी लड़ता है। इसीलिये स्टालिन को दुनियां में जितने वोट मिलते थे, उतने किसी आदमी को कभी नहीं मिले। सौ प्रतिशत वोट स्टेलिन को मिलते थे। और उनका प्रचार सारे विश्व में किया जाता था। कोई पूछेगा नहीं कि उसके विपरीत कौन खड़ा था ? इस बात का अर्थ यही है कि विचारों की स्वतन्त्रता नहीं है।" (पृ० ३१)

उक्त बातें भी ईश्वर एवं आत्मा की सिद्धि से सम्बद्ध नहीं हैं। संसार में धनवान् होना ही अगर आत्मा को प्रकट करने की सुविधा है, तब तो अमरीका के धनवानों को आत्मा का साक्षात्कार मानना ही पड़ेगा। क्यों कि आपके अनुसार उनके पास स्वतन्त्रता का आकाश हैं ही। संसार में बड़े बड़े स्वतन्त्र सम्राट तथा धनवान् हुये है। परन्तु वे सदा ही उलूक के

वाहन ही रहे है। उन्हें ईश्वर, आत्मा का कोई साक्षात्कार नहीं हुवा है। इतिहास के अनुसार तो एक त्यागी, अंकिचन को जितना ईश्वर या आत्मा का साक्षात्कार संभव है, उतना अन्य को नहीं। फिर धनमद, राज्यमद से उन्मत्त लोगों के लिये तो ईश्वर एंव धर्म की बात बहुत दूर की है।

जैन समाज प्रायः धनवान् ही है। पर वह तो ईश्वर की सत्ता ही नहीं मानता। बौद्धों के अनेक समृद्ध स्वतन्त्र राज्य हैं। परन्तु बौद्ध मत में ईश्वर है ही नहीं। आत्मा भी उनका क्षण भंगुर और परिणामी ही हैं। एक कौपीन मात्रधारी, या दिगम्बर अंकिचन भिक्षुक ही ईश्वर या ब्रह्म की बात अधिक जानता है। ईश्वर का नाम ही अंकिचन जनप्रिय हैं।

शंकर, रामानुज, निम्बार्क, रामानन्द, मध्व, बल्लभ आदि सभी ईश्वर वादी सम्प्रदायों में ईश्वर प्राप्ति के लिये त्याग, की ही अपेक्षा कही गयी है, धन की नहीं—

न कर्मणा न प्रजया धनेन त्यागेनैके अमृतत्वमानशुः।

यह वेद वाक्य है। ईसायी, मुसलिम सम्प्रदायों में भी त्याग का ही महत्व है। जैन, बौद्ध मतों में भी त्याग, तपस्या का ही महत्व गाया गया है।

वस्तुतः जीव जब तक मनुष्यादि देहों में आबद्ध है, तब तक स्वतन्त्रता कहां? आधि, व्याधि, बुढ़ापा मृत्यु के पराधीन कोई भी प्राणी कहाँ स्वतन्त्र है? देहादि उपाधि बाध होने पर ही आत्मा में स्वतन्त्रता संभव है, फिर निरूपाधिक आत्म स्वरूप प्राप्ति के पहले स्वतन्त्रता का आकाश कहां मिलने वाला है। —

आर्थिक स्वतन्त्रता भी कहां संभव है? धनोपार्जनके लिये मजदूर चाहिये, कच्चा माल चाहिए, मशीन चाहिए, पून्जी चाहिये, कालकी अनुकूलता चाहिये। वृष्टि न हो, जमीन न हो तो कच्चा माल ही कहां से मिलेगा। अर्जन में भी स्वतन्त्रता नहीं होती, क्योंकि मनुष्य अकेला नही है और भी मनुष्य संसारमें हैं। एक व्यक्ति की स्वतन्त्रता वहीं तक होती है जहांसे दूसरे की स्वतन्त्रता आरम्भ होती है। भूमि जमींदारकी होगी, खानें किसी औरकी होंगी। श्रम मजदूरोंके पास

होगा। पून्जी किसी और के पास होगी। मशीन निर्माण की बुद्धि औरों के हाथ में होगी। फिर कोई अर्जन में भी स्वतन्त्र कहां है ? अर्जित वस्तुओं पर भी पून्जीवादी सरकारों का टैक्स होता है। मजदूरों के वेतन आदि के हिस्से होते हैं। अतः पून्जीवादी देशों में भी कमायी के कुछ हिस्सों पर ही कमाने वाले का अधिकार होता है। वैसे जीवनोपयोगी धन में अर्जन का अधिकार समाजवाद में भी मान्य है।

शास्त्रों में भी कहा गया है कि जितने से पेट या जीवन मात्रा का काम चल जाय, उतने में ही अभिमान करना उचित होगा। जीवनोपयोगी पदार्थ से अधिक में जो अभिमान करता है, वह चोर के समान दण्डनीय है।

यावद्भ्रियेत जठरं तावत्स्वत्वंहि देहिनाम्।
अधिकं योऽभिमन्येत स स्तेनो दण्ड महंति ॥

(श्रीमद्भागवत ७।१४।८)

मनु कहते हैं कि तीन वर्ष काम चलाने से अधिक धन हो, तो सोम यज्ञ करके उसका वितरण कर देना चाहिए।

यस्य त्रैवार्षिकं वित्तं पर्याप्तंभृत्य बृत्तये।
अधिकं वापि विद्येत स सोमं पातुमर्हति ॥ मनुस्मृति

आर्थिक असंतुल निवारणार्थ ही अतिरिक्त आमदनी में धर्म, यश, काम, अर्थ, स्वजनों के लिये पञ्चधा विभाजन की व्यवस्था है।

वस्तुतः महत स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिये बहुत सी स्वतन्त्रताओं का बलिदान करना पड़ता है। कोई व्यापारी व्यापार में लाखों रुपयों का प्रयोग करता है, तभी हजारों रुपये महीने की आमदनी होती है। विद्यार्थी, माता-पिता, गुरूजनों के पराधीन रहकर ही विद्वान बन सकता है। महान शक्तिशाली सिंह, विशालकाय हाथी भी, बुद्धि के कारण मनुष्य के पराधीन होकर रहते है।

जो माता-पिता, गुरुजनों को न मानेगें, स्वतन्त्रता के नाम पर स्वेच्छा-चारिता को बढ़ावा देगें, वे कभी विद्वान या स्वतन्त्र नहीं हो सकते। सैनिक

अनुशासन में रहकर ही राष्ट्र की रक्षा कर सकता है। कोई भी नागरिक अपने राष्ट्र के संविधान एवं कानून के अधीन रहकर ही उन्नति कर सकता हैं। संविधान, कानून द्वारा नियन्त्रित राष्ट्र ही सभ्य राष्ट्र कहा जाता है। जो जितना ही नियन्त्रित है, वह उतना ही सभ्य माना जाता है।

कोई भी साधक देह, इन्द्रिय, मन, बुद्धि सबको ही नियन्त्रित करके साधना में सफल होता है। अतः स्वतंत्रता और आर्थिक स्वतंत्रता के आधार पर ईश्वर या आत्मा को प्रकट किया जा सकेगा, यह कल्पना सर्वथा युक्ति-हीन हैं। पूञ्जीवाद के विकास से समाजवाद का जन्म है। इस पक्ष का निराकरण पीछे किया जा चुका है। जब भी कभी समाजवाद होगा, तब व्यक्तिगत धन का स्वामित्व नहीं रह जायेगा। तब आर्थिक स्वतंत्रता न होने से वास्तविक स्वतन्त्रता कैसे हो सकेगी ?

वैचारिक स्वतन्त्रता की सीमा सर्वत्र आदरणीय है पूञ्जीवाद राष्ट्रों में भी राजद्रोह भड़काने वाले भाषण की स्वतन्त्रता नहीं रहती है। सेना में क्या कहीं भी भाषण स्वातन्त्र्य हो सकता है ? चुनाव का नाटक जैसे रूस में हैं, वैसे ही पूञ्जीवादी राष्ट्रों में है। वहां भी करोड़ों गरीबों को कुछ मुट्ठी भर पूञ्जीपतियों के उम्मीदवारों को वोट दे देना पड़ता है। कुछ लोग लाखों रुपये चुनाव पर खर्च करते हैं। अधिकांश लोगों के पास चुनाव में जमानत का भी रुपया नहीं हैं। अतः जनमत का मखौल मात्र है। एक पार्टी रहने पर भी चुनाव द्वारा जनता की अभिरुचि की जानकारी की जाती है। यदि कम वोट पड़े तो उसने जनता की अरुचि दूसरी बार जानकर; उसको बदल कर, अन्य लोकप्रिय व्यक्ति को उम्मीदवार बनाया जा सकता है।

कहा जाता है कि, 'पिछले पचास वर्षों में रूस में अद्भुत घटनाएं घटी हैं। वैज्ञानिकों को भी सरकार आज्ञा देती है कि किस भांति सोचो, उनको भी कहती है कि कौन सा सिद्धांत निकालो, तो रूस में पिछले तीस वर्षों में वायोलोजी में इस तरह के भी सिद्धांत चलते रहे जो सारी दुनिया में मान्य

नही हैं। सारी दुनियां के प्रयोगकर्त्ता कह रहे थे कि यह गलत है, लेकिन स्टालिन की आज्ञानुसार वे सही थे। स्टालिन के मरने पर वे गलत हो गये। रूस के वैज्ञानिक भी हां में हां भरते थे। क्योंकि उनको भी पार्टी के आदेशानुसार जीना है। १९१७ के पहले रूस ने दुनिया के श्रेष्ठतम बुद्धिमान पैदा किये थे। लेकिन १९१७ के बाद उस हैसियत का एक आदमी भी रूस पैदा नहीं कर सका। लियोटाल्सटाय, मैक्सिम गोर्की, तुर्गनेव, गोगोल, दस्तोवस्की या चैरवव आदि की हैसियत का एक आदमी भी रूस पचास वर्षों में पैदा नहीं कर पाया। बात क्या है? रूस ने लेखक पैदा किये, पुरस्कार दिये। विचारक पैदा किये, पुरस्कृत किये। लेकिन एक भी विचारक उस गरिमा का नहीं हैं, जो रूस ने अपने गरीबी के और अत्यन्त परेशानी के दिनों में पैदा किये थे, जो उसने जारोकी अत्यन्त हीन व्यवस्था में पैदा किये थे। उतने विचारशील, उतने बुद्धिमान, उतने सृजनात्मक व्यक्तित्व भी रूस पैदा नहीं कर पाया। बात क्या है? वह पैदा होने की जो मूलभूत संभावना है, आत्मा के जन्म एवं विचार की स्वतन्त्रता, वही छीन ली गयी है। तुर्गनेव कैसे पैदा हो? लेनिन भी वापस रूस में पैदा नहीं हो सकता। लेनिन को भी पैदा होने के लिये अमरीका या इंगलैण्ड खोजना पड़ेगा।

सच तो यह है कि जो जानते हैं, वे कहते हैं कि लेनिन को जहर देकर मारा गया था। जिस आदमी ने क्रांति की थी, जिस आदमी ने रूस को समाजवादी बनाना चाहा था, वह भी मारा गया। दूसरा आदमी था ट्राटस्की, जिसने क्रांति में दूसरा बड़ा हिस्सा लिया था, वह भी भागा फिरा था। उसका कुत्ता छूट गया था रूस में, तो कम्युनिस्टोंने उसके कुत्ते की भी हत्या कर दी थी और फिर मैक्सिको में जा कर उसकी भी हत्या कर दी। मनुष्य जाति के इतिहास में इतने बढ़े पैमाने पर हत्या का खेल कभी भी नहीं हुआ। सरल था क्यों कि आत्मा है ही नहीं, सिर्फ पदार्थ हैं, तो गुड्डे, गुड्डियों को मारने और काटने में क्या अंतर पड़ता है? और फिर यह भी जरूरी है कि जिनके भीतर आत्मा ही नहीं, उन मनुष्यों को भी स्वतन्त्रता की क्या जरूरत हैं? समाजवाद अगर ठीक से सफल हो, जैसा

समाजवाद आज है, तो प्रत्येक आदमी को मशीन में बदल लेने को तैयार है।

(पृ० ३१-३३)

उक्त बातोंका आत्माके अस्तित्व सिद्धिसे कोई सम्बन्ध नहीं है। वैज्ञानिक भी किसी उद्देश्यसे किसी खोजमें परिश्रम करता है। अतः वैज्ञानिकोंको भी खोज की दिशा देना अनुचित नही कहा जा सकता। जैसे पूञ्जीपति अमुक अमुक कार्य के उपयुक्त मशीन के अविष्कार के लिये वैज्ञानिकों को धनादि देकर प्रेरित करते हैं, वैसी प्रेरणा सभी शासक देते रहे हों तो, रूस में कोई आपत्ति की बात नहीं हैं। ऐसे ही सोचने की भी दिशा तो हर एक देश के लोग देते ही हैं। यह अलग बात है कि जिस खोजमें वह प्रबृत्त हुआ वह सोचने पर गलत सिद्ध हो। विज्ञान के लिये सामान्य सी बात है कि वैज्ञानिक किसी समय किसी वस्तु को सत्य समझते है, कालान्तर में वे स्वयं उसे गलत मानने लगते हैं। कई आविष्कार कभी अत्यन्त उपयोगी माने जाते हैं, वही कालान्तर में गलत सिद्ध हो जाते हैं। दर्जनों ऐसे सिद्धांत है, जो कल तक ठीक थे, आज गलत सिद्ध हो रहे हैं। डार्विन के ही सिद्धांत को ही उसके परवर्ती वैज्ञानिकों ने गलत सिद्ध कर दिया। (देखिये— मार्क्सवाद और रामराज्य), परन्तु उसका दोष समाजवाद या स्टालिन पर नही दिया जा सकता।

रूस १९१७ के वाद पहले जैसा महत्व पूर्ण व्यक्ति नही पैदा कर सका, यह ठीक है, परन्तु भारत ही आज वशिष्ट, विश्वामित्र, गर्ग, गौतम, पराशर, व्यास, कपिल, कणाद, जैसे आदमी कहाँ पैदा कर रहा हैं? शङ्कर, भट्टपाद, कुमारिल, मण्डन मिश्र, उदयन, श्रीहर्ष जैसे विद्वान कहां पैदा कर रहा हैं? ईसा, मुहम्मद जैसे आदमी आज कहाँ पैदा हो रहे हें? तो भी आज की दुनियां में रूस ने उत्कृष्ट कोटिके वैज्ञानिक पैदा किये हैं, जिन्होंने मिग विमान बनाये हैं, परमाणु बम, हाइड्रोजन बम, बनाये, चन्द्रलोक पर चलने वाली गाड़ी वनायी है। आज रूस और अमरीका के अन्तरिक्ष यात्री अपने अपने यानों से निर्धारित समय पर अन्तरिक्ष स्थान पर मिलने लगे हैं। दोनों ही देश इस गोपनीय गवेषण कार्य को समझने के लिये एक दूसरे के विशेषज्ञों को निमन्त्रित कर रहे हैं। सोयुज, अपोलो के सम्मिलित शोध कार्य में वे अत्यन्त

सौहार्द के साथ अन्तरिक्ष के रहस्यों का अध्ययन कर रहे हैं। इन महत्व-पूर्ण बातों को, मन गढ़न्त झूठी कहानियों के बल पर झुठलाया नहीं जा सकता।

रूस में लेनिन फिर से नहीं पैदा हो रहा है। भारत में गांधी भी कहां फिर से आ रहे हैं? इंगलैण्ड में चर्चिल, अमरीका में विल्सन भी फिर से कहां पैदा हो रहे हैं? कहानियां एवं कुछ घटनाएं किसी भी तर्क का उत्तर नहीं हैं। व्यक्तिगत दोष और विरूद्ध घटनाएं जितनी पूञ्जीवादी राष्ट्रोंमें मिलेगी। उतनी अन्यत्र नही। परन्तु उनका उद्धरण मात्र पूञ्जीवाद का उत्तर नहीं हैं। प्रायः पूञ्जीवादी मार्क्स के तर्कों का उत्तर न देकर समाजवादियों की असफलताओं तथा अन्यायों, अत्याचारों को ही लिख कर, उनका उत्तर समझ वैठते हैं। आत्मा से रहित मशीनों को भी तो कोई समझदार नष्ट नहीं करना चाहता हैं। आत्म रहित इमारतों, खिलौनों को भी मिटाया नहीं जाता। जीते जागते देह से भिन्न आत्मा को न स्वीकार करने वाले भी सहस्रों मशीनों एंव सिद्धांतों के आविष्कारक मस्तिष्क वाले मनुष्यों की हत्या करना, कैसे उचित समझेंगे।

चार्वाक देहवादी होने पर भी मृत्यु से डरता ही है। शून्यवादी क्षण-भंगुर, विज्ञानवादी भी तो हत्या से डरते हैं। जो स्वयं मृत्यु से डरेगा, वह दूसरों की मृत्यु की भी उपेक्षा नहीं कर सकता। यह कहा जा चुका हैं कि अच्छेद्य, अभेद्य, नित्य आत्मा मानने वालों की दृष्टि में न तो कोई मारता है न कोई मरता है, फिर उन आत्मवादियोंमें भी हत्या कैसे रुकेगी।

रामायण, महाभारत आदि के अनुसार युद्धों में भयंकर हत्याएं हुई हैं। ईसायियों, बौद्धो ने भयंकर संहारक शस्त्रास्त्रों का अविष्कार और हत्याएं की हैं। हिटलर, मुसोलनी भी तो आत्मवादी थे, उनके इतिहास से क्या उनकी दयालुता प्रतीत होती है? पीछे रजनीश जी ने कहा था कि सम्पत्ति छीनने से मनष्य का नब्बे प्रतिशत व्यक्तित्व खत्म हों जाता है। सोचने की शक्ति समाप्त हो जाती है। परन्तु उन्होंने उसके विरुद्ध यह भी कहा कि — रूस ने अपनी गरीबी और परेशानी के दिनों में जैसे गरिमा के व्यक्तियों को पैदा किया वैसे

गत पचास वर्षों में नहीं पैदा कर सका। इससे स्पष्ट होता है कि गरीबी, परेशानी या धनहीनता रहनेपर भी मनुष्य उन्नति कर सकता है। आत्मा का प्राकट्य कर सकता है। आर्थिक अवस्था के अनुसार प्राणी सोचता समझता है। धर्म, आत्मा और ईश्वर का विकास करता है। सब नियमों, सिद्धांतों का आधार माली हालात है। यह तो उल्टा मार्क्स के समाजवाद का ही मत हैं।

इस कथन में भी कोई दम नहीं है कि, 'गुलामी तभी पूरी तरह समाप्त होगी जब मनुष्य के श्रम का स्थान हम पूरी तरह यन्त्रसे बदल डालेंगे। जिस दिन मनुष्य कों श्रम करने की आवश्यकता नहीं रह जायगी, और सारे स्वचालित यन्त्र उसकी जगह काम करने लगेंगे, उस दिन ही श्रमिक सब तरह की दीनता से मुक्त हो सकेगा। उसका एक मार्ग यह है, जो कि पूञ्जीवाद के विकास से सम्भव हो सकता है। दूसरा मार्ग यह है कि समाजवाद को लाकर हम आदमी को ही मशीन बना सकते हैं, जो कि रूस, चीन में किया जा रहा है। आदमी को मशीन के रूपमें बदल देने पर मनुष्य को सोचने की क्या जरूरत है?' यदि आदमी सिर्फ शरीर है तो उनका कहना ठीक है। उचित भोजन मिलना चाहिये, अच्छे कपड़े मिलने चाहिये, सुविधाजनक निवास मिलना चाहिये। लेकिन ठीक आत्मा भी मिलनी चाहिये, यह किसी समाजवादी नारे में सुना है? रोटी, कपड़े, मकान मिल गये, बात समाप्त हो गयी? इससे ज्यादा आदमी को जरूरत क्या हैं? सोच विचार से आदमी को परेशानी होती है। अच्छा है कि सोच विचार छीन लिये जायं। सोचना छोड़ दो।" (पृ. ३३)

आत्मा वाद विशेष से सम्बद्ध नहीं

परन्तु उक्त दोनों ही बातें गलत हैं। ईश्वर न करे कि इतने यन्त्रों का निर्माण हो जाय कि मनुष्य के श्रम की अपेक्षा ही न रहे। उस हालत में मनुष्य की क्या स्थिति होगी? इतने मशीनोंको प्रचलन से जब इतनी बेकारी,

बेरोजगारी और करोड़ों मनुष्य गरीबी के शिकार बने हैं, फिर जब एक मनुष्य की भी आवश्यकता न रह जायगी तब की बेकारी, गरीबी की कल्पना भी भयङ्कर होगी। यह कहा चुका है कि पूञ्जीपति बिना लाभ की संभावना से कोई काम नहीं करता। माल नष्ट कर देना पसन्द करेगा, पर सस्ता नहीं होने देगा। फिर वह बिना मुनाफा के सब चीज मुफ्त बांटने के लिये क्यों उत्पादन बढ़ायेगा। दान पुण्य की भावना से, जो चीजें मुफ्त बांटी जाती हैं, उनकी एक सीमा होती हैं। यदि ऐसा हो जायगा तब तो वह समाजीकरण ही होगा। इसके अतिरिक्त आज तो जैसे मशीन के आविर्भाव के लिए पूञ्जीवादी राष्ट्र भी तत्पर हैं, वैसे ही समाजवादी राष्ट्र भी तत्पर हैं ही। यदि पूञ्जीवाद में मनुष्य के श्रम की आवश्यकता न रहेगी तो, वही स्थिति समाजवादी राष्ट्रों में भी हो ही सकेगी। फिर समाजवाद में मनुष्य को मशीन के रूपमें बदलने का प्रश्न ही नहीं उठता है। पीछे रजनीश जी ने कहा था कि पूञ्जीवाद ने गुलामी खत्म कर दिया। अब कह रहे हैं कि जब तक मनष्य श्रम की आवश्यकता रह जायगी, तब तक गुलामी नहीं मिटेगी। इस तरह उनके कथन परस्पर विरुद्ध हैं। इसके अतिरिक्त मशीनों में मरम्मत की भी अपेक्षा होती है। मशीन नित्य नहीं है, नष्ट भी हो सकेंगी। मान लिया वह सब काम भी मशीन ही कर लेगी तो व्यवस्थापन ज्ञानवान्, इच्छावान्, क्रियावान् चेतन मनुष्य ही कर सकता है। अतः वैसे स्थिति में चेतन मनुष्यों की आवश्यकता न रहेगी, यह सम्भव भी है।

आत्मा की आवश्यकता तो पूञ्जीपति या गरीब, किसी व्यक्ति विशेष से सम्बन्ध नहीं रखती है। आज कितने ही गैर समाजवादी देशों को भी रोटी, कपड़ा, मकानके सिवा, अगर कोई वस्तु चाहिये, तो धन ही चाहिये। आत्मा की अपेक्षा उनको भी नहीं है। आधुनिक लोग तो ईश्वर, आत्मा, परलोक, पुण्य, अपुण्य की कल्पना को भी परेशानी का ही हेतु मानते हैं। पाप, पुण्य की कल्पना में, पाप से भय, नरक का डर बना रहता है। आत्मा है तो उसको ही नाना प्रकार की चिन्ता होती है। चार्वाक के श्लोक प्रसिद्ध ही हैं।

> "यावज्जीवेत्सुखं जीवेत् ऋणंकृत्वा घृतं पिवेत्।
> भस्मीभूतस्य देहस्य पुनरागमनं कुतः॥"

जब तक जियो, आनन्द से जियो, ऋण करके घृत पियो, शरीर के भस्म होने पर, आने जाने की कल्पना समाप्त। कुरान, पुरान, वेद, वायबिल, गिरजा, गुरु द्वारा, मन्दिर, मसजिद, राम, रहीम, ईश्वर, गाड, अल्लाह कुछ हो तो ही भय है, डर है। वह नहीं तो काहे को डर। यह चार्वाक का मत समाजवादियों से ज्यादा पूञ्जीवादियों में फैला है। आज कल तो हत्वा, हत्वा सुरांपिवेत्, की ही बात चलती है। मारो, छीनों, शराब पियो। परलोक नहीं ईश्वर नहीं, फिर क्यों परेशान हों। इतना ही क्यों? जैन, बौद्ध समाजवादी नहीं हैं, पर वे भी ईश्वर नहीं मानते हैं। कोई प्रत्यक्षानुमानसे अतिरिक्त,शास्त्र भी नहीं मानते। फिर उनकी आत्मा, उनका धर्म, उनके प्रत्यक्ष एवं अनुमान पर ही निर्भर हैं।

कहा जाता है कि, रूस में प्रत्येक बच्चे के मन में इसके पहले कि बुद्धि पैदा हो, समाजवाद की गलत सही धारणाओं को ठूसने का प्रयत्न चल रहा है, 'ताकि जब उसमें विचार पैदा हो तब तक उसकी आत्मा जंजीरों में कस गयी हो। रूस में जाकर छोटे से छोटे बच्चे से पूछो कि ईश्वर है! वह कहेगा नहीं है। ईश्वर हुआ करता था, अब नहीं है। बच्चों को सिखाया जाता है कि कोई आत्मा नहीं है। ईश्वर नहीं, धर्म नहीं। कोई जीवन का बड़ा मूल्य नहीं है। जीवन का एक ही मूल्य है कि ठीक मकान, भोजन, कपड़ा मिल जाय' [पृ.३४] परन्तु यह सबमात्र पिष्टपेषण ही है। यह कहा जा चुका है कि बहुत से ऐसे दार्शनिक जैन, बौद्ध आदि हैं जो ईश्वर नहीं मानते बौद्ध, जैन तो अनेक प्रकार की मूर्खताओं में से, किसी जगत्कारण ईश्वर को भी एक मूर्खता मानते हैं। बौद्ध लोग आत्मा नहीं मानते हैं। नैरात्म-वाद उनका मुख्य सिद्धान्त है। धर्म भी वेदादि सम्बन्ध शून्य उनके अपने-अपने हैं। फिर समाजवादियों को ही इसके लिये क्या कहा जाय? वस्तुतः समाज-वाद विरोधी लोगों ने बहुत सी मिथ्या बातें भी प्रचारित किया है। रूस में ईश्वर मानने में कोई प्रतिबन्ध नहीं है। रूस में महाभारत, रामायण का अनुवाद हुआ है। आज ही नहीं, हिटलर के साथ जब रूस का युद्ध चल रहा था, उस समय भी मास्को में १२ हजार रूसियों ने इकट्ठे होकर रूस की

विजय के लिये ईश्वर प्रार्थना की थी। उस समय भी हिटलर जैसी महाशक्ति को हराने में रूस समर्थ हो सकता था।

योग्यता की परख एवं समान अवसर

कहा जाता है कि, 'रूस में दो वर्ण हैं। एक सत्ताधारियों या व्यवस्थापकों का और एक मैनेज्ड या व्यवस्थापितों का। रूस में वर्ग मिटे नहीं, सिर्फ नकाब बदल गयी है। रूस में कुछ लोग हैं जो व्यवस्था कर रहे हैं और कुछ है जो व्यवस्थित किये जा रहे हैं और दो वर्ग स्पष्ट बंध गये हैं। वह वर्ग ही नहीं है, वर्ण हैं। वर्ग और वर्ण में थोड़ा सा फर्क होता है। वर्ग तरल होता है। एक वर्ग से दूसरे वर्ग में जाना आसान होता है। वर्ण निश्चित होता है, ठोस होता है। लचीला या तरल नही होता। जैसे कि शूद्र वर्ण है, वर्ग नहीं। शूद्र कितनी भी कोशिश करे, ब्राह्मण नही हो सकता, ब्राह्मण वर्ण है वर्ग नहीं। उसका घेरा निश्चित है, बंधा है। रूस में एक नयी वर्ण व्यव-पैदा हो रही है, जैसे हिन्दुस्तान में कभी पैदा हुयी थी। रूस में वह व्यवस्था स्थापक और व्यवस्थित के रूप में चल रहा है। उसको तोड़ने का कोई साधन नही है। जो व्यवस्थापक है, वह क्यों नीचे के लोगोंको प्रवेश करने दे? उसके अपने हित हैं, अपने स्वार्थ हैं।' (पृ. ३४)

उक्त कथन एकांगी और अतिशयोक्ति पूर्ण है। व्यवस्थापक व्यवस्थित का यदि वैसा भेद रूस में होता, तो रूसी सेना हिटलर को परास्त करने में सफल न होती। जिस अजेय शक्ति ने दुनिया में हड़कम्प मचा दिया, वह हिटलर भी नैपोलियन के समान ही रूस में परास्त हुआ था। यदि व्यवस्थित वर्ग अपने को व्यवस्थापक वर्ग का गुलाम समझता तो व्यवस्थापकों के विजय के लिये वह वीरता से अपना खून न बहाता। भाड़े के सैनिक या गुलाम सेना कभी भी युद्ध में सफल नही हो सकती थी। यदि उक्त भेद होता तो रूस के वैज्ञानिक विज्ञान में इतनी तरक्की नहीं कर सकते थे। ऐसा उत्साह गुलामों में नहीं हो सकता था। रूस में भी

योग्यता की परख होती है। इसके बिना अच्छे योद्धा, अच्छे वैज्ञानिक, अच्छे नीतिज्ञ वहा नहीं पैदा हो सकते थे। रूस ने कुछ भी नहीं प्रगति की, यह तो सत्य का अपलाप करना है। जो भी योग्य होता है, वहीं व्यवस्थापक हो जाता है। अयोग्य व्यवस्थापक को भी निकाल बाहर किया जाता है। ख़ुश्चेव, बुलगानिन, आदि व्यवस्थापक ही तो थे। आज उन्हें कौन जानता है? आपके अनुसार पचास व्यक्तियों के हाथमें ही रूसी शासन पचासों वर्ष से चल रहा है। परन्तु ये हजारों वैज्ञानिक, लाखों विशेषज्ञ, लाखों सैनिक अफसर, सब व्यवस्थित है, शुद्र तुल्य है, यह कहना सर्वथा असत्य ही है।

वर्ग एवं वर्णका भेद भी आधा लोगोंके लिये अमान्य ही है। आर्य समाजके लोग कर्मणा वर्ण मानते है। पाश्चात्य लोग भी ऐसा मानते हैं। बौद्ध लोग भी मनुष्यों में वर्ण नहीं मानते हैं। जो भी भेद हैं, वह कर्म के ही आंधार पर है। वैदिक सनातन धर्मी जन्मना वर्ण व्यवस्था मानते हैं, परन्त वह वस्तु स्थिति हैं। मानने न मानने पर निर्भर नहीं है। शूद्र ब्राह्मण नहीं हो सकता। इस वस्तु स्थिति पर विश्वास के लिये वेदादि शास्त्र का प्रमाण मानना अनिवार्य है। जब आप शास्त्रों में विश्वास नहीं करते तो वर्ण कल्पना का आधार भी क्या है? फिर तात्विक वर्ण किसीके बनायेसे कैसे बन सकते हैं? जो बनता है, वह मिट भी जाता हैं।

कहा जाता है कि, "रूस में चीन में समानता है, इस मूलमें मत पड़िये। स्टालिन के जो अधिकार थे वह क्या एक गरीब मजदूर को भी था? माओ को जो अधिकार चीनमें है, वह अन्यको नही है। एक चपरासीमें कोई समान अधिकार की बात नहीं। आज समान हुवा ही नहीं जा सकता, जब तक सम्पत्ति अतिरिक्त नहीं हो जाती, जब तक सम्पत्ति इतनी नहीं हो जाती, कि सम्पत्ति का स्वामित्व खोखला मालूम पड़े, तब तक दुनिया मे सिर्फ वर्ग बदलेंगे, वर्ग मिटेगें, वर्ग विहीन समाज कभी पैदा न होगा। पृ. ३४

उपर्युक्त कथन निःसार है। समाज वाद में समान अवसर का नाम ही साम्यवाद है। सबकी बुद्धि, शक्ति, क्षमता, शरीर या भोजन में समता लाने

की बात अनभिज्ञ लोग ही करते हैं। संसार में कोई-कोई तीन-तीन मोटरों को रोक लेते हैं। कोई घर की बकरी को भी नहीं रोक पाते। कोई तीन किलो लड्डू खाकर हजम कर लेता है, कोई थाली में रखे एक लड्डू को भी, एटम बम समझकर छूने से डरता है। कई लोग दो सेर घी पीकर पचा लेते हैं, कोई तोला भर भी घृत पचा नहीं पाता। कोई पांच विषय के आचार्य, कोई मिडिल फेल होते हैं। मोटे, पतले, लम्बे, ठेंगने का भेद तो रहता ही है सम्पत्ति हो जाने पर भी उन-उन अंशों में समानता नहीं आ सकती। सम्पत्ति से भी बुद्धि एवं शक्ति में समानता नहीं आ सकती है। दुनिया में कोई उदाहरण नहीं है कि व्यक्तियों द्वारा उत्पादित सम्पत्तियाँ बिना मूल्य के मिलती है। हां मिलती हैं—दान के रूप में, वक्सीस के रूप में, पुरस्कार के रूप में। वह भी मूल्य ही है। वहां भी स्वार्थ हैं। वायु, पानी, आकाश, ईश्वर निर्मित है या प्राकृतिक है। उसकी बहुतायत स्वाभाविक हैं। अतः उसकी बिक्री नहीं होती। हां उसकी भी कमी हो जाय, मांग ज्यादा हो जाय तो वह भी बिकने लगते हैं।

आस्तिकों की दृष्टि में सम्पत्ति हो जाने पर भी वर्ण भेद रहता है। देवी भागवत के अनुसार काशी का डोम इतना धनवान था कि राजा हरिश्चन्द्र को खरीद सका था। परन्तु उसकी जाति वही रही, क्यों कि नित्य अनेक समवेत धर्म को ही जाति कहते हैं। जैसे कुत्ते, घोड़े, गधे की जाति नहीं बदलती, वैसे ही ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शुद्र जातियां नहीं बदलती हैं। धर्म शास्त्रों के अनुसार ब्राह्मण की अनेक जन्मोंके अनन्तर जाति बदलती है। ब्राह्मण से शूद्रा में कन्या उत्पन्न हो और वह भी ब्राह्मण से ही व्याही जाय, उससे उत्पन्न कन्या भी ब्राह्मण से ही व्याही जाय, उससे उत्पन्न कन्या भी ब्राह्मण से ही व्याही जाय, तो इस क्रम से सातवीं पीढ़ी की कन्या शुद्ध ब्राह्मणी होती है। ऐसे ही ब्राह्मण शूद्र की कन्या से विवाह करे, उससे उत्पन्न पुत्र, पुनः शूद्र कन्या से ही विवाह करे, तो इस क्रम से सातवीं पीढ़ी में उत्पन्न सन्तान शूद्र हो जाता है।

"शूद्रो ब्राह्मणतामेति ब्राह्मण श्चैति शूद्रताम् ॥'

अतएव, 'जब तक सम्पत्ति सार्थक है, वर्ग विहीन समाज पैदा नहीं हो सकता। जब सम्पत्ति व्यर्थ हो जायगी तभी वर्ग विहीन समाज बनेगा; जिनके हाथ में सम्पत्ति आयेगी, वे नया वर्ग बना लेंगे। अतः बजाय वर्ण के वर्ग बेहतर है, क्योंकि वर्ण सुस्थिर हो जाता है, कठोर हो जाता है, गतिमयता खो जाती है, कम से कम वर्ग में गतिमयता रहती है। एक गरीब, अमीर हो सकता है, एक अमीर गरीब हो सकता है। गरीब और अमीरका है वर्ण नहीं' (पृ.३५). परन्तु यह भी ठीक नहीं जिनकी दृष्टिमें वर्ण कल्पित है, बनावटी है। उनके यहां उसमें रद्दोबदल होता ही है। पर जहां वस्तुस्थिति है वहाँ रद्दोबदल नहीं होता।

व्यवहार में तो एक ब्राह्मण, मुसलमान बन जानेपर, ब्राह्मण नहीं रह जाता है। वस्तु स्थिति के अनुसार वह एक पतित ब्राह्मण ही होगा, क्योंकि जाति का सम्बन्ध देह से होता है। जब तक देह रहता हैं, जाति बदलती नही ईसायी, मुसलमान आदि के यहां जाती नहीं, धर्म के सम्बन्ध से ही ईसायी मुसलमान आदि का व्यवहार होता है। अतएव चीनी, जापानी, अरब, इङ्गलिश, फ्रैन्च सभी ईसायी या मुसलमान हो सकते हैं। अमीर, गरीब जाति या वर्ण इसीलिये नहीं कहे जाते कि उस आधार पर उनके बिवाह एवं धर्मकृत्य नहीं होते। उसमें अनेक वर्ण की ही प्रधानता रहती है। अमीर ब्राह्मण, अमीर वैश्य, या क्षत्रिय के परस्पर विवाह नही होते हैं। अमीर, गरीव वैश्य वैश्य में शादी हो जाती है। अतः यह कहना भी निराधार है कि "रूस में वर्णों का जन्म हो रहा है। क्योंकि व्यवस्थापक व्यवस्थापितों में बीच में इतनी बड़ी दरार है जिसको पार करना असम्भव होता जा रहा है। (पृ०३५) उक्त कथन व्यभिचरित है। व्यवस्थाप्य व्यवस्थापक भाव तो समान वर्ण में भी सम्भव होता है। ब्राह्मण, ब्राह्मणों में भी व्यवस्थाप्य व्यवस्थापक भाव चलता ही है।

श्री रजनीश जी कहते हैं कि सारे लोग समान नहीं हो सकते। अतएव, समान होने की हक़ की बात नहीं, विकास का सामान अवसर सबको मिलना चाहिये। प्रत्येक व्यक्ति को असमान होने की समान सुविधा होनी

चाहिये। हर आदमी जो होना चाहता है, उसे होनेका समान हक होना चाहिये। लेकिन एक हक पूञ्जी पैदा करनेका हक भी है। एक हक ज्ञान अर्जित करने का हक भी है। सारी दुनियाके लोग आइंस्टीन नहीं हो सकते, न सारी दुनिया के लोग बुद्ध या महावीर हो सकते है। कोई एक व्यक्ति जन्म जात आइस्टीन होने की क्षमता लेकर पैदा होता है। धन पैदा करने के सम्बन्ध में कभी यह नहीं सोचा कि धन पैदा करने की क्षमता भी उतनी जन्मजात है, जितनी की कविता पैदा करने की, जितनी गणित की, जितनी दर्शन की, जितनी धर्म की, धन पैदा करने की क्षमता जन्मजात है। कोई फोर्ड पैदा नहीं किया जाता, वह पैदा होता है। कुछे लोग धन पैदा करने की प्रतिभा लेकर पैदा होते हैं और कुछ लोग धन पैदा करने की प्रतिभा लेकर पैदा नहीं होते, यह तथ्य है और अगर उन लोगों को, जो धन पैदा करने की प्रतिभा लेकर पैदा होते हैं, धन पैदा करने से रोका जाय, तो दुनिया दीन बनेगी, दरिद्र बनेगी समृद्ध नहीं बन सकती।

यह ऐसा ही है, जैसे कल हम कहने लगे कि सारे लोगों को समान कविता करनी पड़ेगी। कोई जरूरत नहीं कि कालिदास, शेक्सपियर ऊपर चढकर बैंठ जायं, यह बरदास्त के बाहर है। हम वर्ग विहीन कविता का समाज बनायेगें। हर आदमी को एक सी कविता बनानी पड़ेगी। तुकबन्दी हो सकती है। शेक्स पीयर और कालीदास पैदा नहीं होंगे। रंग कोई भी पोत सकता है पोस्टर पर, लेकिन पिकासो या वानगांग जन्म जात पैदा होते है।" (पृ० ३५-३६) यह सब भी निःसार है। समाजवाद ऐसी समानता पर कभी भी विश्वास नहीं करता। उसके अनुसार भी योग्यता का महत्व होता है। तदनुसार योग्य व्यक्तियों की व्यवस्था में भी भेद रहता है। तभी तो ऊंचे वैज्ञानिकों के रहन सहन, भोजन मकान, यात्रा की व्यवस्था दूसरे ढंग से रहती है। सामान्य कारीगरों की व्यवस्था पृथक् ढंग से रहती है। हां उसका यह दृष्टिकोण अवश्य है कि, विज्ञान के विकास द्वारा हर एक कार्य सुन्दर एवं सुन्दर बना दिये जाय, जिससे किसी को किसी भी कार्य को करने में झिझक या कठिनाई न होगी। उस स्थिति

में सवको स्वेच्छानुसार शिक्षा पाने, काम चुनने और उसका पूरा फल पाने का समान अवसर मिलेगा। सभी अपने संस्कार एवं आदतों, या योग्यता के अनुसार काम अपना सकते हैं।

संचालकों, व्यवस्थापकों या विशेषज्ञों द्वारा भी योग्यता की परीक्षा हो सकती है। अभी भी माता, पिता या अध्यापक बालकों की रुचि, प्रवृत्ति एवं योग्यता के अनुसार उन, उन विषयों के अध्ययन में उन्हें लगाते हैं। फिर भी शक्ति एवं योग्यता कूटस्थ नित्य, शाश्वत नहीं है। वह बनती है, पैदा की जाती है। हममें से कोई भी उसे पैदा कर सकता है। गीता के अनुसार ज्ञान-ज्ञेय, ज्ञान गम्य सवके ही हृदय में रहता है।

"ज्ञानं ज्ञेयं ज्ञानगम्यं हृदि सर्वस्य विष्ठितम्"

हां, उसके प्राकट्य करने में, प्रयत्न में तारतम्य और शीघ्रता या विलंब हो सकता है। देह भिन्न आत्मा मानने वालों को तो अनेक जन्मों के प्रयत्न भी काम में आते हैं। देहात्मवादी के यहां भी पिता, पितामह, आदि के संस्कार उन्नति के काम आते हैं।

प्रयास से असाध्य भी साध्य

व्रह्म सूत्र के अनुसार जीव में सब प्रकार की शक्तियां रहती है। ईश्वर के अभिध्यान से उनका प्राकट्य हो सकता है। जो जैसे लोगों के सन्निधान में रहता है, जैसे लोगों का संग या सेवन करता हैं, जैसा बनना चाहता है, वह वैसाही हो जाता है। राजनीतिज्ञ, सन्त, दार्शनिक, कवि, कलाकार, संगीतज्ञ, योद्धा सव कुछ मनुष्य बन सकता है।

"यादृशैः सन्निविशते यादृशांश्चोपसेवते।
यादृगिच्छेच्चभवितु ँ तादृग्भवति पूरुषः ॥" (महाभारत)

कुछ हेर फेर से महाभारत और योग वासिष्ठ में एक श्लोक आता है जिसका भी यही अर्थ है कि जो, जो चाहता हैं जिस अर्थ, जिस स्थिति जिस

उन्नति को चाहता है और उसके लिये उचित प्रयास करता है, वह उसे अवश्य प्राप्त करता है, अगर थक कर या आधी दूर से लौट नहीं पड़ता तो मनुष्य परमात्मा को प्राप्त कर सकता है। परमेश्वर से तादात्म्य प्राप्त कर तद्रूप हो सकता है। विश्व का स्रष्टा बन सकता है। चन्द्र, सूर्य का निर्माता हो सकता है। ब्रह्म विद्वरिष्ठ बन सकता है। भगवान को अपने वश में कर सकता है। फिर बुद्ध, महावीर बनना तो कोई असंभव बात है ही नहीं।

"यो यमर्थं कामयते यदर्थं यततेऽपिच।
स तमर्थमवाप्नोति न चेच्छ्रान्तो निवर्तते॥"

अथवा, न चेदर्धान्निवर्तते। मानसकार ने भी कहा है—

जेहिकर जेहि पर सत्य सनेहू।
सो तेहि मिलत न कछु सन्देहू॥

हां, परन्तु सत्य, स्नेह, सुस्थिर, अडिग, इच्छा होनी चाहिये। गिरिजा पार्वती के समान।

"जन्म कोटि लगि रगड़ हमारी।
वरौं शम्भु नत, रहौं कुमारी॥"

किसी तरह सप्तर्षियों के कहने पर भी, विष्णु जैसे लोकोत्तर दूल्हा मिलने का प्रलोभन मिलने पर भी, बुद्धि डगमगाये नहीं और ठीक लक्ष्य प्राप्ति पर्यन्त ठीक प्रयत्न चलता रहे, तो कुछ भी अप्राप्य नहीं है।

आज भी लोग ऊंचे आदर्शों को सामने रखकर प्रयत्न करते है तो सफल होते हैं। कालीदास को आदर्श मानकर कविता के लिये प्रयास करने वाले किरात, माघ, नैषध आदि निर्माण करने में सफल हुये हैं। कई वार तो आदर्श से भी ऊंची स्थिति प्राप्त कर ली जा सकती है। बुद्ध और महावीर भी एक एक नहीं हुये हैं। अनेकों बुद्ध, अनेकों अर्हन् एक से एक श्रेष्ठ, समय समय पर होते ही रहते हैं। आईस्टीन और फोर्ड भी एक से एक बढ़ चढ़ कर होते ही रहते हैं।

कोई भी प्रतिभा नित्य नहीं है। प्रतिभा बनायी जाती है। अतः किसी ढंग की प्रतिभा असाध्य नहीं होती है। हां एक जन्म में न सही, तो सहस्रों

जन्म में सही। शास्त्रों के अनुसार विश्व रचयिता विधाता भी नये नये बना करते हैं,। फिर अमुक ही धन पैदा कर सकते हैं, धनवान् हो सकते हैं, सब नहीं, यह कहना सर्वथा निराधार है। हाँ जिस समय जो जिस बिषय में उत्कृष्ट हों, उसका आदर किया जाता है, उसे आदर्श बनाया जाता है। इतिहास का प्रयोजन यही हैं कि ऊंचे आदर्शों को सामने रखकर सबक सीखो, आगे बढ़ो। वशिष्ठ, विश्वामित्र, पराशर, व्यास, शुक आदि एक से एक अद्‌भुत व्यक्तित्व वाले हुये हैं, फिर भी वैसा दूसरा नहीं हो सकता, यह कहना अनुचित हैं और साधक का तेजोवध करना है, निरस्त साम्यातिशय एक मात्र परमेश्वर होता है।

कहा जाता है कि, 'सोसलिज्म मनुष्य जाति की जन्मजात भिन्नता को स्वीकार नहीं करता है यह बड़ी खतरनाक बात है। एक, एक व्यक्ति अपनी तरह का उत्पन्न होता है। सच तो यह है कि हर आदमी दूसरी तरह का अनूठा, अद्वितीय, यूनिक, बेजोड़ होता है। जिससे किसी दूसरे का मुकाबिला नहीं किया जा सकता है। इस दुनियां में सब आदमी एक जैसा नहीं पैदा होते, कभी पैदा नहीं हुये। इसी लिये तो प्रत्येक आदमी के पास आत्मा है। आत्मा का मतलब भिन्न होने की क्षमता। श्मशानों में समानता हो सकती है। फियेट कारें एक लाख बिल्कुल एक जैसी हो सकती हैं, लेकिन दो आदमी एक जैसे नहीं हो सकते। फियेट कार के पास आत्मा नही हैं, सिर्फ यन्त्र हैं। यन्त्र समान हो सकते हैं। अगर आदमियों को समान करने की जबरदस्ती की गयी तो आदमी यन्त्र के तल पर ही समान हो सकता है। उससे ऊपर के तल पर समान नहीं हो सकता। या तो आदमी को यन्त्र बनाओ, वह समान हो जायगा। आदमी जितना ऊपर चढ़ेगा, असमान हो जायगा, जितना नीचे उतरेगा, उतना समान हो जायगा। नींद के मामले में हम करीब करीब समान हैं। भूख में, छाया और धूप में हम समान हैं। मकान, भोजन, कपड़ा, स्त्री सबको चाहिये। इन मामलों में हम पशुओं से भी समान हैं। लेकिन हम जैसे ऊपर उठते हैं— एक बुद्ध, एक महावीर, एक कालीदास, एक आइस्टीन, एक बर्टेन्ड रसेल से असमानता शुरू हो जाती

है। जितनी ऊपर जाती है आत्मा, उतनी असमान होने लगती है। जितनी ऊपर जाती है आत्मा, उतनी सिर्फ अकेली रह जाती है। बुद्ध, महावीर जैसा आदमी अकेला रह जाता है, जो करोड़ करोड़ वर्षों तक दूसरा आदमी उस जैसा नहीं पैदा होगा, लेकिन हम सबको भीड़ की ईर्ष्या कह सकती है कि अब हम नहीं होने देगें। हम सबको समान रखेगें, अगर एक भी समानता का पागलपन पैदा हो जाय, जो कि सारी दुनिया में पैदा हो रहा है, तो हम मनुष्य की ऊंचाई को नष्ट कर देगें। सबकी लेवलिंग कर देगें जमीन पर। सबके पास मकान, सबके पास कपड़े, सबके पास औरतें सब काम करें, खाना खायें, सिनेमा देखें, मनोरञ्जन करें। इस तल पर सबका जीवन समान हो सकता है, लेकिन समान अवसर सबको मिलना चाहिये। समाजवाद समान अवसर पर पहला हमला बोल देता है। वह सम्पत्ति पैदा करने वाले को काट देता है, छाँट देता है। फिर उसके बाद वह जो विचार में असमान है, उनको छांटने की कोशिश में लग जाता है। वह कहता है कि हम समान करके रहेंगे। हम असमान विचार भी पैदा नहीं करने देगें।

आश्चर्य है कि पचास साल में रूस में कोई बड़ा विवाद नहीं हुवा। जब सच है कि मनुष्य की जिन्दगी में एक वार भी विचार ऐसा नहीं होता जिस पर विवाद न हो सके। सब विचार अपनी अपनी जगह से देखे जाते है और दूसरा जरूरी नहीं है कि राजी हों। श्रेष्ठतम विचारों का विरोध भी निश्चित है। जितनी बुद्धिमत्ता बढ़ती है, उतना विरोध भी बढ़ता है। लेकिन रूस में ऐसा कोई विचार, कोई आन्दोलन, कोई विरोध, कोईबगावत, कोई विद्रोह, कोई भी नहीं। वे कहते हैं, समाजवादी व्यवस्था में लगे हैं, अभी विद्रोह नहीं कर सकते। अभी स्वतन्त्र चिंतन की सुविधा नहीं है हमारे पास। फिर जब सब ठीक हो जायेगा, तब हम छोड़ेंगे स्वतन्त्र चिंतन को। लेकिन ध्यान रहे, अगर पचास साल तक लोगों के हाथ पैर बांध दिये जाय, और पचास वर्ष के बाद उनसे कहा जाय कि ठीक है, तुम मुक्त हो, दौड़ो चढ़ो पहाढ़। लेकिन पहाड़ तो बहुत दूर है। घर के सामने वह निकलकर चलना पावे यह भी असंभव है। चिन्तन भी रुक जाय तो बन्द होना शुरू हो

जाता हैं। चिन्तन को सुविधा न हो, बगावतको सुविधा न हो' तो मरना शुरू हो जाता है।" (पृ० ३६-३७)

पूर्ण समानता असंभव

उक्त विचार रमणीय भले ही हों परन्तु वे हैं एकदम निःसार। सोसलिज्म क्या, दुनियांमें कोई भी प्राणी ऐसा नहीं है जो मनुष्य ही, क्या पशु पक्षियोंकी भी जन्मजात भिन्नता को नहीं मानता। इतना ही क्यों, जड़ वस्तुओं में भी भिन्नता है। एक पत्थर, एक वृक्ष भी दूसरे पत्थर या वृक्ष से बिलकुल समान नहीं होता हैं। लोहे, लोहे में, हीरे, हीरे में सोने सोने में; नीलम् नीलम् में, पुखराज, पुखराज में भी भेद, कीमतका भेद है। दो आम, दो पान, दो धान भी समान नहीं होते। दो भेड़ समान नहीं। वैशेषिकतो विशेष नाम का एक पदार्थ ही पृथक् मानते हैं, जिसके आधार पर एक-एक परमाणु भी भिन्न हैं। परन्तु इतने मात्र से समानता का निराकरण नहीं होता है। दुनियामें साधर्म्य वैधर्म्य का व्यवहार सर्वत्र देखा जाता है। यन्त्रों में भी सर्वथा समानता नहीं होती। तभी तो एक ही कम्पनी का कोई यन्त्र ठीक चलता है, किसी में गड़बड़ी हो जाती है। हर एक वस्तु किसी दृष्टि से एक दूसरे के असमान होती है किसी दृष्टि से समान होती है। पदार्थों में पदार्थ रूप से समानता भी है। द्रव्यत्व, गुणत्व, कर्मत्वादि रूपसे वैधर्म्य, असमानता भी रहती है। आत्माओंमें भी आत्मत्वेन रूपेण समानता होने पर इच्छा, द्वेष, सुख, दुःखादि गुणों की न्यूनता, अधिकता एवं विशेष पदार्थसे, सम्बन्धसे, सब में विषमता भी होती है जो धर्म नित्य होकर अनेकों में समवाय सम्बन्ध से रहता है, वही सामान्य या जाति नाम से व्यवहृत होता है। व्यक्तियों में किन्हीं अंशों में विषमता रहते हुये, किन्हीं अंशों में समानता भी रहती है। उसी अनुगत एक रूप धर्म को सामान्य या जाति कहते हैं।

आश्चर्य है कि रजनीश, जिन महावीर और बुद्ध की चर्चा बार बार करते हैं, उन्होंने ब्राह्मण क्षत्रियादि जातियोंका भेद नहीं माना। उनकी दृष्टि

में सब मनुष्य समान ही है। परन्तु वे व्यक्ति व्यक्ति से महान् भेद मानते है। वैदिक दृष्टि में तो जैसे आम्र, व्रीहि (धान), पान में आम्रत्व, व्रीहित्व ताम्बूलत्व दृष्टि से एक होने पर भी अवान्तर उनके अनेक भेद होते हैं, वही उनकी अवान्तर जातियां हैं। उसी तरह मनुष्यत्वेन रूपेण समानता रहने पर भी ब्राह्मणत्व, क्षत्रियत्वादि उनकी अवान्तर जातियां काल्पनिक नहीं, किन्तु वास्तविक ही हैं।

यदि ब्राह्मण, शूद्र आदि वर्ण अवास्तविक एवं काल्पनिक ही हैं, तब फिर वर्ण निश्चित एंव ठोस क्यों? ज्यादा से ज्यादा यही कहा जा सकता है कि वर्ण की कल्पना पुरानी है, बद्धमूल हो गयी है। पर भ्रान्ति कितनी भी पुरानी हो, उसका मिटना या बदलना असंभव नहीं होता। फिर शूद्र का ब्राह्मण होना, ब्राह्मण का शूद्र होना क्या कठिन है? इसीलिये महावीर या बुद्ध ने ऐसी कोई चीज ब्राह्मण या शूद्र नहीं माना था। आपके अनुसार हिन्दुस्तान में वर्ण व्यवस्था कभी पैदा हुई थी। फिर उसे तोड़ने का कोई उपाय नहीं, यह कहना कहां तक संगत है। यदि रूसी व्यवस्थापकों और व्यवस्थापितों की वर्ण व्यवस्था के तोड़ने का कोई उपाय नहीं है, तो ब्राह्मणादि वर्ण व्यवस्था को तोड़ने का प्रयत्न, जैनों, बौद्धों द्वारा कैसे संगत होता? वस्तु स्थिति तो यह है कि वेदादि शास्त्र प्रामाण्य वादियों के लिये ही ब्राह्मणादि वर्ण व्यवस्था है। वस्तु स्थिति होते हुये भी अकिञ्चित्कर है। जैसे ईश्वर प्रमाण सिद्ध वस्तुस्थिति है, फिर भी बुद्ध, महावीर के लिये अमान्य ही है।

यदि एक गरीब, अमीर हो सकता है और एक अमीर गरीब हो सकता है, तो यह भी संभव होता ही है कि राष्ट्रपति, प्राइममिनिस्टर साधारण आदमी हो जाता है। साधारण आदमी राष्ट्रपतिहो जाता है, प्राइममिनिस्टर हो जाता है। यह स्थिति सभी राष्ट्रों में देखी जाती है। रूस में भी कभी ख्रुश्चेव ही ख्रुश्चेव अखवारों में दिखायी देता था। आज उसका पता भी नहीं है। उसके पहले ख्रुश्चेव साधारण ही आदमी था। अब भी वह साधारण आदमी हो गया। स्टालिन की लड़की श्वेतलाना आज क्या रह

गयी है ? सारे लोग समान ही है ? यह समाजवाद की धारणा नहीं, यह तो मुख्य धारणा बौद्ध, जैनों की है। आपके अनुसार प्रत्येक व्यक्ति को असमान होने की सुविधा होनी चाहिये। हर आदमी जो होना चाहता है, उसे वैसा होने का हक चाहिये। तब प्रत्येक व्यक्ति में पून्जी पैदा करने का ज्ञान अर्जित करसे का हक भी आ ही जाता है। फिर सारी दुनियां के लोग आइस्टीन बनना चाहें, महावीर, बुद्ध बनना चाहें तो उस पर भी प्रतिबन्ध क्यों ? फिर सारी दुनियां के लोग क्यों आइस्टीन नहीं हो सकते, क्यों बुद्ध, महावीर नहीं हो सकते ?

अमरीकी संविधान के अनुसार वहाँ का कोई भी नागरिक राष्ट्रपति हो सकता है। पर इसका इतना ही अर्थ हैं कि राष्ट्रपति की योग्यता का हो, और राष्ट्र के बहुमत का भागी हो, वह किसी भी जाति का हो, राष्ट्रपति हो जायगा। उसमें जाति भेद, वर्ग भेद बाधक न होगा। भारतीय वैदिक वाङ्मय के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति जो चाहे वह हो सकता है। राष्ट्रपति ही क्यो, सर्वोत्कृष्ट ब्रह्म के साथ तादात्म्य या उसे अपने वश में कर सकता है। पर इसके लिये भी योग्यता तो अपेक्षित है ही। वह जितने दिनों में प्राप्त हो सके। परन्तु न चेच्छ्रान्तो निवर्त्तते, न चेदर्थान्निवर्तते, की शर्त तो रहेगी ही।

वस्तुतः निम्नस्तरीय समानता का कोई भी महत्व नहीं। आंख वालों को अन्धा बनाकर, सबको बराबर बनाना, किसी सनकी शासन के लिये असंभव नहीं। परन्तु अन्धो को आंख देकर सभी को समान रूप से आंख वाला बनाना कठिन होता ही है। उसी तरह सबको बलवान, बुद्धिमान, ब्रह्मविद्वरिष्ठ, बनाकर ब्राह्मी स्थिति में पहुंचा कर बराबर बनाना, बहुत अच्छी बात है और यह असंभव भी नही है। वैसा प्रयत्न अनधिकार चेष्टा भी नहीं है।

प्रतिभा का समाज के हित में उपयोग

धन पैदा करने कीं प्रतिभा का उपयोग गरीबों की, गरीवी दूर करने

में हो तब तो, ठीक ही है। परन्तु यदि उस प्रतिभा के द्वारा राष्ट्र की अधिकांश भूमि, सम्पत्ति कल कारखाने, उद्योग मुट्ठी भर प्रतिभा वालों के ही हाथ में चला जाय, तो राष्ट्र में बेकारी, बेरोजगारी बढ़ेगी तब तो वह प्रतिभा गरीबी बढ़ाने के ही काम में आयेगी, गरीबी मिटाने के काम में नही। अन्त में वह प्रतिभा, प्रतिभा वाले के काम में ही गतिरोध पैदा करके, उसके भी विनाशका हेतु बनेगी। अतएव समाजवादी उस प्रतिभा का उपयोग समाज के लिये करना चाहेगा। धर्म नियन्त्रित, शासन तन्त्रवादी के अनुसार उस प्रतिभा को धन पैदा करनेकी पूरी छूट है। परन्तु उसे आर्थिक असन्तुलन दूर करने का भी प्रयत्न करना पड़ेगा, जिससे ऐसा न हो कि कुछ घरों में लाखों कम्बल सड़ते रहें, पर कुछ लोगों को, पूस माघ का जाड़ा काटने को काला कम्बल भी न मिले। कुछ घरों में हजारों सन्तरे सड़ते रहें, किसी को इलाज के लिये एक सन्तरे की फांक भी न मिले, कुछ लोगों के पास लाखों एकड़ खेत बरबाद होते रहे, किसी को पांच एकड़ खेती करने के लिये भी न मिले।

यह कहना भी ठीक नहीं है कि, आत्मा का मतलब भिन्न होने की क्षमता है। श्मशानों में समानता हो सकती है, क्यों कि भिन्न होनेकी क्षमता तो, आत्म भिन्न जड़ पदार्थों में होती है। उच्चस्तरीय ब्राह्मी स्थिति में भी समानता स्पृहणीय ही है—

"निर्दोषं हि समं ब्रह्म, (गीता) अमृतस्य पुत्राः"

इस वैदिक उपदेश के अनुसार आत्मा की दृष्टि से समानता, भ्रातृता, स्वतन्त्रताका घोष अनुचित नहीं, यह पीछे कहा जा चुका है, अतएव समानता, स्वतन्त्रता परस्पर विरोधी नहीं।

समाजवाद स्वतंत्रता का विरोधी नहीं

यह कहना भी गलत है कि समाजवाद फ्रीडम का विरोधी है। रूसी समाजवाद ने हिटलर जैसी महाशक्ति को परास्त करके अपनी स्वतन्त्रता की

रक्षा की थी। महती स्वतन्त्रता की प्राप्ति के लिये कुछ नियन्त्रण मानना सबके ही लिये अनिवार्य है। उन्नति के लिये जितनी स्वतन्त्रता अपेक्षित है, उससे अधिक नियन्त्रित होना आवश्यक हैं। डिसिप्लिन बिना कोई राष्ट्र कोई समाज, कोई सेना कभी सफल नहीं हो सकती। यह चर्चा भी निरर्थक है कि पहले समानता चाहिए। समानता के लिये स्वतन्त्रता की हत्या करनी पड़ेगी पहला मूल्य किसका समानता का, या स्वतन्त्रता का. . .अगर स्वतन्त्रता रहे तो समानता के लिये आगे भी संभावना है। लेकिन समानता के लिये अगर स्वतन्त्रता खो दी जाय तो आगे स्वतन्त्रता की कोई संभावना नहीं रह जाती। क्योंकि स्वतन्त्रता एक बार खोकर वापस लाना बहुत कठिन बात है। वह बहुत अवैज्ञानिक हैं। (पृ० ३८) क्योंकि समाजवाद ऐसी निम्नस्तरीय समानता का समर्थक नहीं है वह तो समान अवसर की ही बात करता है। किसी महान उद्देश्य की पूर्ति के लिये स्वतन्त्रता का बलिदान दिया जा सकता है। उन महान उद्देश्यों में महती स्वतन्त्रता भी आ जाती है। मनुष्य की स्वतन्त्रता तो सीमित है ही। महती स्वतन्त्रता प्राप्ति मोक्ष में ही संभव है, जहां मृत्यु, व्याधि, बुढ़ापा दरिद्रता की बेबसी समाप्त हो जाती है।

यह कहना भी निःसार है कि "असमान होने की, भिन्न होने की, विपरीत होने की, विद्रोह करने की, इंकार करने की सारी सुविधा मिल जाने पर ही मनुप्य की आत्मा स्वतन्त्रतासे फलती फूलती है। (पृ.३८) जो आत्मा विकसित होती है, फलती फूलती है, वह आत्मा मरती भी है। वह अमृत नहीं हो सकतीं। विद्रोह करने की, इंकार करने की स्वतन्त्रता कहीं फायदे-मन्द हो सकती हैं और उस फायदेमन्द इन्कार एंव विद्रोह की भी पहले तय्यारी करनी पड़ती है, तभी वह विद्रोह शक्तिशाली होता है। शक्ति प्राप्त करने के लिये भी संगठन, सामञ्जस्य, समन्वय की अपेक्षा होती है। इन सब बातों के लिये इंकार करने और विद्रोह करने की आदतों को दबाना ही पड़ेगा। केवल इनकार करने वाला व्यक्ति कभी भी सफल नहीं होता है। 'संघे शक्तिः कलौ युगे' संगठन की शक्ति ही आज की मुख्य शक्ति होती है। उसके लिये समानता और भ्रातृता की भावना ही प्राण का काम करती

है। एक एक व्यक्ति इन्कार करने वाले पिट जाते हैं। मिलकर इन्कार करने वाले सफल होते हैं। मिलने के लिये समन्वय, सामञ्जस्य अपेक्षित है, विरोध नहीं।

यह ठीक है कि, 'गरीबों की कल्याण की आवाज वाले अपना कल्याण कर लेते है। गरीब अपनी जगह पड़ा रह जाता है। गरीब के कल्याण से उसका कोई सम्बन्ध नहीं होता; लेकिन गरीब साथ जरूर देता है। यह आवाज सुनकर कि हमारे लिये यह सब हो रहा है। कुर्बानी भी कर देता है, गोली भी खा लेता है। समाजवाद के लिये जो शहीद होते हैं वे और हैं। समाजवाद की ताकत जिनके हाथ में आयेगी वे गरीब नहीं"। (पृ० ३९). परन्तु सब धान सत्ताइस सेर नहीं होते। कभी कभी सत्ता भी गरीबों के ही हाथ आती है। हां यह बात हो सकती है कि "सत्ता आते ही वह भी अमीर हो जाय। आज जो गरीब है, गरीबों की तरफदारी करता है, कल शक्ति में पहुंचते ही उसके अपने न्यस्त स्वार्थ होते हे। अब उसे शक्ति में रहना जरूरी हो जाता है। तो वह जिनके ऊपर सीढ़ी बनाकर आया था, उन सीढ़ियों को काटना शुरू करता है, क्योंकि उन्ही सीढ़ियों से कल दूसरा ऊपर आ सकता है।" (पृ० ३९)। परन्तु यह खतरा तो हर पक्ष में ही बना रहता है। तपस्या से राज मिलता है, पर राज से फिर नरक मिलता है क्योंकि "प्रभुता पाइ काहि मद नाहीं" फिर भी इसका यह अर्थ नहीं है कि तपस्या की ही न जाय? राज पाया ही न जाय? किन्तु चाहिये कि तपस्या हो, राज मिले परन्तु मद न आये। इसी लिए संविधान की अपेक्षा होती है, जिससे जो गड़बड़ करे, वही हटाया जा सके।

पूञ्जीवाद में ही गरीबी

यह कहना संगत नहीं है कि "गरीब का कल्याण कभी नहीं हुवा। हां गरीब के कल्याण पर आन्दोलन बहुत हुए, क्रान्तियां हुई। हत्याएं बहुत हुई, और गरीब का कल्याण नहीं हुआ। अतः गरीब का कल्याण चाहने वालों से

संभल कर रहने की जरूरत है कि कोई खतरनाक आदमी आया है, अब यह फिर गरीब की छाती पर पैर रखेगा और गरीब नासमझ है, नासमझ ना होता तो गरीब ही न होता। नासमझ होने की वजह से ही गरीब है। इसलिये वह नया मसीहा उसे मिल जाता हैं। नये नेता मिल जाते हैं, हिटलर भी गरीबों का कल्याण करने के लिये छाती पर चढ़ता है, मुसोलिनी, माओ, स्टालिन भी सारी दुनिया में सब गरीबों का कल्याण करना चाहते हैं। पर उसका कल्याण होता नहीं दिखायी पड़ता"। (पृ० ३९)। क्योंकि पून्जीपति और उनके दलाल भी तो गरीबी दूर करने के लिए ही पून्जीवाद का समर्थन करते हैं। उनके अनुसार भी सम्पत्ति कम होने और लोगों के ज्यादा होने से ही गरीबी होती हैं।

"सम्पत्ति ज्यादा होनी चाहिए। लोगों की उनकी जरूरत से ज्यादा होनी चाहिए। लेकिन जो सम्पत्ति पैदा कर सकते हैं, गरीब उनके खिलाफ उठ खड़ा होता है" (पृ० ३९)। अर्थात सम्पत्ति पैदा करने वालो के मार्ग में कोई बाधक न बने। गरीब चुपचाप गरीबी में मस्त रहे। बोनस, भत्ता, वेतन भी न मांगे। निष्काम भाव से पून्जीपतियों की सेवा करता रहे। उसी में उसकी भलाई है। इसी में उसका लोक परलोक बनेगा। परन्तु गरीब जनता अब इन उपदेशों को सुनने वाली नहीं हैं। यह तो ठीक ही है कि सबसे संभलकर रहना ही चाहिए। अपने हिताहित का विचार करना ही चाहिए परन्तु नासमझी से गरीबी होती है, भाग्य से गरीबी होती हैं, यह कहना भी मक्कारी ही है। हम देखते हैं कई बड़े समझदार, बड़े धार्मिक भी बेकार बेरोजगार होकर गरीबी के शिकार बनते हैं, क्योंकि उत्पादन साधन सब पून्जीपतियों के हाथ में चले गये। व्यापार उनके हाथ में चले गये। लघु उद्योग एवं ग्रामोद्योग बड़े उद्योगपतियों की प्रतियोगितामें ठहर नहीं सकता। बड़ी मशीनों के सामने हाथ करघे कैसे ठहर सकते हैं? शुगर मिल्स, ऑयल मिल्स के सामने पुराने कौल्हू कैसे टिक सकते हैं?

हिटलर, मुसोलिनी, नास्तिक, अनीश्वर वादी नहीं थे। वे ईश्वर वादी थे। संस्कृति की दुहायी देने वाले थे। वे धर्म एवं संस्कृति के नाम पर ही

सब कुछ करते थे, पर क्या यह ईश्वर वाद या अध्यात्मवाद या संस्कृति का परिणाम समझा जाय ? लेकिन स्टालिन का रूस आज भी प्रगति के पथ पर हैं। चाङ्ग काई शेक के चीन की गरीबी आज माओ के चीन में नहीं है। दुनियां के लोग उनकी प्रगति का लोहा मान रहे हैं।

जंगल के पशु खेत चर जाते हैं फिर भी लोग खेती करते हैं। पशुओं से खेत की रक्षा करते हैं। इसी तरह दुनियां में धूर्त होते हैं, मक्कार होते हैं। फिर भी संसार का काम नहीं रुकता है। लोग काम करते हैं। धूर्तों से बचते हैं। सफल होते हैं। कभी कभी धूर्तों के चंगुल में फंस भी जाते हैं। फिर भी सावधान होने की जरूरत है, न कि उनके डर से काम बन्द करने की।

व्यक्ति स्वातन्त्र्य का ढिंढोरा पीटने वाले पून्जीवादी राष्ट्र भी गरीबों के सामने प्रजातन्त्र की बात करते हैं। गरीबों से कहते हैं कि यह तो जनता का राज है, आवो प्रधान मन्त्री बन जावो, नापसन्द सरकार बदल दो, मन-चाही सरकार बना लो। परन्तु क्या किसी गरीब का इतने मात्रसे भला हो सकता है ? यहां भी गरीबों के नाम पर जनता या प्रजा के नाम पर पून्जी-पति ही उनकी छाती पर ताण्डव नृत्य करते हैं।

समाजवाद समाज हित की ओर प्रयत्नशील है

कहा जाता है कि गेलेलियों को फासी पर लटका दिया गया और उसकी खोज से दुनिया लाभान्वित हो रही है। जीसस को सूली पर लटकाया गया पर उसकी खोज आज दुनिया को मनुष्य बनाने का कारण बन रही है। सुकरात को हमने जहर पिला दिया, पर सुकरातने जो कहा, वह अनन्त काल तक मनुष्य की आत्मा के विकास के लिये अनिवार्य रास्ता है"। (पृ० ४०) परन्तु रजनीश को जानना चाहिए कि मार्क्स भी अपने जीवन काल में रोटी के लिये परेशान रहता था। वह चाहता तो किसी पून्जीवादी के आश्रित रहकर सुखी रह सकता था। वह सदा गरीबों, मजदूरों, शोषितों के हित में

काम करता रहा और पूञ्जीवादियों के अत्याचारों का शिकार बनता रहा। परन्तु संसार के करोड़ों नहीं, अरबों मनुष्य उसके सिद्धांत से लाभ उठा रहे हैं। सुख की सांस ले रहे हैं। आज उसके सिद्धांत फलित प्रफुलित हो रहे हैं। पूञ्जीवाद त्रस्त है, और अपने जीवन के दिन गिन रहा है।

भारतीय महर्षियों के द्वारा प्रतिपादित यदि धर्म नियन्त्रित शासन तन्त्र और सन्तुलित धर्म नियन्त्रित अर्थ तन्त्र न अपनाया गया तो निश्चित ही धार्मिक, आध्यात्मिक, राजनीतिक सर्व प्रकार का पतन होगा।

कहा जोता है कि ' जो जितना शोरगुल मचाता है, कल्याण करने का, वह उतना ही आगे दिखायी देने लगता है। जो कल्याण कर रहे हैं वे चुपचाप काम मे लगे हैं। जो वैज्ञानिक अपनी लेबोरेटरी में बैठकर खोज कर रहा है, वह कल्याण कर सकता है। लेकिन वह राजनीतिज्ञ नहीं हैं जो दिल्ली में बैठा है, तिकड़म बाजियां भिड़ा रहा है कि किसकी टाँग खीचे, किसकी कुर्सी उल्टायें, उससे हित होने वाला नहीं है"। (पृ० ४०)

यह ठीक है। परन्तु वह वैज्ञानिक भी श्रमजीवी ही है। बौद्धिक श्रम शारीरिक श्रम से कहीं अधिक होता है। उसके अविष्कार का उपयोग पूञ्जीवाद भी करता है। परमाणु बम, हाइड्रोजन बम का, भण्डार दोनों ही भर रहे हैं। यहाँ सूझ-बूझ वाले विचारक, दिशा देने वाले, अवश्य ही अपेक्षित होते हैं। मार्क्स ने भी यही काम किया था। उसने वर्गवाद का अविष्कार करके वर्ग चेतना उत्पन्न की है। उस विज्ञान का, अविष्कार का उपयोग व्यक्तिगत मुनाफा कमाने के काम में न किया जाय, किन्तु समाज के हितार्थ उसका उपयोग हो। तिकड़म बाजी अलग होती है, राजनीति अलग। राजनीति बिष्णु की पालनी शक्ति होती है। वह मूढ़ ग्राह से नहीं, विवेक से काम लेंती है। अवश्य ही पूञ्जीवाद के समान ही समाजवाद भी उससे दूर है। क्योंकि दोनों ही भौतिक वादी हैं। धर्म नियन्त्रित शासन तन्त्र के विरोधी है तो भी समाजवादी सिद्धांत के तर्क पूञ्जीवादी तर्क से उत्कृष्ट हैं और समाज हित की ओर अधिक प्रयत्नशील हैं।

कहा जाता है कि, 'एक लेबोरेटरी में अनजान आदमी जिसका गरीब

नाम भी नहीं जानता है, उसका बच्चा किस पेश्योर की खोज से बच रहा है। कौन उसकी टी० बी० के लिए इन्तजाम कर रहा है? उसका उसे पता भी नहीं चलेगा। कौन उसके घर बिजली की रोशनी जला रहा है? उसे पता भी नहीं चलेगा। लेकिन राजनीतिज्ञ ऐसा है जो कुछ भी नही कर रहा है। केवल झण्डा पकड़ना जानता है। जोर से चिल्लाना जानता है। कई लोगों को चिल्लाने में बहुत मजा आता है। चिल्लाने वाला आगे चलकर राजनीतिज्ञ बन जाता है"। (पृ० ४०)

परन्तु सचमुच कहीं चिल्लाने का उपयोग अत्यन्त उत्कृष्ट होगा। पहरेदार के चिल्लाहट से ही डाकू चोर घबड़ाते है। वैसे ही राजा या राजनीतिज्ञ सावधानी से जागरूक रहकर, शोरगुल मचाकर लोगों को जगाते रहते हैं। जिससे चोरों, उचक्कों की दाल न गले। "दण्डः सुप्तेषु जागर्ति" दुनिया के सो जाने पर भी एक दण्ड ही जागरूक रहता है। उसके कारण ही अव्यस्थायें, धांधलियां दूर होती हैं। यह बात अलग है कि कहीं कहीं उसका दुरुपयोग भी होता है। पहले क्रान्तिकारी, बिना शोरगुल किये ही विरोधियों को सूट कर देते थे। उनसे विरोधियों को अधिक परेशानी होती थी। उन्हीं लोगों ने उसकी अपेक्षा खुले आन्दोलन को, प्लेटफार्मों पर होनेवाले गर्मा गर्म भाषणों, हथेलियों की गड़गड़ाहट और नारेबाजियों को प्रोत्साहन दिया था।

वैज्ञानिकों के बच्चों का इन्तजाम, उसकी टी० बी० का इन्तजाम कौन करता है? उसके कैंसर के लिए फिक्र कौन करता है? उसकी उम्र कौन बढ़ा रहा है क्या कोई पून्जीपति यह सब कर रहा है? यह सब काम सरकारें करती हैं। फिर चाहे वह पून्जीवादी सरकार हो चाहे समाजवादी सरकार, बल्कि पून्जीवादी सरकार की अपेक्षा यह काम समाजवादी सरकारे अधिक कर रही हैं। क्योंकि वह वैज्ञानिक श्रमजीवी है। शोषित वर्ग का है। शोषक वर्ग तो उसके लिये इतना ही कर सकता है जितना एक तांगे वाला अपने घोड़े का इन्तजाम करता है। किसी घोड़े का इलाज करना, उसके लिये घासदाने का प्रबन्ध करना, उसके अपने हित में है। इसी तरह वैज्ञानिक के आविष्कार से, उसके द्वारा आविष्कृत मशीनोंसे, पून्जीपति का मुनाफा बढ़ता है। कम दाम में, कम श्रम से, कम मजदूरों द्वारा, ज्यादा मुनाफा मिलता है।

इसीलिये पून्जीपति उसके वच्चों की देखभाल का प्रबन्ध कर सकता है। रोशनी जलाने, उम्र बढ़ाने का, काम भी इसी दृष्टि से वह कर सकता है। परन्तु यहाँ तो किसी व्यक्तिगत वैज्ञानिक का प्रबन्ध भले कोई पून्जीपति करता है, सामस्त्येन प्रबन्ध तो सरकारें ही करती हैं। सरकारी भय से, या समाज के भय से अपनी भलमनसाहत का ढिढोरा पीटने के लिये ही कोई पून्जीपति भी ऐसा करता है। फिर भी केवल वैज्ञानिकों के बच्चों के लिये ही, कैंसर, टी० वी० आदि रोगों की रोकथाम, उम्र बढ़ाने का इन्तजाम नहीं हैं, किन्तु सबके लिए ही है। पून्जीपतिको भी टी० बी० कैंसर होता है। उसे भी उम्र बढ़ाने की कामना है। फिर यह सब एहसान वैज्ञानिकों पर ही क्यों? क्या पून्जीपति कैन्सर, टी० बी० से मुक्त ही रहता है?

श्रमिक सम्पत्ति का मुख्य स्रोत

यह ठीक है कि, "वैज्ञानिक चुपचाप अपने कामपर लगे रहते हैं। उनकी खोजें जिन्दगी के अन्धेरे कोनों में काम कर रही हैं। वे मर जायंगे आपके लिये। आपको पता भी नहीं चलेगा कि कौन आपके लिये जहर चख कर मर गया, इसलिये कि वह जहर किसी की जिन्दगी न ले ले। आपको पता नहीं चलेगा कि कौन वैज्ञानिक बीमारियों के किटाणु की परीक्षा करते करते बीमार होकर मर गया, कि वह किटाणु किसी दूसरे को बीमार न कर सके। आपको पता नहीं कि कौन वैज्ञानिक आटोमेटिक यन्त्र खोज रहा है जिससे किसी आदमीको श्रम करनेकी जरूरत न रह जाय'। (पृ.४१) परन्तु यह लाभ सबको ही मिलता है। पून्जीपति भी इनसे लाभ उठाता ही है। यही बात पून्जीपति को समझना चाहिए कि सम्पत्ति पैदा करने का स्रोत, मुख्य स्रोत उसकी व्यक्तिगत पून्जी नहीं है। किन्तु प्राकृतिक भूमि, कच्चे माल तथा खानें हैं। और सर्वाधिक वह श्रमिक वर्ग है, जिसने अपने बौद्धिक और शारीरिक श्रम से मशीनों को बनाया है। कच्चा माल तय्यार किया है और जो

मशीनों से उत्पादन बढ़ा रहा हैं। अपनी खोजों से सबका कल्याण कर रहा है। राजनीतिज्ञ उनका महत्व जानकर ही यह चाहते हैं कि श्रमिक वर्ग के ही हाथ में सब उत्पादन साधन रहे। वैज्ञानिक जहर तथा बीमारी के किटाणुओं की परीक्षा प्रायः चूहों, कुत्तों और बन्दरों पर करता है। मनुष्य के शरीर पर नहीं है। हाँ, किन्हीं वैज्ञानिकों ने संखिया के स्वाद की जानकारी प्राप्त कर, उल्लेख करने के लिये जहर चखने का दुःसाहस किया था। परन्तु उसमें वह सफल नहीं हो सका था।

आटोमेटिक यन्त्रकी खोज तो किसी अंश में लाभदायक होने पर भी, बेकारी, बेरोजगारी बढ़ाने का ही कारण बन सकती है। इसलिये आज के समझदार बहुत से वैज्ञानिक, संहारक खोजों पर प्रतिबन्ध लगाना उचित मान रहे हैं। क्योंकि उससे सम्पूर्ण मानवता को खतरा उत्पन्न हो सकता है। इस लिये यह कहना भी निःसार है कि, हम कि इतने आगे बढ़ चुके हैं कि अब पीछे लौटना नामुमकिन है, क्योंकि यदि गाड़ी खन्दक के कगार पर या दल दल के दरवाजे पर पहुंच जाय, तब आगे बढ़ना सर्वनाश का ही मूल होगा। अतः पीछे हटना ही आवश्यक है। इसी तरह घोर संहारक शस्त्रास्त्रों का आविष्कार और मनुष्यों को वेकार बनाने वाले स्वचालित यन्त्रों का विस्तार सर्वनाश का हेतु हो सकता है। अतः उस पर प्रतिबन्ध ही ठीक है।

-

क्रान्ति न होने से पूँजीवाद लाभान्वित

कहा जाता है कि 'क्रान्तियों से कल्याण नहीं हुआ। कई अर्थों में हजारों तरह की हानियां क्रान्तियों से हुयी हैं। मनुष्य के विकास में व्यवधान पैदा किये, बाधायें खड़ी की। जो सहज गति से जीवन की धारा बहती थी, उसे बहुत जगह से तोड़ा और रोका गया। अब ऐसी क्रान्तियों की जरूरत है जो बाकी की क्रान्तियों को भुला दे।' (पृ० ४१)

आश्चर्य है कि रजनीश जी को अपनी ही बातों के पौर्वापर्य्य विरोध का ध्यान नहीं रहता है। पहले उन्होंने कहा था कि विरोध करने की, इन्कार

करने की, बगावत करने की, क्रान्ति करने की स्वतन्त्रता ही आत्मा के फलने फूलने का रास्ता है। रूस में पचास वर्ष से वह शक्ति नष्ट की जा रही है। अब वहां विरोध की शक्ति नहीं है। बगावत की क्षमता नहीं है। यह रूस की प्रगति में विरोधी है। परन्तु अब वे स्वयं मानते हैं कि क्रान्तियों से बहुत हानियां हुयी हैं। सहज जीवन की धारा में उनके द्वारा तोड़ फोड़ हुयी है। अब क्रान्तियों की जरूरत नहीं है। यह विचित्र बात है। वही बात रूस के लिये हानि कारक है और वही बात रजनीश के क्षेत्र में लाभदायक है। वे कहते हैं, आज ऐसी क्रान्ति की जरूरत है जो बाकी की क्रान्तियों को भुला दे। जो कल्याण करने वालों से कहे कि आप क्षमा करें, बहुत कल्याण हो चुका। पांच हजार वर्ष से जो हमारा कल्याण नहीं कर पाये, अब आप चुप हो जायं, अब आपकी कोई जरूरत नहीं है।' (पृ० ४१)

यह है तो पून्जीपतियों के कल्याण की बात। कोई आन्दोलन या क्रान्ति न हो, उन्हें ठीक से मुनाफा कमाने की सुविधा तो तभी होगी जब कोई चूं तक न करे, चाहे कितना भी शोषण हो। परन्तु बेकारी, बेरोजगारी, गरीबी, वाध्य करती है, क्रान्ति के लिये।

पूँजीवाद से गरीबी का उन्मूलन नहीं

आप कहते हैं कि 'गरीब के कल्याण का मतलब है सम्पत्ति का उत्पादन, ऐसे यन्त्रों का उत्पादन, जो सम्पत्ति को हजार गुना पैदा करने लगे। गरीब के कल्याण का मतलब है पृथ्वी को वर्ग विद्वेष से विहीन करने का उपाय, वर्ग विद्वेष नहीं। लेकिन सारे समाजवादी वर्ग विद्वेष पर जीते हैं। गरीब को अमीर के खिलाफ भड़काओ। कारखाने कम चलें। कारखाने बन्द हों, हड़ताल हो, बाजार बन्द हो, मोर्चे हो, इनमें लगे रहें। गरीब को पता नहीं कि जितनी हड़तालें होती हैं, कारखाने बन्द होते हैं, गरीब अपने हाथों से गरीब होने का उपाय कर रहा है, क्योंकि इससे देश की सम्पत्ति कम होगी। अगर कल्याण करना है तो जोर से लग जावो सम्पत्ति पैदा करने में। वर्ग

विद्वेष की आग लगाकर, उत्पादन की व्यवस्था को मत रोको, बल्कि वर्गो को निकट लाओ। पर उस स्थितिमें नेता को कौन पूछेगा ? दुनियामें जबतक नेता रहेंगे, तबतक लड़ायी रहेगी। नेताको विदा करिये, लड़ायी बिदा हो जायगी। नेता लड़ाई का निर्माण करता है, वह नेता का भोजन है, उसका प्राण है, आत्मा है, उसका परमात्मा है।' (पृ० ४२)

परन्तु वह यह नहीं सोचते कि युगों से उत्पादन बढ़ाया जा रहा है। खेती करने वाले, मजदूरी करने वाले, जीतोड़ परिश्रम कर रहे हैं। परन्तु उनको मिलती है गरीबी। उनकी कमायी का प्रतिफल उनको न मिल कर जाता है पून्जीपति के जेब में। जब तक यह सह्य था तब तक क्रान्ति की उत्पत्ति नहीं हुयी; आन्दोलन भी नहीं उठा। जब सारे उत्पादन साधन पून्जीपति के हाथ में चले जाते हैं, मजदूरों की भी छटनी होते होते, राष्ट्र के करोड़ों व्यक्ति वेकार हो जाते हैं, बेकारी बढ़ जाती है, राष्ट्र गरीब हो जाता है, राष्ट्र की क्रय शक्ति क्षीण हो जाती है, पून्जीपति द्वारा उत्पादित वस्तुओं की बाजारों में खपत नहीं होती, तब क्रान्ति को छोड़कर दूसरा रास्ता रह ही नहीं जाता। तब वर्ग क्रान्ति उभड़ती है। वह स्वयं उभड़ती है, उसे कोई उभाड़ता नहीं। पून्जीवाद के मार्ग में जो गतिरोध होता है, उसका उपाय बिना किये, बेकारी बिना मिटाये, क्रय शक्ति बिना बढ़ाये, माल की खपत का रास्ता बिना निकाले, पून्जीपति स्वयं मरेगा और राष्ट्र को भी चौपट करेगा। इस लिये क्रान्ति आवश्यक होती है।

लड़ायी भी न हो, आन्दोलन न हो, हड़ताल न हो तो इससे पून्जीपति का मनोरथ थोड़े दिन के लिये भले पूरा हो, परन्तु इससे गरीबी नहीं मिटेगी। गरीबी तो तभी मिटेगी जब उत्पादन साधनों का विकेन्द्री करण हो या सरकारी करण हो। सबको काम मिले, दाम मिले। केवल उपदेशों से वह संभव नहीं है। इसका कोई प्रोग्राम पून्जीवाद में नहीं है।

हिटलर का यह कहना तो ठीक ही है कि, 'अगर बड़ा नेता बनना है तो बड़ी लड़ायी की जरूरत है। अगर असली लड़ायी न हो तो, कोल्ड वार ठन्डी लड़ायी चलाते रहो'।

जन जागरण के लिए नेतृत्व आवश्यक

वस्तुतः संघर्ष बिना शक्ति का सञ्चय ही नहीं होता। श्रमिक कुछ न करेगा तो पिसता रहेगा। कुछ करेगा तभी उसकी शक्ति बढ़ेगी। तभी उससे पूञ्जीपति और सरकार भी झुकेगी। उसके लिये जन-जागरण चाहिये, बिना भय के जागरण नहीं होता। बिना भय के बुद्धि और बुद्धिमान को ढूंढ़ने की भी क्या आवश्यकता होगी? अतः पूञ्जीपति चाहते ही हैं कि कोई बुद्धिमान, समझदार आगे न आये, जो लड़ायी लड़ सके। परन्तु किसी भी कार्य की सिद्धि के लिये बुद्धि एवं बुद्धिमान नेता की आवश्यकता होती है। पूञ्जीपति उसे ही लड़ायी भड़काने वाले की संज्ञा देकर बदनाम करने की चेष्टा करेंगे। परन्तु हिटलर ही नहीं, भारतीय नीति शास्त्रों ने भी स्पष्ट कहा है—शम से मुनियों को सिद्धि मिलती है, परन्तु राजा को नहीं—

"शमेन सिद्धिं मुनयो न भूभृतः।" (किरातार्जुनीयम्)
"असन्तुष्टा द्विजानष्टाः सन्तुष्टश्च महीपतिः॥'

असन्तुष्ट ब्राह्मण नष्ट हो जाता है और सन्तुष्ट राजा नष्ट हो जाता है। राजा सदा उत्थान शील होकर ही अभ्युदय प्राप्त कर सकता है।

अगर 'यद्भाव्य तद्भवंतु" जो होना है, होगा, की बात सोचकर चुपचाप गरीबी में दिन काट लो, की नीति अपनायी जायगी तब भी शान्ति नहीं होगी। अन्त में भीषण बेकारी, बेरोजगारी ही बढ़ेगी। राष्ट्र धन हीन, क्रय-शक्ति हीन हो जायगा। पूञ्जीपति एवं पूञ्जीवादी सरकार, उसके कुछ लोग, कुछ दिन सुख पूर्वक रह सकते हैं। अन्त में बेकार, बेरोजगार राष्ट्र के साथ उनको भी मरना ही पड़ेगा। अतः सड़कर मरने की अपेक्षा लड़कर मरने में ही बुद्धिमानी है। अतः असन्तोष भड़काने वाले नेताओं की आवश्यकता अनिवार्य है। बिना उसके जन जागरण असंभव है। उसके बिना किसी भी समस्या का समाधान असंभव है।

अनेक राष्ट्र पराधीन थे। उनमें जागरण होना, असन्तोष होना, उनके

स्वामियों को अच्छा नहीं लगता था। वह भी राष्ट्र के नेताओं को लड़ायी का पेशेवर बतलाते थे और बहुत कुछ यही कहते थे, जो आज श्री रजनीश जी कह रहे हैं। अंग्रेज भी तो हिन्दुस्तानियों को यही कहते थे कि, नेताओं के ज़ाल में मत फंसों। इससे कुछ लाभ नहीं होगा। इनके आंदोलनों से, राष्ट्र की सम्पत्ति नष्ट होती है और गरीबी बढ़ती है। अतः आंदोलन बन्द करके चुपचाप उत्पादन के काम में जोर से लग जाओ, बस सब ठीक हो जायगा। पर उनकी राय जनता मानती तो क्या कभी भी राष्ट्र आजाद हो सकता था ? और अंग्रेजों की गुलामी से मुक्ति मिल सकती थी ?

आगे अपनी निष्पक्षता व्यक्त करने के लिए श्री रजनीश पून्जीपतियों का भी दोष निरूपण करते हुये कहते हैं कि 'वर्ग विद्वेष को पैदा करने में पून्जीपति भी आधारभूत बनता है। असल में जो आदमी धन कमा लेता है, वह तत्काल अपने को अलग दुनिया का हिस्सा समझने लगता है।, (पृ० ४३)

पर यहीं उन्हें यह भी समझ लेना चाहिए कि पून्जीपति स्वार्थ पूर्ति के लिए इतना विह्वल हो जाता है कि वह न्याय, अन्याय कुछ भी नहीं देखता। किसका शोषण होता है, किसको कैसी पीड़ा होती है, उसे इसका ज्ञान नहीं रहता है। इसीलिये आर्थिक असन्तुलन दूर करने, बेकारी दूर करने, क्रय शक्ति को बनाये रखने की चिन्ता नहीं रहती है। इसीलिये अध्यात्मवादानुप्राणित धर्म नियन्त्रित अर्थ तन्त्र में धर्म की प्रधानता पर बल दिया जाता है, और कहा जाता है कि अतिक्लेश से जो धन मिलता हो, धर्म का अतिक्रमण करने से जो धन मिलता हो, शत्रुओं के चरण चुम्बन से जो धन मिलता हो, उस धन की ओर मन मत ले जावो। दूसरों को बिना सताये, धर्म का उल्लङ्घन बिना किये; खलों के दरवाजों पर घुटना बिना टेके, जो थोड़ा भी धन मिलता है, उसे ही बहुत समझो। उस धन से दूध पूत की वृद्धि होगी, बरक्कत होगीं।

पूँजीपति का अहंकार अस्वाभाविक नहीं

आप कहते हैं कि, धन कमा कर प्राणी अहङ्कार के पहाड़ पर चढ़ जाता

है। परन्तु बिना विवेक के, बिना धर्म के, धन कमाने से अहङ्कारका बढ़ना तो अनिवार्य है ही। वे कहते हैं कि 'गरीब की ईर्ष्या को भड़काया जाता है। गरीब की ईर्ष्या का पचास प्रतिशत कारण उसकी गरीबी, पचास प्रतिशत कारण पड़ोस में खड़े अमीर का अहङ्कार है।' (पृ० ४३)

यह बात सही नहीं है। ईर्ष्या वाले कुछ गरीब भी हो सकते हैं। वस्तुतस्तु ईर्ष्या वाले होते हैं समकक्ष के धनवान्। यह ईर्ष्या स्वर्ग के देवताओं पर हमला करती है। उत्तमोत्तम विमान वाले, उत्तम अप्सराओं वाले, अपने से अच्छे विमान वालों को देखकर ईर्ष्या से जलने लगते हैं। जङ्गल में रहने वाला विरक्त, दूसरे विरक्त की प्रशंसा सुनकर जलने लगता है। बेचारा गरीब तो अपने नोन तेल की चिन्ता में ही परेशान रहता है। राष्ट्रपति बनने की सम्भावना वाला ही राष्ट्रपति से ईर्ष्या करता हैं। गरीब नहीं। क्योंकि वह अपने लिये वह असम्भव समझता है। फिर भी धनवान् अहङ्कार शून्य हो, धार्मिक दयालु हों तो, वह गरीबों के आशीर्वाद का भाजन हो सकता है।

यह ठीक ही है कि यदि धन कमा कर, किसी अहङ्कार का अर्जन करके किसी पहाड़ पर खड़ा हो जाय तो फिर आस पास के लोग उसे नीचे उतारने की कोशिश करेंगे।,

भले कोई उतारने का प्रयत्न न भी करे तो भी अहङ्कार स्वयं ही उसको उतार देता है।

'जितना धन हो, उतना निरहङ्कारी इसलिए हो जाना चाहिए कि उसने धन की बहुलताको देख लिया और यह भी पा लिया कि बहुत धन मिलनेसे भी क्या मिल जाता है। आखिर महावीर और बुद्ध अमीरों के बेटे थे। लेकिन लात मार कर अमीरी के बाहर चले गये, क्या कारण था?

बुद्ध जब दूसरे गाँव गये तो उस गाँव के सम्राट् ने आकर समझाया तुम यह धन, इज्जत, प्रतिष्ठा, राजमहल छोड़कर क्यों भागे ? चलो मैं तुमसे अपनी लड़की का विवाह कर देता हूं। लौट जावो। मेरे राज्य को

संभालो। बुद्ध ने कहा, जो राज्य मैं छोड़कर आया, वह बड़ा था। अब मुझे प्रलोभन मत दो। सम्राट् ने कहा, लेकिन छोड़कर क्यों आए? बुद्ध ने कहा, मैंने देखा, सब था। लेकिन फिर भी भीतर कोई कमी थी, जो धन से पूरी नहीं हुई। मेरी अपनी समझ है कि निर्धन का अहङ्कार छूटना बहुत मुश्किल है। क्योंकि उसे पता नहीं कि धन के मिलने पर कुछ नहीं मिलता। लेकिन धनी का अहङ्कार छूट जाना चाहिए। ठीक अर्थों में वही धनी है, जिसे यह भी दिखायी पड़ गया है कि धन मिल गया, मकान मिल गया, बड़ी फैक्ट्ररी है, बड़ी कार है, सब है, लेकिन भीतर फिर भी कोई जगह खाली रह गयी है। उस खाली जगह को जो धन से भर लें तो अहङ्कार पैदा होता है। उस खाली जगह को जो धन की पृष्ठभूमि में से देख लें तो निरहङ्कार पैदा होता है। धनी को अहंकार छोड़ना पड़े तो गरीब को ईर्ष्या छोड़ने में बड़ी सुविधा हो जाय। लेकिन धनी अपने अहङ्कार में अकड़े तो गरीब के पास सिवाय ईर्ष्या के क्या बचता है? और तब नेता को सुविधा मिल जाती है कि गरीब की ईर्ष्या को भड़काये। और गरीब की ईर्ष्या को भड़काता है तो धनी और अड़कता है। वह अपने अहङ्कार की सुरक्षायें चाहता है। पर इससे ईर्ष्या और भड़केगी। आग और फैलेगी। देश को समृद्ध बनाना हैं तो वर्ग विद्वेष को कम करना पड़ेगा। धनी का पहला काम यह है गरीब से भी पहले, क्योंकि गरीब की ईर्ष्या बड़ी स्वाभाविक है, लेकिन धनी का अहङ्कार बिलकुल अस्वाभाविक है। धनी का अहङ्कार बहुत थोथा है। और गरीबकी ईर्ष्या बड़ी वास्तविक है। (पृ० ४३-४४)

उक्त विचार भी विचारणीय है। मैंने पहले कहा था कि ईर्ष्या उतनी गरीबों में नहीं होती, जितनी अमीरों में ईर्ष्या परस्पर होती है। गरीब तो अपने नोन तेल की चिन्ता और कमाने में ही व्यस्त रहता है। वस्तुतः वर्गवाद अमीर गरीब का संघर्ष ही नहीं, और नहीं यह ईर्ष्या और अहङ्कार का संघर्ष है। मार्क्स के अनुसार यह शोषक-शोषित, उत्पीड़क-उत्पीड़ित का संघर्ष है। उसके अनुसार भूमि सम्पत्ति, कल-कारखाने, उद्योग, खान, आदि के अधिपति शोषक हैं। श्रमजीवी, चाहे वह बौद्धिक या शारीरिक श्रम से जीविका चलाता है, वे सब शोषित हैं। इस दृष्टि से खेतिहर किसान या

दूकानदार, व्यापारी भले वह गरीब ही हों, पर वह पून्जीपति ही कहे जाते हैं। केवल गरीब होने से मात्र से वह शोषित वर्ग में नहीं आ सकता है। दुर्भाग्यवश कई राजा और जमींदार भी गरीब होते हैं। कार्ल मार्क्स ने इसीलिये वर्ग क्रांति में श्रम जीवियों को ही लिया है, किसानों को नहीं। उसने कहा था कि गरीब तो फुटपाथों पर सोने वाले कंगले भी हो सकते हैं। परन्तु वे क्रांति के लिए उपयुक्त नहीं है। यह बात अलग है कि चीन की क्रांति में किसानों की ही प्रधानता थी।

मार्क्स ने यह भी कहा हैं कि श्रमिक क्रांति के लिये बोनस, भत्ता या वेतन वृद्धि का प्रश्न बहुत ही गौण है। उसमें समझौता, समन्वय आदि सब बाधक ही है। वर्ग विध्वंस ही अन्तिम लक्ष्य है और उत्पादन साधनों का राष्ट्रीयकरण ही मार्ग है। अतः धनवान् चाहे निरहङ्कार हो, चाहे साहङ्कार, उसका वर्ग क्रांतिपर कोई असर नहीं पड़ता है।

ईश्वर, धर्म एवं शास्त्र की मान्यता बिना निरहङ्कारता की बात भी दूर की है। गरीब की ईर्ष्या स्वाभाविक है। यह कहना अत्यन्त असंगत है। क्योंकि गरीब में कुछ न कुछ फिर भी धर्म एवं ईश्वर के प्रति विश्वास होने से सन्तोष रहता हैं। किन्तु धनवान् में अहङ्कार होना स्वाभाविक है—

'प्रभुता पाइ काहि मद नाहीं'

'यौवनं धन सम्पत्तिः प्रभुत्वमविवेकिता।
एकैकमप्यनर्थाय किमु यत्रचतुष्टयम्।'

वैराग्य, विवेक, निरहङ्कारिता का धनवान् या गरीब से कोई विशेष सम्बन्ध नहीं है। कितने ही गरीब भी घमण्डी होते हैं। धन का न सही, बल का, विद्या का, त्याग-वैराग्य का, संघठन का भी अहङ्कार होता हैं।

वस्तुतः धनवान् भी दो प्रकार के होते हैं—एक पवित्र धनवान् और अपवित्र धनवान्। अपवित्र धनवान् लाखों को साथ लेकर नरक जाते हैं। क्योंकि वह स्वयं भी प्रमादी, दुराचारी, शराबी होते हैं और उनके सङ्गी साथी भी लगभग वैसे ही बन जाते हैं। परन्तु पवित्र धनवान् लाखों को

साथ लेकर वैकुण्ठ जाते हैं, क्योंकि वे स्वयं धार्मिक सदाचारी, दानी, भगवद्भक्त, परोपकारी होते हैं। उनके साथी भी वैसे ही होते हैं। जैस ध्रुव, प्रह्लाद, हरिश्चन्द्र आदि। इसीलिये भगवान्‌ने, जो योगाभ्यासी किसी कारण योगसिद्धि न पा सके, तो उनका जन्म शुचि, श्रीमानों के गृह में होना कहा है—'शुचीनां श्रीमंता गेहे योगभ्रष्टों हि जायते।' परन्तु उससे भी उत्तम जन्म माना है—सन्तोषी, दरिद्र ब्राह्मण के घर में। जैसे व्यास के गृह में शुकदेव का जन्म —

'अथवा योगिनामेव कुले भवति धीमताम्
एतद्धि दुर्लभतरं लोके जन्म यदीदृशम्'

सामान्यतया धनवान् होना प्रमाद का ही हेतु होता है। महावीर, बुद्ध कोई बड़े धनवान् नहीं थे। सामन्त वादी समय में उनका जन्म था। जब एक-एक गांव का मालिक भी सम्राट् कहलाता था। बुद्ध भी एक सामन्त थे। उनके आस-पास हजारों वैसे ही सामन्त थे। फिर भी सामान्य जनों पर उतने त्याग का भी प्रभाव पड़ता ही था।

ऋषभ, जड़भरत आदि तो जम्बू द्वीप के सम्पूर्ण भारत के सम्राट् थे। उनका त्याग और भी महत्व का था। फिर अखण्ड साम्राज्य को प्राप्त करने की अपेक्षा उनके त्याग का महत्व अधिक है—

'प्रापणात्सर्वकामानां परित्यागो विशिष्यते।'

वाह्य धन, वाह्य सुखों का साधन होता है। परन्तु उससे अमृतत्व की आशा नहीं हैं। वह त्याग से ही मिलता है। 'न कर्मणा न प्रजया धनेन त्यागेनैके अमृतत्व मानशुः' कर्म से, प्रज्ञा से, धनसे, अमृतत्व नहीं मिलता। वह तो त्याग से ही मिलता है। पर यहां तो सामान्य व्यावहारिक जीवन की चर्चा है। जो धनिक धर्म, ईश्वर या आत्माकी खोज में लगता है, उसकी दृष्टि में धनका महत्व कम हो जाता है। और समन्वय, सामञ्जस्य स्थापन करने में समर्थ हो सकता हैं। वह सब जड़ पूञ्जीवाद में सम्भव नहीं है। उसके लिए तो धर्म नियन्त्रित अर्थ तन्त्र की आवश्यकता होती है।

यह ठीक ही है कि 'अगर कोई चपरासी है तो वह इसी वजह से छोटा नहीं है।' जो ईमानदार है आदमियत को पहचानता है, वह कोई भी हो, अमीर हो, चाहे गरीब सबके भीतर परमात्मा को देखेगा। परन्तु यह आज के जड़ पून्जीवाद में कहां सम्भव है ?

भारत गरीबी का नहीं, त्यागी का पूजक

हिन्दुस्तान के सम्पत्ति न पैदा कर सकने का कारण बताते हुए रजनीश कहते हैं कि, 'हमने गरीबी की पूजा की है। हजारों साल से हम गरीब को आदर देते रहे हैं। शायद इसका कारण यह है कि हम बहुत गरीब थे। और अमीर की ईर्ष्या के कारण हम गरीब को आदर देने लगे। अगर हम भिखमङ्गे हैं, हमें सम्राट् होने का कोई उपाय न हो तो आखिर में हमारा मन यही इन्तजाम करेगा कि हम सम्राट् होना हीं कब चाहते हैं। हम तो भिखारी होने में ही आनन्दित हैं। यह हमारे अहङ्कार की आखिरीं तरकीब होगी। हजारों साल से भारत गरीब है। अतः उस गरीबी से भी अहङ्कार को तृप्त करने का उपांय सोचना जरूरी था। हम गरीबी को सादगी कहने लगे। गरीबी को अपरिग्रह कहने लगे। गरीब को आदर देने लगे। हम स्वेच्छा से उसके चरण छूने लगे। (४६-४७)

उक्त कथन भी निःसार हैं और उनके ही पूर्वोक्तियोंके विरुद्ध ही है। वे स्वयं मानते हैं कि बुद्ध, महावीर धनवान्के बेटे थे। फिर भी उन्होंने धन का त्याग किया और वे भिखारी बने। फिर यह कहना कहांतक संगत है कि ईर्ष्या वशात् भारतीय गरीब लोगों ने गरींबी की पूजा करनी आरम्भ की थी। भारतीय गरीबी के पूजक नहीं हैं। वे त्यागी कीं पूजा करते है। त्यागी और गरीब में महान अन्तर होता है। अन्न न मिलने पर भी प्राणी को उपवास करना पड़ता है। परन्तु एकादशी व्रत पराक आदि व्रतों में भी उपवास किया जाता है। पर क्या दोनों समान हैं ? वस्त्र न मिलने पर भी नङ्गा रहना पड़ता है। परन्तु क्या उससे कौपीनधारी विरक्तों की समानता हो सकती है ? 'कौपीन-

वन्तः खुल भाग्यवन्तः' फिर विरक्त अपरिग्रही व्यक्ति को तो गरीब ही नहीं बड़े-बड़े चक्रवर्ती नरेन्द्र भी नमन करते हैं। अनन्त ब्रह्माण्ड नायक भगवान् परमेश्वर कृष्ण भी उसके चरण रज स्पर्श से अपने को पवित्र करते हैं।

'निरपेक्षं मुनिं शान्तं निर्वैरं समदर्शनम्।
अनुव्रजाम्यहं नित्यं पूयेयेत्यङ्घ्रि रेणुभिः॥ (श्रीभागवते)

निरपेक्ष, निर्वैर, समदर्शन, शान्त मुनि के पीछे-पीछे मैं इसलिये चलता हूं कि उनके चरण रेणु से मैं पवित्र हो जाऊं।

'न सुखं देवराजस्य न सुखं चक्रवर्त्तिनः।
यत्सुखं वीतरागस्य मुनेरेकान्त वासिनः॥ (भागवते)

जो सुख एकान्तवासी वीतराग मुनि को मिलता है, वह देवराज इन्द्र तथा चक्रवर्ती सम्राट् को भी नहीं प्राप्त होता है। इसीलिये इन्द्रादि देवता, परमेश्वर सम्राट् भी उसके पैर छूते है, फिर साधारण धन-वानों की बात ही क्या है?

जैन लोग भले अमीर के बेटों को ही तीर्थंकर मानते हों, वैदिक संस्कृति में तो त्याग, वैराग्य, शान्ति, भक्ति, ज्ञान, विज्ञान, समदर्शन आदि गुणों के कारण अपरिग्रही त्यागी की पूजा होती है। धनवान् या निर्धन होनेसे उसका कोई सम्बन्ध नहीं। बाल्मीकि रामायण के अनुसार आरण्यवासी विभाण्डक महर्षि के पुत्र ऋष्य शृङ्ग हो, चाहे कोई धनवान का बेटा हो, महत्व ज्ञान, वैराग्य, त्याग का ही होता है। अतएव बुद्ध और महावीर भी इसीलिये नहीं बड़े आदमी थे कि उन्होंने बड़ा धन छोड़ा था। अगर वे बड़ा धन छोड़कर भी तत्व ज्ञानवान न होते तो बड़े आदमी नहीं हो सकते थे। उनका इतना सम्मान नही हो सकता था। हाथी, घोड़ा, मोटर, मुहरों का त्याग करना, त्याग नही है। ममता एंव अहंकार का त्याग ही महत्वपूर्ण माना जाता हैं। अहन्ता ममता को छोड़े बिना एक झोपड़ी और पुरानी गुदड़ी का भी छोड़ना असंभव है। ममता का त्याग हो जाय तो ब्रह्माण्ड साम्राज्य का भी त्याग कठिन नहीं है। बुद्ध, महावीर एक सामान्य धनीके लड़के थे। उस समय एक

एक ग्राम के भी एक सम्राट थे। उसी प्रकार के सम्राट के लड़के बुद्ध भी थे।

राजा महाराजा जिसका पाद स्पर्श करे, सामान्य लोगों पर इसका असर होना भी स्वाभाविक है

-"स्त्रियः कामित कामिन्यो लोकःपूजित पूजकः"

स्त्रियां कामित कामिनी होती हैं। लोक पूजित पूजक होते हैं। जिसको ज्यादा लोग मानते हैं, राजा महाराजा भी उसीको मानने लगते हैं। सामान्य लोगों में राजा महाराजाओं का सम्मान भी होता है। पर वह भी केवल धन के नाते ही नहीं, शास्त्र के नाते भी—

"नराणाञ्च नराधिपम् ।"

"महति देवता ह्येषा नर रूपेण तिष्ठति"

इत्यादि शास्त्र वचनों के आधार पर राजा को ईश्वर का विशेष अंश समझा जाता है। इस लिये भी उसका सम्मान होता है। लार्ड लिनलिथगो का गोशालाओं में जाना देखकर यहां के सेठ साहूकार भी गोशाला जाने लगे। सम्राट दिलीप को गो सेवा करते देखकर, लोगों में भी गो सेवा जाग्रत हुई थीं। भगवान कृष्ण को गोचारण करते देखकर भी लोग प्रभावित हुए थे। "यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवतरोजनः" बड़े लोग जैसे आचरण करते हैं, वैसा आचरण करना साधारण लोगों का स्वभाव होता है।

दरिद्रता महा अभिशाप है। यह नयी बात नहीं है। ज्ञानवान्, वितराग के लिये अकिञ्चनता सर्वोत्कृष्ट वस्तु होते हुए भी, रागवान् के लिये दरिद्रता सर्वाधिक दुःख का कारण है ही।

गान्धी जी के थर्ड क्लास में चलने का अर्थ भी आपने उल्टा ही समझा है। भारत वर्ष शताब्दियों से पराधीन था। गरीबी थीं ही तो भी लोग झूठी इज्जत के लिए सैकड़ों, हजारों रुपये के कपड़े बनवाते थे। वैसी आर्थिक स्थिति होने पर भी सेकन्ड, फस्ट क्लासों में चलते और खाने पीने के खर्च में कठिनायी झेलते थे। गांधी जी खद्दर की धोती और चद्दर, काष्ठ की चप्पल पहन कर, थर्ड क्लास में चलकर लाखों मनुष्यों को उस परेशानी

से बचा सके थे। गाँधी जी बैरिस्टर थे। उनकी भारत ही नहीं बाहर भी इज्जत थी। सैकड़ों सेठ साहूकार तथा अंग्रेज सरकार भी उनकी इज्जत करती थी। तो भी उनका साधारण वेष और व्यवहार देखकर, झूठे बाहरी सजावट की ओर से लोगों की आशक्ति दूर हुई थी।

भारतीय संस्कृति में धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष चार पुरुषार्थों में अर्थ भी एक पुरुषार्थ है। उसका महत्व है। शास्त्रों का निर्णय है कि धर्म का मुख्य फल मोक्ष है। परन्तु उसका गौण फल अर्थ भी है। अर्थ का मुख्य फल धर्मानुष्ठान हैं। परन्तु धर्म का गौण फल काम सेवन भी है। काम का मुख्य फल जीवन धारण है। पर गौण फल इन्द्रिय तर्पण भी है। जीवन का मुख्य फल तत्व जिज्ञासा ही है। अन्य व्यवहार गौंण हैं। 'भूखे भजन न होइ गोपाला' की कहावत प्रसिद्ध ही है।

ऊंचे लक्ष्य से ही देह विस्मृति संभव

यह ठीक है कि "भूख में शरीर भूल नहीं सकता। सिर में दर्द हो तो सिर नहीं भूलता। दर्द न हो तो सिर भूल जाता हैं। पैर में कांटा गड़ा हो तो आत्मा पैर में ही चली जाती है। वहीं कांटे के पास निवास करने लगती है। गरीब शरीर में ही जी पाता हैं। उसका शरीर खटकता रहता है। अमीर के लिये सुविधा एक है कि वह शरीर को भूल सकता है। इसीलिये सारी दुनिया को अमीर किया जाना जरूरी हैं। (पृ० ४८, ४९) इसीलिये शास्त्रों ने — साधु सन्यासी को भी कहा है कि आहार के लिये प्रयत्न कर लेना चाहिए, क्योंकि प्राण धारणसे ही वैराग्य, ब्रह्म विज्ञान आदि संभव है—

"आहारार्थं समीहेत युक्तं तत्प्राणधारणम्"

परन्तु फिर भी सबको धनवान् बनने की अपेक्षा नहीं। तभी तो बुद्ध, महावीर आदि भिक्षा से जीवन चलाते थे, धनोपार्जन करके नहीं। वैदिक ऋषि, महर्षि भी शिक्षा को महत्व देते हैं। ब्रह्मचारी, बनस्थ सन्यासीके लिए धनोपार्जन का विधान नहीं है तो भी गृहस्थ के लिये धनोपार्जन करना आव-

श्यक है। इसी लिये प्राचीन काल में अनेक धनवानों तथा सम्राटों के पास अनन्त धन सम्पत्तियां होती ही थी। रावण की लंका स्वर्ण एवं रत्नों से निर्मित थी। भगवान श्री कृष्ण की द्वारका पुरी भी उत्कृष्ट रत्नों से निर्मित थी। अयोध्या के निम्न श्रेणी के लोग भी अनन्त धन धान्य से परिपूर्ण थे।

"जो संपदा नीच गृह सोहा।

तेहिंविलोकि सुरनायक मोहा ॥ (रामचरित मानस)

फिर भी वर्तमान भौतिक वादी पून्जीवाद, जिसकी वकालत आप कर रहे हैं, उसके चलते सारी दुनिया अमीर नहीं बन सकती। वह तो सम्पत्ति तथा उद्योगों के विकेन्द्री करण से ही संभव है। धनवान् होने पर भी शरीर को भूलने पर, धन की चिन्ता बनी रहेगी। कितने धनी हैं, जो शरीर भूलकर आत्मा को ढूंढते हैं। हां शरीर भूलकर पर धन, पर स्त्री ढूंढने में तत्परता अवश्य होती है।

यह कहना ठीक नही है कि "धर्म की, परमात्मा की, खोज मनुष्य की सभी सुविधाओं की तृप्ति के बाद हुई खोज है। वह आखिरी विलास है। वह सुविधाओं के बाद की अन्तिम चरम यात्रा है"। (पृ० ४९) क्योंकि संसार में सभी सुविधाओं की पूर्ति असंभव ही होती है। संसार के अपेक्षाओं की समाप्ति कभी भी होती ही नहीं। संसार के सभी व्रीहि, यव, हिरण्य, रत्न, हाथी, घोड़े, मोटर, वायुयान, स्त्रियों के मिल जाने पर प्राणी की तृप्ति नहीं होती। अग्नि में घृत की आहुति से अग्नि नहीं बुझती है। वस्तुओंकी प्राप्तिसे अपेक्षापूर्ति नहीं होती। अतः अनिवार्य भोजन-पान वस्त्रादि की व्यवस्था ही पर्याप्त होती है। आपके मान्य बुद्ध, महावीर आदि ने भी यही किया था। जहाँ अपरिग्रह दिगम्बर जैन साधु भी लम्बे लम्बे उपवास व्रत करते हैं, वहीं वैदिक साधु भी तप करते हैं। तो भी देह विस्मृति पूर्वक अपने लक्ष्य के ध्यान में मग्न होते हैं। जिसका ऊंचा लक्ष्य न होगा, वह सामग्री सम्पन्न होने के कारण देह भूलने पर स्त्री, पुत्र, धन आदि के चिन्तन में ही तल्लीन रहेगा।

प्रारब्ध और पुरुषार्थ का ही प्राधान्य

कहा जाता है कि, अमीर अपने पिछले जन्मों के पुण्यों के कारण अमीर है। गरीब अपने पिछले जन्मों के पापों के कारण गरीब है। इससे संतोष मिलता था। इसीलिये हम गरीबी में भी जी लेते थे। इससे गरीबी का मिटना मुश्किल हो गया। गरीबी पिछले जन्मोंके कर्मों का परिणाम नहीं है। वह हमारे इसी जन्मों के भूलों का परिणाम है। अगर सम्पत्ति नहीं पैदा कर रहे हैं, तो गरीबी अनिवार्य हो जायगी। साथ ही गरीब एक एक व्यक्ति की व्यक्तिगत व्यवस्था का भी फल नहीं है। वह हमारी सामूहिक अन्तर्व्यवस्था का ही फल है। इन दो बातों को समझने से गरीबी मिटायी जा सकती है। जब तक सोचा जाता था कि उम्र भाग्य से तय है, तब तक आदमी की उम्र नहीं बढ़ायी जा सकी, लेकिन अब उम्र बढ़ी है। क्योंकि भाग्य का विश्वास घटा है। तिब्बत में बच्चा पैदा होते ही बर्फीले पानी में सात बार डुबा दिया जाता था। ऐसी स्थिति में दश में सात बच्चे मर जाते थे, तीन बचते थे। उनका ख्याल था जो मर गये, उनको मरना ही था। हमने परीक्षा कर ली, कौन मरने आया था, कौन बचने आया था। इस कारण वहां करोड़ों वच्चे मरते थे। परन्तु वास्तव में यह अनुचित था। थोड़ी चिकित्सा से उन्हें बचाया जा सकता था।

जब तक बिमारी पिछले जन्मों के कर्मों का फल मानी जाती रही तो हम बिमारी से नहीं लड़े। आज वैसा विश्वास मिटने के कारण बहुत सी बीमारियां विदा हो गयी। एक वक्त आयेगा जब बीमारी बहुत असंभव हो जायगी, गरीबीको हमने स्वीकार किया, इसलिए गरीबी हैं। गरीबी मिटानेका प्रयत्न करनेसे वह मिट सकती है, पर आजतो उल्टा समझाया जाता है "तेरा शोषण किया जाता है, इसी लिये तू गरीब है" तू शोषक को मिटा, वह मिट जायगा, तो तू अमीर हो जायगा। यह आत्मघाती दलील है। (पृ० ४६-५०). परन्तु उपर्युक्त बातें आंशिक ही सत्य हैं। उचित पक्ष यही है कि शोषण भी

मिटाया जाय और परिश्रम पूर्वक सम्पत्ति कमाने पर ध्यान भी दिया जाय। मजदूर दश घण्टा मिलों में काम करते हैं, फिर भी उनको अपना पूरा काम चलाने के लिये भी पैसा नहीं मिलता। जिनके पास भूमि, सम्पत्ति, कारखाने आदि हैं, वे स्वतन्त्रता से धन कमा सकते हैं। जिनके पास वह नहीं है, उनके पास सिवा नौकरी के अथवा शोषण रोकने के लिये, आन्दोलन करने के और कोई मार्ग नहीं है। जब कोई पूर्व जन्म नहीं है, पूर्व जन्म के कर्मों से इस जन्म का कोई सम्बन्ध नहीं है, गरीबी, अमीरी का भाग्यसे कोई सम्बन्ध नहीं है, तब तो सीधा मार्ग यही है कि शोषकों को उखाड़ फेंकने का प्रयत्न करके स्वतन्त्र रूप से उत्पादन साधन प्राप्त किया जाय? पर यह काम व्यक्तिगत रूप से संभव नहीं होता। इसीलिये सामूहिक रूप से आन्दोलन करके, सभी उत्पादन साधनों का राष्ट्रीयकरण करके, सामूहिक उत्पादन द्वारा, सामूहिक गरीबी दूर करके, सामूहिक सुख संपदा पैदा करने का प्रयत्न किया जाता है।

रजनीशजी की अपनी बाते ही परस्पर विरुद्ध होती हैं। उनको विदित होना चाहिये कि जब कोई जन्मान्तरीय पुण्य-पाप इस जन्म के उत्थान पतन में हेतु नहीं हैं, तब यह क्यों माना जाय कि कोई अमुक व्यक्ति ही सम्पत्ति पैदा करने की प्रतिभा लेकर आया है। सब लोग सम्पत्ति नहीं पैदा कर सकते हैं। सभी लोग फोर्ड, टाटा, बिड़ला नहीं बन सकते हैं? यह भी एक अन्ध विश्वास होता है।

वस्तुतः उनके निष्कर्ष निकालने का तरीका ही गलत है। सिद्धान्ततः इस जन्म की परिस्थितियों के साथ अवश्य ही पिछले जन्मों के पुण्यों-पापों का सम्बन्ध होता है। परन्तु उस पर गंभीरता से विचार किये बिना किसी निष्कर्ष पर पहुंचना उचित नहीं।

एक राजा के दो मन्त्री थे। एक युद्ध विद्या में निष्णात था। दूसरा व्यापार विद्या में निष्णात था। राजा ने भूल से युद्ध विद्या निष्णात को व्यापार में लगा दिया था और व्यापार विद्या निष्णात को युद्ध में लगा दिया। फल वही हुआ जो होना था। युद्ध में पराजय हुयी। व्यापार में

घाटा हुआ। मनुष्य के प्रारब्ध और पुरुषार्थ दो मन्त्री हैं। पुरुषार्थ धर्म एवं मोक्ष में सफलता प्राप्त कर सकता है, प्रारब्ध और काम में सफल होता है। हाँ, वे दोनों आपस में भी एक दूसरे के सहायक होते हैं। अतएव प्रारब्ध दैव की अनुकूलता होने से ही पुरुषार्थ धर्म और मोक्ष में सफल होता है। कई जगह देखते हैं कि दैव की अनुकूलता नहीं रहने पर, पूरा प्रयास करने पर भी, धर्म मोक्ष में सफलता नहीं मिलती। जप, ध्यान, विचार, तप में लगा हुआ व्यक्ति पागल हो जाता है, वीमार हो जाता है। ऐसे ही पुरुषार्थ की सहायता न होने से प्रारब्धानुसार मिली हुयी सम्पत्ति भी छिन जाती है, या नहीं मिलती है। प्रारब्ध वशात् किसी के मुख में भी ग्रास आ जाये तो भी उसे गले के नीचे ले जाने का पुरुषार्थ तो करना ही पड़ता है। शास्त्रों के अनुसार जाति (मनुष्य-पशु) आयु और भोग प्राक्तन कर्मो के अनुसार बनते हैं। कोई क्यों कुत्ता, घोड़ा, मनुष्य बनता है ? कोई क्यों धनी या गरीब के घरमें जन्म लेता है ? इसका प्राक्तन कर्मोके सिवा और कोई हेतु नहीं है। कोई अपनी इच्छानुसार शूकर, कूकर, आदि नहीं बनता है। इसी प्रकार कई स्थलों में हजार विघ्न बाधाओं के रहने पर भी कोई जीता है, फलता फूलता है। कहीं पूरा प्रबन्ध रहने पर भी, पूरी चिकित्सा की व्यवस्था रहने पर भी नहीं बच पाता है। यही स्थिति योग एवं योग साधनों की भी है। मुख्यतया मनुष्य को धर्म और मोक्ष के लिये पुरुषार्थ करना चाहिये।

जाति का मनुष्य, पशु आदि में सामान्यतया परिवर्तन नहीं हो सकता। फिर भी तीव्रतम प्रयास से उसमें रद्दोबदल हुआ ही है। नहुष तीव्र प्रमाद से, इन्द्र देव देह से बञ्चित होकर, अजगर हो गया था। नंदीगण उत्तम प्रयास से उसी जन्म में मनुष्य से देवता हो गये थे। आयु और भोग तथा भोग साधनों में भी विशेष प्रयत्न से रद्दोवदल होते हैं। साधारणतया कोई मनुष्य जानता है कि उसका भाग्य कैसा है ? उसके प्रारब्ध में क्या है ? मनुष्य के सामने तो कर्तव्य की ही प्रधानता रहती है। प्रारब्ध भी तो आखिर पुरुषार्थ से ही बनता है। आज का किया गया कर्म ही फलोन्मुख होकर प्रारब्ध या दैव कहा जाता है। आजका पुरुषार्थ, सत्कर्म या तप कल अच्छा प्रारब्ध बन

जायगा। आजका प्रमाद' या पाप कल बुरा दैव बन जायगा, दैव या प्रारब्ध फलबलकल्प्य होता है। जैसा फल हुआ तदनुसार उसका अस्तित्व मानना पड़ता है। फिर यह हम कैसे निर्णय कर लें कि हमें दरिद्र ही रहना है, 'हमारे भाग्य में सम्राट बनना नहीं लिखा है, या हमें आज ही मरना है, शतायु होना हमारे भाग्य में नहीं है।'

सिद्धान्ततः सामान्यतया प्रारब्ध जनित सुख दुःख ही की अनिवार्य्यता होती है। फिर भी आयुर्वेद के महर्षियों ने रोग निबृत्ति के अनेक उपाय निर्दिष्ट किये हैं। उनसे लाभ भी होता है। प्रयोग न करने से लाभ नहीं होता है। अन्वयव्यतिरेक से कार्य कारण भाव ज्ञात होता है। अतः प्रारब्ध प्राप्त दुःख रोगादि भी उपाय से नष्ट होते हैं। जो कई रोग लौकिक औषधों के प्रयोग से भी नहीं मिटते, उनकी भी निबृत्ति सम्पुटित दुर्गा पाठ या मृत्युञ्जय मन्त्र जप से हो जाती है। जिनकी निबृत्ति उनसे भी नहीं होती उनकी निबृत्ति के लिये अखण्ड जप पाठादि का विधान है।

'अखण्डं कारयेत्तत्र जपहोमादिकाः क्रियाः' इनसे भी जिनकी निवृत्ति नहीं होती उसे ही फलबलकल्प्य तीव्रतम प्रारब्ध माना जाता है। 'भोगादेव तु तत्क्षयः, भोग से ही उसकी निवृत्ति होती है। ऐसे ही प्रारब्ध कर्मों के लिये कहा गया है कि बिना भोग किये सैकड़ों कल्पों तक उसका क्षय नहीं होता।' 'नाभुक्तं क्षीयते कर्म कल्पकोटि शतैरपि', यही स्थिति आयु बढ़ाने, गरीबी मिटाने के सम्बन्ध में भी समझना चाहिये। किसी दृष्टि से भी कोई यह नहीं कह सकता है कि कोई गरीब ही रहेगा या दस बीस वर्ष में मर ही जायगा।

भारतीय तन्त्रों, आगमों के अनुसार रस सिद्धि के द्वारा वज्रकाय निर्माण का विधान है। विविध कल्पोंके द्वारा जरामरणनिवृत्तिका विधान तो आयुर्वेद ग्रंथों में भी है। धन प्राप्तिके लिये लौकिक शास्त्रीय अनेक विधान हैं। फिर भी उनकी कुछ सीमायें अवश्य हैं। बर्फीले पानीमें सद्योजात बालकों के जीने मरने की परीक्षा किसी भी दृष्टि से संगत नहीं बैठती। साथ ही केवल परलोक या धर्माधर्म का विश्वास मिटने के कारण धन वृद्धि, रोग निवृत्ति या आयु वृद्धि

की आशा भी दुराशा ही है। कई लोग पूर्ण नास्तिक होने पर भी दीर्घायु नहीं हो पाते हैं। जन्मान्तरीय धर्म-अधर्म का वर्तमान जीवन में प्रभाव होने पर भी यह नहीं कहा जा सकता कि दरिद्रता या रोग मिटाने या आयु बढ़ाने का कोई उपाय नहीं है। ऐसा भी समय आयेगा जब जमीन पर बीमारी असंभव होगी यह कहना भी निर्मूल हैं। तब यह भी क्यों न कहा जाय कि मृत्यु भी असंभव हो जायगी, परन्तु यह तर्क विरुद्ध है। कोई भी सावयव वस्तु नित्य नहीं हो सकती। क्योंकि उत्पन्न वस्तु का विनाश ध्रुव है। 'जातस्य हि ध्रुवो मृत्युः'

श्रमिकों की मजबूरी

रजनीश कहते हैं कि, 'मजदूर दो रुपये में काम न करे। जहां दश रुपये मिलते हैं वहां करे। पर वह कहाँ बेचेगा दश रुपये में अपने श्रमको। वह जो दो रुपये में बेंच रहा है, अगर न बेचे तो दो पैसे में भी अपने श्रमको नहीं बेंच पायेगा। मार्क्स ने यह गलत बात समझायी है कि गरीब जितने का काम कर रहा है, उससे कम पैसा दिया जाता है। लेकिन गरीब का जो पैसा दिया जा रहा है, अगर वह काम न करे, उसको श्रमका पैसा उसे मिलने वाला कहां है? उसे ज्यादा मिल जायगा? मिलता है तो उसे तलाश कर लेना चाहिये। इस ढंग से सोचने से तो दुश्मनी खड़ी हो जाती है।

गरीब को सोचना चाहिये कि छीनने का नहीं, सम्पत्ति को और ज्यादा उत्पन्न करने का प्रयत्न होना चाहिये। अमीर को सोचना चाहिये कि मुनाफा इकट्ठा करने का सवाल नहीं, उस मुनाफे को नियोजित करने का सवाल है। पर आज तो समाजवादी उत्पादनकी बात नहीं सोचते। वितरण, विभाजन और बांटने की हीं बात सोचते हैं, गरीब को बिल्कुल ठीक लगता है वह कहता है काम-धाम बन्द करो, मोर्चा लगावो, हड़ताल करो।' (पृ.५०-५१)

वस्तुतः यह सब बात समाजवाद या मार्क्सवाद न समझने का परिणाम है। समाजवादी उत्पादन की बात सोचते हैं। पर सत्य स्थिति को नजर-

न्दाज भी नहीं कर सकते। मार्क्स के अनुसार कल कारखानों के पूर्ण विकास में उत्पादन साधन इने-गिने लोगों के हाथ में ही रह जायगा। राष्ट्र के करोड़ों व्यक्ति बेकार होंगे। इससे राष्ट्र की क्रयशक्ति घटने से, माल की खपत रुक जायगी, जिससे पून्जीवाद की प्रगति में अवश्य ही रुकावट होगी। उसका एक मात्र इलाज उत्पादन साधनों का राष्ट्रीयकरण ही है।

आज सभी राष्ट्रों में राष्ट्रीयकरण हो ही रहा है। भले वह वर्ग क्रांति के द्वारा न होकर पार्लियामेन्ट्री सिस्टम से हो रहा है। परन्तु औरों के पास इसका उतर नहीं है। मार्क्स ने इसका उतर दिया है कि विनिमय मूल्य का आधार श्रम ही है। अतः लागत खर्च और मशीनका भाड़ा, पून्जीका सूद आदि देने के बाद सम्पूर्ण मुनाफा श्रमिक का ही है। अतः श्रमिकको जो मिलता है वह उसके श्रमका पूरा फल नहीं है, यह बात पीछे कही गयी है। रिकार्डों आदिकोने मांग और पूर्ति को विनिमय मूल्यका आधार माना है। वेन्थम आदिकोंने मांग के आधार पर ही वेतन या मजदूरी का भी निर्णय किया है। मजदूरों की मांग अधिक होती है, पूर्ति कम होती है, तो श्रम का दाम बढ़ जाता है। पूर्ति ज्यादा हो, मांग मांग कम हो, श्रम का दाम वेतन या मजदूरी घट जायगी। परन्तु यहीं संघर्ष उठ खड़ा होता है। कारखाने वाले आपसी संघटन द्वारा वेतन की दर तय कर लेते हैं। अतः मजदूर को उससे वेतन सही भी नहीं मिलता। अतः लाचार होकर उसे मिल मालिकों के निर्णयानुसार वेतन लेना पड़ता है।

मजदूरों के पास एक ही रास्ता है कि वे भी संघटित होकर हड़ताल कर दें, तो झखमार कर मिलमालिकों को मजदूरों की मांग माननी पड़ती है। परन्तु मजदूरों के सामने प्रश्न है; प्रति दिन के भोजन का? मिल मालिक तालाबन्दी कर सकता है। अपने भावी लाभ की दृष्टि से वे नुकसान उठा कर भी महीनों तालाबन्दी कर सकते है। परन्तु लाखों मजदूरों के पास खाने को कहां से आयेगा? महीनों तक। मिल मालिक के लिए परेशानी नहीं होती। आज कल तो सरकारें तालाबन्दी को गैर कानूनी घोषित कर देतीं हैं। आज कल सरकारी कारखानों में हड़ताल चलती है। तब वेखटके सरकार तालाबन्दी की घोषणा कर देती है। इसी आधार पर भारत में

वायुयान कर्मचारियों की हड़तालें असफल हुई थीं।

सब कुछ कहने का सार यह है कि श्रमिकों की गरीबी एवं बेवसी का फायदा उठाकर, उसे लाचार करके, उसे थोड़े दाम में काम करने को विवश किया जाता हैं। अतः यह शोषण ही है। आज कोई भी व्यक्ति बैङ्क से कर्ज लेकर, पूञ्जी लगाकर काम करता है, सूद सहित कर्ज लौटा देने पर, सारी कमायी कमाने वाले की ही मानी जाती है। दो रुपये से सूत खरीद कर, कपड़ा बना कर, बेच कर, दो रुपये और उसका सूद दे देने पर जैसे अवशिष्ट मुनाफा उसके श्रमका ही फल है, यही बात बड़े कारखानों के सम्बन्ध में भी लागू किया जा सकता है।

'चुपचाप काम करो। काम करने से लाभ होगा, आन्दोलन से नहीं' यही बात तो भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन चलाने वालों को अंग्रेज कहते थे। परन्तु स्पष्ट है वह उपदेश उनका स्वार्थ से ही प्रेरित था। परोपकार बुद्धि या हितैषिता के नाते वे वैसा नहीं कहते थे। ठीक यही स्थिति पूञ्जीपतियों के उपदेशों की है।

आदमी की आत्मा होती है। परन्तु जब वह पक्षपात की बात करता है, तो यही लगता है कि उसने अपनी आत्मा को बेच दिया है।

समाजवाद-पूञ्जीवाद परस्पर विरोधी हैं

आप कहते हैं कि, समाजवाद और पूञ्जीवाद को जो परस्पर विपरीत समझता है वह गलत समझता है। पूञ्जीवाद की विकसित अवस्था समाजवाद हैं। (पृ० ५२)। परन्तु यह कहना ही असंगत है। समाजवाद के अनुसार शोषक, शोषित दोनों वर्गों का चूहा, बिल्ला जैसा अमिट विरोध है। उसकी समाप्ति वर्ग क्रान्ति से ही है। बोनस, भत्ता, वेतन वृद्धि से नहीं। कोई समझौते का रास्ता है ही नहीं।

आगे वे कहते हैं कि, समाजवाद लक्ष्य हैं। लेकिन पूञ्जीवाद प्रक्रिया हैं। इस लिए मैं समाजवाद के पक्ष में हूं और पूञ्जीवाद के विपक्ष में नहीं।

परन्तु यह सब निर्मूल एवं निष्प्रमाण ही है। जो समाजवाद की प्रक्रिया से आपरिचित हैं, वही इस तरह की अव्यवस्थित बात कर सकता है।

उनका कहना है कि, "आप कल जवान से आज बूढ़े हो गये। पहले बालक थे, फिर जवान हुये, फिर बुढ़े हो गये। यह विकास है। पून्जीवाद से समाजवाद आयेगा। समाजवाद से साम्यवाद आयेगा फिर अराजकतावाद आयेगा। जिस दिन साम्यवाद ठीक से व्यवस्थित होगा, राज्य की कोई जरूरत नहीं रह जायेगी। लेकिन यह क्रमिक अवस्थायें हैं समाज की। वे विरोध नहीं हैं, विकास हैं। (पृ० ५२)

पर यह भी निर्मूल है। यह कहा जा चुका है कि पून्जीवाद मरकर ही समाजवाद को ला सकता है, जीते नहीं। उत्पादन साधनों का व्यक्तिगत होना पून्जीवाद है; समाज या सरकारके हाथमें रहना समाजवाद है? पहले आपकी दृष्टि थी कि सम्राट के झूंठे कपड़ों के समान समाजवाद अत्यन्त असत् था। परन्तु अब वह पून्जीवाद की विकसित अवस्था हो गया। वस्तुतः साम्यवाद कोई समाजवाद से पृथक् वस्तु नहीं है। अराजकता वाद तो कोई शासन व्यवस्था ही नहीं है।

भारतीय दृष्टि से कृतयुग में राजा और राज्य से विहीन अवस्था अवश्य थी। परन्तु वह अराजकता नहीं कही जा सकती। क्योंकि उसमें पूर्ण रूप से धर्म का नियन्त्रण था।

वे कहते हैं कि, 'हिन्दुस्तानमें टाटा और बिड़ला समाजवाद ला रहे हैं। सम्पत्ति वे पैदा कर रहे हैं, अगर वह बड़े पैमानेपर फैलायी जाय तो सम्पत्ति के उत्पादन की परिणति अन्तिम समाजवाद ही है"। (पृ० ५३)। इसका पूर्व युक्तियों से खण्डन किया जा चुका है। मार्क्स के वाद, प्रतिवाद, संवाद, सर्वहारा की क्रान्ति, या बगावत का [illegible] उत्तर चाहिये। उसके बिना केवल प्रतिज्ञा मात्र से उसका खण्डन नहीं हो सकता।

अवरोध हटाने के लिये ही नहीं शोषण की व्यवस्था रोकने के लिये भी क्रान्ति आवश्यक होती है। लेनिन की भविष्य वाणी के अनुसार मास्को से पेकिंङ्, पेकिङ्ग से कलकत्ता और कलकत्ता से लन्दन की तरफ कम्यूनिज्म

जायगा। आप स्वयं भी मानते ही हैं कि पून्जीवाद के पास कोई दर्शन नहीं है। इसलिये वह खड़ा नहीं हो पाता।

रूस में बेचैनी है। परेशानी है, तनाव है। रूस का युवा वर्ग उत्तेजित और परेशान है" (पृ० ५४)। यह कहकर अपने मन को कोई संतुष्ट भले कर ले, पर वस्तु स्थिति इसके विपरीत है। आज संसार में रूस विज्ञान की ओर बराबर अग्रसर हो रहा है। सोयूस, अपोलो की संयुक्त अन्तरिक्ष यात्रा ने आज दुनिया की आँखे खोल दी है। कई अंशों में रूस इक्कीस पड़ रहा है अमरीका के मुकाबले, उन्नीस नहीं। रूस अपने अंतरिक्ष यान को धरती पर ही उतार लेता है। पर अभी तक अमरीका अपोलो की गति को इतनी धीमी नहीं कर पाया कि उसे पृथ्वी पर उतार सके। उसे समुद्र में ही उतारना पड़ता हैं।

भौतिक वादी पून्जी के पास समाजवाद को परास्त करने के लिये कोई तर्क, कोई दर्शन नहीं है। किन्तु भारतीय अध्यात्म वाद से अनुप्राणित धर्म नियन्त्रित अर्थ तन्त्र के पास दर्शन है, फिलासफ़ी है। उसके द्वारा ही समाजवाद के तर्क परास्त किये जा सकते हैं। अभी नहीं कुछ दिन बाद पून्जीवाद ही समाजवाद लायेगा, यह कोई तर्क नहीं है। आत्मा, आत्मा की बात करके ही भौतिकवाद का निराकरण नहीं किया जा सकता। परन्तु रजनीश आत्मवादकी सिद्धिमें भी कोई अकाट्य तर्क नहीं उपस्थित कर सके। इन सब विषयों पर विस्तृत विचार हमारे ('मार्क्सवाद और रामराज्य' ग्रन्थ में देखिये।)

प्रेम, परोपकार प्राणियों का स्वाभाविक धर्म

श्री रजनीश जी कहते हैं कि "आज तक मनुष्य को जो बहुत सी गलत बातें सिखायी गयी हैं, उनमें से एक यह भी है कि अपने लिये जीना बुरा है मनुष्य पैदा ही इसलिए होता है कि वह अपने लिए जिये। बाप बेटा के

लिए ज़िये, बेटा बाप के लिए जिये । समाज के लिए, राष्ट्र के लिए, मानवता के लिए जियो, भगवान के लिए, मोक्ष के लिए जियो । दूसरे के लिए जिना भी अपने लिये जींने की गहरायी का परिणाम है, वह उसकी सुगन्ध है"। (पृ० ५६)

एक तरह से यह बात ठीक ही है, क्योंकि संसार में परप्रेम का आस्पद आत्मा ही होता है—

"नवा अरे सर्वस्य कामाय सर्वं प्रियं भवति आत्मनस्तु कामाय सर्वं प्रियं भवति" पति, पत्नी, पुत्र, धन सम्बन्धी धर्म, कर्म, देवता सभी में होने वाला प्रेम आत्म प्रेम का ही शेष है, जैसे सब मे प्रेम आनन्द के लिए होता है, आनन्द में प्रेम अन्य के लिये होता है। वैसे ही सबमें प्रेम आत्मा के लिये होता है। आत्मा में प्रेम अन्य के लिये नहीं होता। परन्तु यहाँ आत्मा का अर्थ देह नहीं है, इन्द्रिय नहीं, मन नहीं, बुद्धि नहीं, अहंकार नहीं, किन्तु प्रत्यक् चैतन्याभिन्नब्रह्म है। उसी के लिये सब होता है। वह किसी का शेष अंग नहीं होता। जिसका जैसा स्व होता है, उसका वैसा ही स्वार्थ होता है। देहाद्यात्मवादी का स्वार्थ रोटी, कपड़ा, धन दौलत में होता है, किन्तु ब्रह्मात्मवादी का स्वार्थ ब्रह्म चिन्तन है।

स्वारथ सांच जीव कहं एहू।
मन क्रम वचन रामपद नेहू ॥ (रामचरितमानस)

परन्तु किसी मिलमालिक या मजदूर का भी वही स्वार्थ नहीं होता।

वे कहते हैं कि, 'कोई आदमी इस जगत में दूसरे के लिये नहीं जी सकता। मां बेटे के लिये नहीं जीती। अगर वह बेटे के लिये मरती है तो वह मां का आनन्द है। बेटा सिर्फ बहाना है। अगर एक आदमी डूब रहा हो, आप किनारे पर खड़े हों दौड़कर उस आदमी को बचाने के लिये अपना जीवन उसपर लगाते हैं तो आप आदमी को डूबते नहीं देख सकते। वह आपकी पीड़ा है। उस पीड़ा को मिटाने के लिये आप कूदे हैं और उसको बचाया है। अगर वह पीड़ा न होती तो आप न बचाते। और लोग भी तो थे किनारे जिन्हें कोई पीड़ा नहीं हुई थी। जब कोई आदमी किसी को नदी

में डूबने से बचाता हैं, तब भी अपनी ही पीड़ा निवारण के लिये। बहुत गहरे में आप अपनी ही पीड़ा का निवारण करते हैं। अगर एक आदमी जाकर गरीबों की सेवा कर रहा है, तो वह गरीबों की सेवा नहीं कर रहा है। उसके भीतर एक पीड़ा पैदा हो रही है। वह उस पीड़ा को दूर करने के लिये गरीबों की सेवा करने गया है। आज तक कोई दूसरे के लिये नहीं जिया। सब अपने लिये जीते है। एक अपने लिये ऐसा जीता है— जिसमें दूसरे का मरना भी आ जाय, मिटाना भी आ जाय। एक ऐसा जीता है जिसमें दूसरे का जीवन विकसित होता है। लेकिन परोपकार की बात बहुत खतरनाक हैं। जब भी हम किसी आदमी को सिखाते हैं कि दूसरों के लिये जियो, तभी वह आदमी रुग्ण, बीमार, और अस्वस्थ होना शुरू हो जाता है।" (पृ० ५६-५७)

परन्तु यह निःसार है, क्योंकि पूर्वोक्त गुणों को ही परोपकार कहा जाता है। ऐसे लोग सब नहीं होते जो दूसरों के दुःख को न देख सके। कई लोग अपने सुख के लिये दूसरों का प्राण ले लेते हैं। कई दूसरों के सुख के लिये प्राण दे देते हैं। पहली कोटि के लोग स्वार्थी कहलाते हैं, दूसरी कोटिके लोग सज्जन और परोपकारी कहलाते हैं। सिद्धान्ततः वह परोपकार ही वस्तुतः उसके हित में है। स्वार्थपरायणता उसके हित में नहीं है।

कहा जाता है कि, "एक आदमी ने अपने बेटे को कहा कि भगवान तुझे इसलिये पैदा किया है कि तू दूसरे की सेवा कर, पुराने जमाने का बेटा होता तो मान लेंता। पर उस नये जमाने के बेटे ने कहा मैं समझ गया भगवान ने मुझे दूसरों की सेवा के लिये पैदा किया है। मैं पूछना चाहता हूं कि भगवान् ने दूसरों को किस लिए पैदा किया है? इसीलिये कि मेरी सेवा लें। तो भगवान् ने मेरे साथ बड़ा अन्याय किया या इसीलिये कि दूसरे मेरी सेवा करें और मैं उनकी सेवा करूं। पर उल्टा झंझट क्यों करना। एक एक आदमी अपनी सेवा कर ले, यह सरल व्यवस्था है। मैं आपकी सेवा करूं; आप मेरी सेवा करें। ऐसी उलझन में पड़ने का क्या प्रयोजन और ध्यान रखे जब भी आदमी दूसरे की सेवा करता है तो नीचे पैर भी दबाता

है, गर्दन भी पकड़ता है। गर्दन पकड़ने की यात्रा पैर पकड़ने से शुरू होती है। सेवक से सदा सावधान रहना, क्योंकि वह कहेगा मैंने सेवा की है। मैंने कुर्बानी की है, तुम्हारे लिये। जो बाप बेटे को कहेगा कि तेरे लिये मैंने सब गवांया है। वह उस बेटे की गर्दन जिन्दगी भर दबायेगा। वह कुर्बानी का बदला लेगा। अगर किसी मां ने कहा कि मैंने कुर्बानी की है बेटे के लिये तो वह मां ही नहीं। उसे मां होने का पता ही नहीं चला। मां होने का आनन्द है बेटे से उसका कोई सम्बन्ध नहीं। अगर बेटा न होता तो जिन्दगी भर तड़पती किसके लिये न्योछावर कर दूं, किसके लिये परेशान हो जाऊं, किसके लिये जागूं, किसकी प्रतीक्षा करूं।" (पृ० ५७-५८)

पर यह सब बात निरर्थक ही है। संसार में सकाम, निष्काम दोनों ही प्रकार के मनुष्य होते हैं। कई लोग बिना प्रयोजन के माता, पिता को भी रोटी पानी तक नहीं देना चाहते हैं। उपयोगितावाद की महत्ता इसी में हैं। परन्तु कुछ लोग निष्काम भी सेवा करते हैं। साधारणतया माता, पिता भी अपने पुत्र का पालन पोषण स्वाभाविक रूपसे करते हुए भी उससे बहुत कुछ आशा रखते हैं। परन्त एक पशु अपने बच्चे के लिए प्राण देता है, बिना कुछ चाहे। मनुष्य वृद्धावस्था में पुत्र से सेवा लेता है। पर पशु ऐसी कोई सेवा नहीं लेता है। सब अपनी अपनी सेवा नहीं कर सकते। सब समान नहीं होते। सबकी अवस्था भी समान नहीं होती। वृद्धावस्था में सेवा के लिये दूसरे की अपेक्षा होती है। वृद्ध अपने बच्चों से सेवा चाहता है। बच्चे भीबूढ़े होने पर अपने बच्चों से सेवा चाहेंगे। कई नौकरी देकर सेवा लेते हैं। कई लोग धन के लिये नौकरी करते हैं, दूसरों की सेवा करते हैं। कई लोग छोटी सेवा कर उसका बड़ा फल चाहते है। पर कई वैसा कुछ भी नहीं चाहते। भजन, ध्यान भी कई लोग कामना से करते हैं। पर कई निष्काम भाव से ही भजन करते हैं। फिर भले ही निष्काम भजन का बहुत ऊंचा फल होता हो पर उनके मन में यह बात नहीं रहती है। यदि किसी का वैसा स्वभाव भी हो तो भी, यह तो मानना ही पड़ेगा कि वैसा स्वभाव अच्छा है, दुर्लभ है। अन्यथा संसार में भलायी बुराई का कोई रूप ही न रहेगा।

एक आस्तिक तो इन कुतर्कों में न पड़कर शुद्ध रूप से शास्त्रोंका आश्रयण करता है। शास्त्रानुसार माता, पिता, गुरुजनों की सेवा करता है। ईश्वर की अराधना करता है। कितना भी कोई तार्किक क्यों न हो, उससे भी पदे पदे भूल होती हैं। बहुत तार्किक सर्वतोऽभिशङ्की भोजन करने, पानी पीने में, भी मिलावट की शङ्का करता है। शास्त्रों के अनुसार कोई लौकिक प्रयोजन से प्रेरित होकर किसीकी सेवा करता है। कोई भी धर्मवादी केवल तर्कों के बल पर कर्त्तव्य, अकर्त्तव्य का निर्णय नहीं कर सकता। अतएव मनुष्य में केवल स्वार्थ ही रहता है, परार्थ रहता ही नहीं, यह कहना सर्वथा गलत है। दुनियां में कई लोग दूसरों का नुकसान न पहुंचाकर स्वार्थ साधन करते हैं। कई लोग दूसरों का नुकसान पहुंचाकर भी स्वार्थ सिद्ध करते हैं। कई लोग अपना बलिदान करके भी दूसरों का हित करते हैं। पर कई लोग बिना स्वार्थ के भी दूसरों को नुकसान पहुंचाकर प्रसन्न होते हैं।

'एके सत्पुरुषाः परार्थं घटकाः स्वार्थं परित्यज्य ये
सामान्यास्तु परार्थमुद्य मभृतः स्वार्थाविरोधेन ये
तेऽमी मानुष राक्षसाः परहितं स्वार्थाय निघ्नन्ति ये
ये निघ्नन्ति निरर्थकं परहितं ते के न जानीमहे ॥'

(नीतिशतकम् ७५)

कई विशिष्ट मनुष्य परार्थमें ही सुख मानते हैं। सामान्य लोग तो स्वार्थ पूर्ति में ही लगे रहते हैं।

"क्षुद्राःसन्ति सहस्रशः स्वमरण व्यापार मात्रोद्यमाः
स्वार्थो यस्य परार्थ एव स पुमानेकः सतामग्रणीः ॥"

(सुभाषित २८५)

यह कहना भी ठीक नहीं है कि, 'मनुष्यका व्यक्तित्व, मनुष्य का स्वभाव अपने जीने का है। स्वार्थ ही स्वाभाविक है", क्योंकि सामान्य लोग भले स्वार्थी हों, परन्तु इस आधार पर कोई व्यवस्था नहीं चलती। सामान्य रूपसे भले ही कोई घाट तौलता हो, झूठ बोलता हो तो भी व्यवहार, व्यवस्थापक झूठ बोलने, घाट तौलने को प्रश्रय नहीं दे सकता। हाब्स एवं हल्वेशियस के

मतानुसार प्राणी परोपकार भी आत्महित के लिये ही करता है। लेकिन देखा जाता है कि व्याघ्र सरीखे क्रूर प्राणी भी अपने बच्चों के प्राण रक्षणार्थं अपना प्राण देने को तय्यार होते है। तो कहना पड़ता है कि प्रेम और परोपकार भी प्राणियों में स्वाभाविक धर्म होते हैं।

हम यह कह चुके है कि व्यक्ति का, समाज का समन्वय होना चाहिये। व्यक्ति को समाज के अविरोधेन विकसित होनेका पूर्ण अधिकार है। यहां तक कि व्यक्ति के निर्बल, दुर्बल होने पर तो समाज ही दुर्बल हो जायगा।

यह ठीक है कि, 'कोई कहता है कि इस्लाम के लिये जावो मरो, बहिश्त निश्चित है। कोई कहता है कि हिन्दू के लिये जियो। कोई कहता है कि तुम मर जावो, मूर्ति को बचाओ, मन्दिर को बचावो। कोई कहता है कि पाकिस्तान के लिये जिवो कोई भी नहीं कहता कि प्रत्येक व्यक्ति अपने लिये जिये जबकि वही सरल और सहज है।" (पृ० ५६) परन्तु फिर भी जो राग प्राप्त है, उसका उपदेश नहीं होता है। अपने लिये तो सभी जीते ही है। उसके लिये उपदेश की आवश्यकता नहीं है। परन्तु धर्म के लिये, परोपकार के लिए, प्रजाहित के लिए, जीना ऊंची बात है। फिर भी सर्वत्र विवेक से तो काम लेना ही चाहिए। जो अपने लिये जी रहे हैं, लेकिन दिखाते फिरते हैं कि हम किसी और के लिये जी रहें है, यह तो पाखण्ड है ही, इसका समर्थन नहीं किया जा सकता।

कहा जातां है कि, "नेता मरता है अपनी कुर्सी के लिये, दिखाता है कि वह राष्ट्र के लिये मर रहा है। राजनीतिक मरा जा रहा है देशों के लिये, संस्कृतियों, सभ्यताओंके लिये। धर्मगुरु मरे जा रहे हैं धर्मोंके लिये, सम्प्रदायों के लिये, लेकिन कोई भी इन सब के लिये नहीं मर रहा है। मर रहे हैं लोग अपने पद प्रतिष्ठा के लिये।" (पृ० ५६)

हो सकता है, ऐसा भी, विवेकीको इन्हें विवेकसे समझना चाहिये। दम्भी के चंगुल से बचना ही चाहिये। परन्तु अगर उसमें सचायी है तो अवश्य ही उसको महत्व देना ही चाहिये।

"स्वार्थी होना स्वस्थ होना है। महावीर, बुद्ध, क्राइस्ट से ज्यादा स्वार्थी

दुनिया में नहीं पैदा हुये। वे अपने आनन्द, वे अपने मोक्ष, अपनी आत्मा के लिये अपनी परमात्मा की खोज के लिये, जिये और उनसे बढ़कर कोई परोपकारी भी नहीं हुआ। क्योंकि जो आदमी अपने को पा लेता है, वह अपने को बाटना शुरू कर देता है।" (पृ० ५९-६०) परन्तु जैसा कि मैंने कहा कि, यह स्वार्थ पून्जीवादी स्वार्थ नहीं है, जो आदमी सबका अर्थ आत्मा या परमात्मा जान लेता है, वह शोषण में नहीं प्रवृत्त होता।

"स्वारथ साँच जीव कहं एहू।
मन क्रम वचन राम पद नेहू ॥ (रामचरित मानस)

∴ उस स्वार्थ से समाजवादी भी नहीं टकरायेगा।

जो मर जाता है वही बरसता है। पर यहां तो सेवक बदला मांगता है। सेवक मालिक बनना चाहता है। जो देश के लिये जेल गया है, वह सर्टिफ़िकेट दिखाता है। राष्ट्रपति का पद उसे चाहिये। सच्ची सेवा नहीं कर सकता जो परम स्वार्थी हैं। जिस दिन अपना मंगल, अपना सुख, आनन्द मिल जाता है, अनिवार्य रूपेण दूसरों के जीवन में उनका सुख फैलना शुरू हो जाता है।' (पृ० ६०) यह भी ठीक है। भारतीय सिद्धान्त भी यही है कि—

'स्वयं तीर्णः परान् तारयति'

जो स्वयं तर जाता है वही दूसरों को तार सकता है। जो स्वयं भ्रष्ट हैं वह तो दूसरों को भी भ्रष्ट ही करता है, तारता नहीं। पर यदि इन सब का तात्पर्य पून्जीवाद का समर्थन हैं, तो वह सर्वथा गलत है।

संघर्ष का मूल कारण पून्जीवादी स्वार्थ परायणता

वे कहते हैं कि, "पून्जीवाद की व्यवस्था अत्यन्त नैसर्गिक व्यवस्था है। वहां हम किसी को किसी पर बलिदान नही कर रहे हैं। प्रत्येक व्यक्ति अपने लिये जी रहा है, जीने की खोज कर रहा है। इस खोज से दूसरे के लिये भी जियेगा; क्योंकि कोई भी आदमी अकेला नहीं जी सकता है। जीने का मतलब

ही संघर्षो में जीना है। यदि हजारों आदमी बैठकर अपना सुख खोजें तो हजार गुना सुख कल पैदा होगा। वह सुख बंटेगा, कहां जायेगा। लेकिन प्रत्येक आदमी दूसरे के लिये, कुर्बानी करे अपना सुख न खोजे और हजार आदमी में हर आदमी ९९९ के लिये कुर्बानी करता रहे, तो वहाँ दुःख हीं दुःख इकट्ठा हो जायगा। सुख इकट्ठा नहीं हो सकता। स्वार्थके कारण नहीं, दुनिया परोपकार की अस्वाभाविक, अवैज्ञानिक शिक्षाओं के कारण परेशान है। अगर कोई अपना ही सुख खोज ले तो काफी है। दुनिया धन्यवाद देगी। क्योंकि जो अपना सुख खोज लेता है, वह दूसरों को दुःख देना बन्द कर देता हैं। जो जानता हैं कि उसे सुख चाहिये, वह यह भी जानता है कि दूसरों को दुःख देकर सुख लाना असंभव है। वह दूसरों को दुःख देना बन्द कर देता है, और जो जानता हैं कि दूसरों को दुःख देने से मेरा सुख कम होता है, वह यह भी जान लेता है कि दूसरों को सुख देने से मेरा सुख बढ़ता है। यह जब दिखायी पड़ता है, तब जिन्दगी मे क्रान्ति आ जाती है। लेकिन दुनियाके लोग त्याग सिखा रहे हैं। वे कहते हैं, स्वार्थ छोड़ो। स्वार्थ शब्द का अर्थ बड़ा साफ है। स्व का मतलब आत्मा है, लेंकिन जो मेरे हित में है, क्या जरूरी है वह आपके अहित में हो ? जितनी गहराई में उतरेगें उतना ही पायेगें कि जो मेरे हित में हो सकता है; वह आपके अहितमें नहीं हो सकता। यह असंभव है कि जो मेरा हित हो, बहुत गहरे में वह आपका अहित हो जाय। उल्टी बात यह है कि जो आपका अहित हो वह अनजाने में मेरा भी अहित हो जाय। (पृ० ६१-३२)

वस्तुतः उक्त विचार अत्यन्त आधारहीन हैं। आत्मा या परमात्मा का साक्षात्कार करना परम स्वार्थ है। इससे किसी को दुःख नहीं मिलेगा, यह अलग बात है, परन्तु पून्जीवादी या समाजवादी को उस सुख से उतना प्रयो- नहीं हैं। पून्जीवादीका स्वार्थ है, निर्विघ्न मुनाफा कमाना। समाजवादी का स्वार्थ है, वह मुनाफा व्यक्ति के काम में न आकर, समाज के काम में आये। करोड़ों बेकारों, बेरोजगारोको काम, दाम मिले, आराम मिले। ये स्पष्ट बातें बड़ी से बड़ी फिलासफी से भी उड़ायी नहीं जा सकती हैं। आत्म साक्षात्कार का स्वार्थ, ब्रह्मानन्द का स्वार्थ करोड़ों में एक के सामने है। परन्तु रोटी,

कपड़े का प्रश्न सबके सामने हैं। संसार में ऐसे भी स्वार्थ हैं, जो बिना दूसरों का अहित किये संभव ही नहीं। एक मछली खानेवाले का स्वार्थ बिना सैकड़ों मछलियों को मारे पूरा नहीं हो सकता। मांस भक्षकका स्वार्थ, बिना प्राणियों की हत्या किये पूरा नहीं हो सकता। योगभाष्य का तो मत है कि बिना प्राणियों का उपघात किये भोग बन ही नहीं सकता।

"नहि भूतान्यनुपहत्य भोगः संभवति"

तत्वज्ञानी भी भोजन तो करता हैं। सुना जाता हैं कि बुद्ध भगवान शूकर का मांस खाकर मरे थे।

यदि पून्जीवादी परहित सोचे तो उसे बेकारी, बेरोजगारी बढ़ाने वाले छोटे व्यापारी एंव उद्योग धन्धों को चौपट करने वाले, बड़े कारखानों को बन्द करना पड़ेगा। परन्तु ऐसा करेगा तो अवश्य उसके स्वार्थ की हानि होगी। स्वार्थ पूरा करेगा तो, उससे ही करोड़ों व्यक्तियों का अहित होगा।

वेदादि शास्त्रों के अनुसार तो बृहदारण्यक की मधुविद्या सबको एक दूसरे का मधु होना बताती है। जगत का जैसे ईश्वर कारण है, वैसे ही समष्टि जीव भी अपने अपने कर्मों द्वारा जगन्निर्माण के हेतु हैं। अतएव एक बृक्ष से हजारों व्यक्तियों को सुख पहुंचता है, हजारों को दुःख पहुंचता है। जिनके पुण्यों से बृक्ष बना है, उनसे उनको सुख होता हैं पर वह जिनके पापसे बना हैं उनके दुःख का भी हेतु होता हैं। वह बृक्ष अपनी वायु से अपनी छाया से, अपनी लकड़ी से बहुतों को लाभ पहुंचाता है। पर उसके गिरने से कई प्राणी मर भी गये। उसकी लकड़ी की आगसे कितने ही जल भी गये। इसीलिये व्यवहार दशा में भी उपकार-अपकार की बातें होती है। हम हजारों प्रकार से प्राणियों के द्वारा सुख लेते हैं। बृक्षों की छाया से लाभ उठाते हैं। नदियों से लाभ उठाते हैं। जमीनसे, वर्षा से, सूर्य से, वायु से लाभ लेते हैं। अन्न, फल, पैदा करते हैं, दूध दही पैदा करते है। आकाश से लाभ लेते हैं, हजारोंको हमसे सुख पानेका अधिकार हैं। अतः हम अपना सुख प्राप्त कर ले, यही बहुत नहीं हैं। इसलिये शास्त्रानुसार हमें यज्ञ द्वारा देवताओं का, स्वाध्यायाध्ययन द्वारा ऋषियों का, श्राद्धतर्पण द्वारा पितरोका, आतिथ्य

द्वारा मनुष्यों का, बलिवैश्व द्वारा सर्व भूतोंका, तर्पण करना पड़ता हैं। दूसरों को हम दुःख देगें तो दुःख वरसा होगी। दूसरों के लिये कांटे बोयेगें तो वे काँटे हमारे ही काम आयेगे। आनन्द बांटेगें तो हजार गुना आनन्द हमें मिलेगा। प्रेम देगे, तो प्रेम मिलेगा। क्रोध देगे तो क्रोध मिलेगा। यह तो शास्त्रवादी आस्तिकों का ही पक्ष है। यह सोचने, समझने, व्यवहार में लाने पर तो संसार की सब समस्याओं का समाधान हो जायेगा। परन्तु क्या प्रत्यक्ष स्वार्थ के सामने व्यवहार में उसका कोई उपयोग होता है? इसके अतिरिक्त सज्जन पुरुषों के प्रति प्रेम के बदले प्रेम मिलता है। जो डाकू आक्रामक हमारे राष्ट्र पर, हमारे स्वत्व पर हावी होना चाहता है, वह प्रेम का पात्र नहीं हैं। उससे निबटने के लिये तो क्रोध की ही अपेक्षा होगी।

"शमेन सिद्धि मुनयो न भूभृतः"

शम से सिद्धि मुनियों को मिलती है, राजाओं को नहीं, जो मायावी के प्रति मायावी नहीं होते, वे पराभूत हो जाते हैं—

"व्रजन्ति ते मूढधियः पराभवं भवन्ति माया विषयेन मायिनः"

व्यवहार में साधु के साथ ही साधुता का व्यवहार उचित होता है। मायावी के साथ मायावी होना ही उचित है।

"यस्मिन्यथा वर्तते यो मनुष्यस्तस्मिन्तथा वर्तितव्यंः सधर्मः।
मायाचारो मायया वर्तितव्यः साध्वाचारः साधुना प्रत्युपेयः॥"

(महाभारत)

अपनी अपनी स्वार्थ सिद्धि में सन्तुष्ट होना भी कठिन हैं। क्योंकि स्वार्थ की सीमा छोटी नहीं होती है। तभी तो एक व्यक्ति का प्रयोजन पचीस एकड़ खेत से चल सकता है, पर ऐसे भी लोग समाजमें थे, जो हजारों, लाखों एकड़ खेत के मालिक थे। उससे भी अधिक संग्रह का प्रयास जारी रहता हैं। एक एक व्यक्तियों के सैकड़ों विशाल भवन हैं। बाजार की बाजारें हैं, प्रयोजन उनका थोड़े में भी सम्पन्न हो सकता था, परन्तु किराया भाड़ा से धन बटोरने की प्रवृत्ति थोड़े में कहां संतोष करने देती है? पृथ्वी सीमित है, वह रबड़ की तरह बढ़ती नहीं, खाने भी सीमित हैं। यदि कुछ ही लोग उन पर

हावी हो जायं, तो दूसरे लोगों को सीमित स्वार्थ साधन का भी कौन सा मार्ग है ?

पून्जीवाद ने आज तक आर्थिक असंतुलन दूर करने का कोई रास्ता नहीं खोजा। वेदादि शास्त्रों के वताये हुए मार्गों का आदर नहीं किया। अतः स्वार्थो में संघर्ष अनिवार्य है। निःसाधन भूखे लोगों पर केवल शान्ति के उपदेश का कोई असर नहीं पड़ सकता। सब फिलासफी रोटी के मिलने के बाद ही समझ में आती है। इस मार्ग से समाजवाद की आशा केवल दुराशा ही है।

यह कहना कि, 'भ्रष्टाचार, ब्लेक मार्केटिंग, रिश्वत आदि का कारण पून्जीवाद नहीं है। सबका कारण पून्जी का न होना है। जहां पून्जी कम होगी, वहां भ्रष्टाचार नहीं रोका जा सकता। लोग होगें बहुत, पून्जी होगी कम, तो लोग सब तरह के रास्ते खोजेंगे। अगर भ्रष्टाचार मिटाना है तो भ्रष्टाचार मिटाने की फिक्र ही न करें, भ्रष्टाचार सिर्फ वाईप्रोडेक्ट है। उससे कुछ लेना देना नहीं है। (पृ० ६३)

अधिक सम्पत्ति से ही भ्रष्टाचार

यह ठीक नहीं, भ्रष्टाचारी तो यही उपदेश चाहेगा कि भ्रष्टाचार की फिक्र न करो, परन्तु जो उसके शिकार होते हैं, फिक्र उन्हे करना ही पड़ता है। "सम्पत्ति कम होने का स्वाभाविक परिणाम भ्रष्टाचार है। "हिटलर के किसी कारागार में बन्द किसी वैज्ञानिक समाजवादी ने लिखा है कि यहां आकर मुझे आदमी की असली तस्वीर का पता चलना शुरू हुआ, क्योंकि चौवीस घण्टे में एक ही बार रोटीं मिलती थी, वह भी बहुत थोड़ी होती थी। पेट नहीं भर पाता था। वहां ऐसे लोगों को देखा गया जो कवि थे, लेखक, डाक्टर, इन्जीनियर एवं प्रतिष्ठित थे। कोई कहीं का मेयर था, उसको भी रात में दूसरों की वेग में रोटी का टुकड़ा चुराते देखा। जिनके नैतिकता की सदा चर्चा होती थी, जिनके अभिनन्दन होते थे, हजारो थैलियां

जिन्हें भेंट की जाती थी, उस आदमी को भी एक सिगरेट के लिये घुटने टेककर गिड़गिड़ाते देखा। किसी को कुछ नहीं लग रहा था कि, क्या गलत हो रहा है। उसने अपने सम्बन्ध में भी लिखा कि मैं एक एक टुकड़ा करके थोड़ी देर रुककर खाता था, पेट नहीं भरता था। चौबीस घण्टे रोटी के सम्बन्ध में ही सोचने लगा हूं। ईश्वर, आत्मा, अचेतन, साइकोलोजी, एनालिसिस, सब खो गये। उसने कहा मैं कभी नहीं कह सकता कि अगर मौका मिल जाय तो मैं किसी की रोटी न चुरा लूं।

एक आदमी को जब बुखार चढ़ता है तो लोग बुखार को बीमारी समझ लेते हैं। वे कहते हैं कि इसका शरीर गरम हो गया है। १०२ डिग्री बुखार है, ठन्ढ़ा पानी डालकर इसका बुखार इसी वक्त ठीक करो। वे उसको मार डालेंगे, बुखार बीमारी नहीं है, सिर्फ खबर है कि भीतर अव्यवस्था है। जो भ्रष्टाचार हमें दिखाई देता है, वह बीमारी नही, यह खबर है कि पून्जी कम है, लोग ज्यादा हैं। लेकिन भ्रष्टाचार खत्म करना है, पून्जी वढ़ाना नहीं है। लोग कम करने नहीं है लोगों को भगवान् पैदा कर रहा है तो भगवान से बड़ा भ्रष्टाचारी फिर कोई नही, क्योंकि लोग जितना पैदा होते जायंगे, भ्रष्टाचार बढेगा। हमको भगवानके इस वरदानपर रोक लगानी पड़ेगी। हाथ जोड़ कर कहना पड़ेगा, बस अब लोग नहीं चाहिये। अगर लोंग भेजते हैं तो दस-दस एकड़ जमीन और एक-एक फैक्ट्री के साथ भेजो। लोग अनैतिक नहीं हैं, जैसा कि सारे धर्मगुरु और नेता समझते हैं। लोग अनैतिक नहीं हैं, स्थिति अनैतिक है। न कोई नैतिक है न अनैतिक। इस अनैतिक स्थिति में भी अगर कोई बहुत श्रम करे तो नैतिक हो सकता है। लेकिन तब उसकी कुल जिन्दगी नैतिक होने में ही व्यय हो जायगी। वह कुछ उद्योग नहीं कर पायेगा। वस किसी तरह वह अपने को चोरी से रोक ले। आंख बन्द करके, हाथ पैर रोक कर खड़ा हो जाय........लेकिन यह स्थिति अनैतिक है। अतः इस स्थिति को वदलने का सवाल है न कि भ्रष्टाचार रोको का, आन्दोलन चलाने का, नारे लगावो, भाषण दो, कोई भी न रोक पायेगा, रुकेगा, अपने आप अगर सम्पत्ति बढ़ती है, सम्पत्ति काफी हो तो कोई चोरी नहीं करेगा। (पृ. ६४—६५)।

उक्त बातें भी अविचारित रमणीय ही हैं। यद्यपि वस्तुओंका अभाव कुछ हद तक अनेक दोषोंका जनक होता है, तथापि मूल रूप से, तृष्णा, असंतोष आदि ही दोषों के मूल कारण है। रोटी के अभाव से पीड़ित रोटी का चोरी करता है। एतावत चोरी दोष नहीं है, यह नहीं कहा जा सकता। बुखार भी रोग माना जाता है, तभी उसकी चिकित्सायें आयुर्वेद आदि सभी पद्धतियों में है। कोई भी रोग धातु वैषम्य से ही होता हैं। बिना भीतरी अव्यवस्था के कोई भी रोग नहीं होता। अतः भ्रष्टाचारी भी रोग ही हैं। आधुनिक गरीबों का पक्ष लेने वाले भी तो यही कहते हैं कि, किसी आदमी ने डाका डाला, यह मत देखो, यह देखो कि उसने क्यों और कैसी स्थिति में डाका ड़ाला और उसका जिम्मेदार कौन है ?

एक आदमी का लड़का बीमार है। उसके इलाज के लिये पैसे नहीं, खाने को अन्न नहीं, पहनने को कपड़े नहीं, नौकरी की तलाश में वह दर-दर की खाक छान चुका। जैसी तैसी नौकरी मिली भी, तो पेट नहीं भरता। प्रिय पुत्र की रक्षा चाहता हैं, कर्ज भी मांगने से नहीं मिलता। फिर उसके सामने चोरी, डाका के सिवा रास्ता भी क्या है ? इसका जिम्मेदार वह नहीं परिस्थिति जिम्मेदार है, वह समाज जिम्मेदार है, वह पून्जीपति जिम्मेदार है, जिसने सब साधनों को स्वायत्त कर रखा है। उसने अपने प्राण बचाने के लिये, अपने बच्चे की रक्षा के लिए मार्ग रोकने वाले की हत्या भी कर दी उसका इसमें क्या दोष ? परन्तु क्या ये तर्क उचित हैं ? क्या इन्ही तर्कों के आधार पर अदालत उस हत्यारे डाकू को इन जुर्मो से बरी कर देगी ? एक मनुष्य काम से पीड़ित होकर लाचारी से किसी की बहू बेटी को पकड़ लेता है, इसमें भी उसका क्या दोष ? अगर उसके पास दस बीस सुन्दरियां होती तो वह ऐसा क्यों करता ? समाज ने उसके लिए वैसी परिस्थिति पैदा कर दी। हजार प्रयत्न करने पर भी उसे पत्नी नहीं प्राप्त हो सकी, तो उसका क्या दोष ? स्पष्ट है ऐसे तर्क तर्काभास हैं। इनसे कोई भी अदालत प्रभावित नहीं हो सकी है। फिर यहां तो गरीबों की बात नहीं। अभ में नहीं, सम्पत्ति वाले ही अधिकाधिक भ्रष्टाचारी हो रहे हैं। कोई साधा-

रण कानिस्टिविल या क्लर्क तो रुपये दो रुपये का रिश्वन लेता हैं, वही रिश्वत सामने भी आती है, परन्तु बड़े आदमी लाखों डकार जाते हैं, उसका पता भी नहीं लगता है। किसी साधारण दुकानदार का घाट तौलना सामने आ जाता हैं, उसकी ब्लैक मार्केटिंग सामने आती है, परन्तु बडे-बड़े पून्जीपति, मिल मालिक अरवों दो नम्बर का काला धन बटोरते हैं, उनका पता भी नहीं लग पाता है। वे रिश्वत देकर भी छूट जाते हैं। सैकड़ों हत्यायें, सैकड़ों भ्रष्टाचार उनके क्षम्य हो जाते हैं, घूसके प्रभाव से। यह सब लाचारी काभ्रष्टाचार नहीं है, वे भूखे नहीं हैं। वे कपड़े विना, इलाज बिना, परेशान होकर यह सब नहीं कर रहे हैं।

आज़ आपात स्थिति की घोषणा एवं सरकारी जागरुकता से बड़े-बड़े चेहरों की नकाब उतर रही है। अरबों सम्पत्ति वाले सेठों, राजाओं, रानियों की तस्करी आज सामने आ रही है। क्या यह अनैतिक स्थिति, भ्रष्टाचार नहीं हैं?

त्याग के लिए विवेक आवश्यक

वस्तुतः संतोष बिना संसार में सब दरिद्र ही दरिद्र हैं। सहस्रपति, लक्षपति बनने का प्रयत्न करता है। लक्षपति, कोटिपति बनना चाहता है। कोटिपति, अर्बुद पति बनना चाहता है। इन्हें ही ईर्ष्या भी सबसे अधिक है। यही देश विदेश में विविध वस्तुओं एवं विदेशी मुद्राओं की तस्करी कर रहे हैं। सन्तोष वाले गांव के साधारण किसान, दूकानदार फिर भी कुछ न कुछ धर्म, सत्य की बात सोचते हैं। साधु महात्माओं में भी धनवान् साधु महात्मा भ्रष्टाचारों के आश्रय हैं, साधारण नहीं। साधारण गृहस्थ पाप से ड़रता है। परन्तु ये बड़े गुरू घण्टाल, बड़ें उपदेशक किसी से ड़रते नहीं। उनकी दृष्टि में संसार मिथ्या है। उनका जाल फौरेब मिथ्या ही है। उनको उससे कुछ भी डर नहीं है।

कहा जाता है कि, "बुद्ध यशोधरा को छोड़कर जा सकते हैं जंगल में १२

वर्ष तक तपश्चर्या के लिये। उसकी रक्षा का प्रबन्ध था। पर आज तो १२ वर्ष में वह चकले में मिलेगी। (पृ. ६५)। सब ही समान नहीं होते। आज भी वहुत से त्याग करते हैं। पत्नियाँ अपना निर्वाह करती हैं अपना धर्म रखती है।

बुद्ध, महावीर महल छोड़कर आये थे, इसे दुहराने की क्या आवश्यकता है? यह कोई आवश्यक नहो है कि, महल प्रप्त करके ही छोड़ा जाता है। स्वर्गादिकी आकांक्षाओं का भी त्याग करना आवश्यक है। पर स्वर्ग कहाँ, किसको प्राप्त है? विवेक बल से ही ऐहिक आमुष्मिक सुख का राग हटाया जा सकता है। विवेक न हो तो एक झोपड़ी, एवं एक गुदड़ी से भी ममता हटनी असंभव होती हैं। "बुद्ध के पास सुन्दरियां थी, उनको देख लिया था आरपार से उन्होंने कि अब स्त्री में कुछ नहीं है लेकिन स्त्रीसे दूर खड़े होकर जो ब्रह्मचर्य साध रहे हैं, वे यदि स्त्री से बुरी तरह वंध जायेंगे तो इसमें अस्वाभाविक कुछ भी नहीं है न? असम्भवमें संतोषको पकड़ लेना एक वात है, लेकिन सम्पन्नता को विवेकसे छोड़ देना बिल्कुल दूसरी बात है। (पृ०६७)

यह भी निःसार है। शुक आदि विषयों से सम्बन्ध बिना जोड़े ही वीतराग हुए हैं। शास्त्रों के अनुसार ब्रह्मचर्य से सन्यास ग्रहण करना उत्कृष्ट है। पंङ्क में हाथ डालकर हाथ धोने की अपेक्षा पङ्क को दूर से ही स्पर्श करना उत्तम है।

"प्रक्षालनाद्धि पङ्कस्य दूरादस्पर्शनं वरम्"

बिना हजारों सुन्दरियां प्राप्त किये ब्रह्मचर्य नहीं पालन किया जा सकता, विना महल मिले उनका त्याग नहीं किया जा सकता, बिना अपार धन मिले चोरी, भ्रष्टाचार, रिश्वत छोड़ी नहीं जा सकती, यह दलील सर्वथा निःसार है। इसका मतलव यह होगा कि न अरबों रुपये कमा पायेगा, और न वह चोरी भ्रष्टाचार से मुक्त हो सकेगा।

प्राचीन शिक्षाएं मानवता का आधार

आप प्राचीन शिक्षाओं से पिण्ड छुड़ाने की बात करते हैं, परन्तु रूपान्तर

से उन्हीं का सहारा लेते हैं। अगर गतिमान समाज पैदा करना है तो संतोष पर नहीं, असंतोष पर आधार रखना पड़ेगा। (पृ० ६८)। पर यह कोई नयी बात नहीं है। शम से सिद्धि मुनियों को मिलती है, राजाओं को असंतोष ही चाहिये। भारतीय नीति ग्रन्थ यह कहते ही हैं—

"असन्तुष्टा द्विजा नष्टाः सन्तुष्टश्च महीपतिः"

फिर इन शिक्षाओंसे कैसे मुक्त होने की बात करते हैं? वे कहते हैं, 'अगर गांधीजीकी बात मान ली जाय तो पचास करोड़की संख्यामेंसे कमसे कम हिन्दुस्तान में पचीस करोड़ आदमी आज ही मरने की हालत में छोड़ देने पड़ेंगे। अगर सारी दुनिया उनकी शिक्षा मान लें तो तीन अरब की आबादी में कम से कम दो अरब आदमियों को इसी वक्त मरना पड़ेगा। दुनिया के चंगेज़, हिटलर आदि सारे हत्यारे मिलकर जितना मनुष्यको मार न सके, उतना गांधी का विचार अकेला मार सकता है। क्योंकि वे औद्योगिक युग से पहले सामन्ती युग की बात करते रहे हैं। चरखा, तकली आदि इतनी बड़ी मनुष्यता के लिये उपयोगी नहीं है। आज के युग में इतने मुंह हैं, इतने सिर हैं, इतने लोग हैं, आदिम व्यवस्था से गान्धी जी इन्हें नहीं बचा सकते हैं।

(पृ० ६९-७०)

'रामराज्य के जमाने की दुनिया बड़ी छोटी थी।' उक्त बातें केवल सनक हैं, रामायण, महाभारत के अनुसार रामराज्य के समय आज की अपेक्षा आबादी बहुत अधिक थी, यह प्रमाणित है। आज की बेकारी बढ़ाने वाली व्यवस्था से हर एक को लघु उद्योगों से स्वावलम्बी बनाना कहीं अधिक संभव है। गान्धी जी की सादगी ने लाखों मनुष्यों को राहत दी थी। उनके कुटीर उद्योग का आज भी समझदार आदर कर रहे हैं। जैसा कि हमने पहले कहा कि, महायन्त्रों के निर्माण से वस्तुओं का खूब निर्माण होगा। वस्तुयें बाजार में पड़ी रहेगी पर बेकार, बेरोजगार जनता उन्हें खरीद न सकेगी। क्योंकि उसके पास पैसे न होंगे। इसी लिए मनु ने महायन्त्रों के निर्माण को उपपातक ठहराया था। पहले गायों, बैलों का पालन होता था। गोबर, गोमूत्र के विस्तारसे सर्वत्र नमी होती थी, ठीक बादल होते थे, संतुलित वृष्टि होती थी।

अतिवृष्टि, अनावृष्टि का मुकाबिला नही करना पड़ता था। दूध, दही घी की बहुतायत होती थी। गोबर, गोमूत्र की खाद से अन्न खूब पैदा होता था। हृष्ट पुष्ट मनुष्य, पशु-पक्षी स्वस्थ रहते थे। जनसंख्या भी संतुलित रहती थी। परिवार नियोजन के प्रपञ्च में पड़कर, पुरुषों को नसवन्दी कराकर, नपुंसक बनने की जरूरत नहीं पड़ती थी, औरतों को आपरेशन या लूप लगाकर बन्ध्या बनने की जरूरत नही पड़ती थी। रासायनिक खादों, खेत के कीड़ों को मारने के लिए जहरीली औषधियों, एवं जहरीले गैंसकी आवश्यकता नहीं पड़ती थी। नये-नये रोग नहीं होते थे। उनके लिए इन्जेक्शनों की अपेक्षा भी नहीं होती। थी। शुद्ध शास्त्रीय मार्ग से चलने पर वही सब सुविधायें आज भी हो सकती हैं।

यह कहना भी निर्मूल हैं कि, "टैकनालाजी ही मनुष्य की दरिद्रता मिटायेगी और वही जब जमीन पर ज्यादा लोग हो जायं तो उनको चांद पर पहुंचायेगी। मंगलपर पहुंचायेगी। क्योंकि पचास सालके बाद जमीन पर रहने योग्य जगह न रह जाएगी। मैं नही जानता कि गान्धीजीके चरखे द्वारा किस भांति आदमी को चांद पर पहुंचाया जा सकेगा और किस तरह अरबों मनुष्यों को भोजन और कपड़े दिये जा सकेगें।" (पृ० ७२-७३)

यह सब कल्पना की उड़ान है। चांदपर पहुंचने वाले लोग अरबों, खरबों पाउन्ड एवं डालरों को खर्च कर भी जहां रह रहे हैं, वहां सुख, सुविधा; बढ़ाने में असमर्थ हो रहे हैं। इसकी अपेक्षा महायन्त्रों को निरुद्ध करके लघु उद्योगों द्वारा, या अपने हाथ पैरों द्वारा, उपयुक्त वस्तुओं का उत्पादन करके आपस में सुखपुर्वक जीवन व्यतीत कर सकते हैं। टैक्नालाजी वालों को स्वयं ही यह विश्वास नहीं है कि वे वर्तमान मनुष्यों के भोजन की व्यवस्था कर सकेगें। तभी तो वे नपुंसकीकरण, वन्ध्याकरण का रास्ता अपना रहे हैं। गर्भपात जैसे जघन्य पापों के द्वारा जनसंख्या कम करने के लिए प्रयत्नशील हैं। परन्तु गोपालन, गोसम्बर्द्धन आदि द्वारा तथा गोबर, गोमूत्र के द्वारा सम्पूर्ण धरती पर नमी लाकर, बादलों एवं वृष्टियों को संतुलित करके, अति-वृष्टि अनावृष्टि रोकी जा सकती हैं और उसी के प्रभाव से अधिक मात्रा में,

बड़े परिमाण के जव, गेहूं, चना, चावल, आम, सेव, सन्तरे, अंगुर उत्पन्न करके खाद्य समस्या सुलझायी जा सकती हैं।

श्री भागवतादि पुराणों के अनुसार हाथी से भी बड़े आकार के जामुन फल कभी होते थे। उससे भी बहुत बड़े आम्र होते थे। अंगुर, सेव आदि भी बड़े हो सकते हैं। छोटे-छोटे खेतों में बड़े परिमाण तथा बड़ी संख्या में अन्न हो सकते हैं। इसी तरह दूध भी बढ़ाया जा सकता है। राम की सेना के अठारह पद्‌म यूथपति एवं उनके यूथों के असंख्य बानरों को एक-एक पर्वत में ही फल फूल खाने को मिल जाते थे। दूध, मक्खन, अन्न फल, फूल की बहु-तायत, से शरीर की चर्बी बढ़ने से, शक्तिशाली स्त्री पुरुष नियमित संतान ही पैदा करते थे। वैसे भी उनके सन्ताने कम होती हैं। अधिकांश दरिद्रों, भुक्खड़ों को ही अधिक सन्तान पैदा होती हैं। अमीर, बलवान सन्तानके लिए तरसते ही रहते हैं। इस तरह बिना गर्भपात आदि पाप के ही जनसंख्या नियंत्रित हो सकती है। ब्रह्मचर्य, वानप्रस्थ, सन्यास आश्रमों के प्रोत्साहन से भी जनसंख्या का नियन्त्रण हो सकता है। किसी व्यक्ति के गुण या दोष पर विचार या उसका समर्थन मुख्य विषय नहीं है।

श्री रजनीश कहते हैं कि, "दुनिया में समाजवाद, कभी नहीं हुआ और हिंदुस्तान में तो बिल्कुल नहीं हुआ और न अतीत में कभी होने की संभावना ही थी। (पृ० ७३) परन्तु वह ऐसा कहकर इतिहास का ही अपलाप करते हैं। भले जिस अर्थ में समाजवादी समाजवाद मानते है, उस अर्थमें समाजवाद न रहा हो, परन्तु रजनीश जिस अर्थमें समाजवाद मानते हैं, वह तो रामराज्य में था ही क्योंकि उस समय बिना दाम के ही सब अपेक्षित वस्तु मिल जाती था—"वस्तु बिनु गथ पाइये"

महाभारत के अनुसार सभी नियन्त्रित रह कर सब परस्पर रक्षण करते थे। राजा, राज्य और दण्ड विधान की आवश्यकता पड़ती ही नहीं थी। यह कहना भी असंगत है कि 'पुरानी 'संस्कृति से जितनी भी जल्दी हो छुटकारा मलना चाहिये क्योंकि "अशक्तास्तत्पदंगन्तुं ततो निन्दां प्रकुर्वते, लोमड़ी के अंगुर खट्टे होने की कहानी प्रसिद्ध ही है। कहा जाता है कि 'अगर

अच्छी बात होती तो हम उसे छोड़कर ही न आये होते। हम बड़े भ्रम में हैं। हमारा ख्याल है कि भारत सोने की चिड़ियाँ थी। कभी नहीं थी। हाँ कुछ लोगों के लिये थी, कुछ लोगों के लिये आज भी है, सबके लिये कभी भी नहीं थी। हम सोचते हैं कि भारत में कभी ताले नहीं पड़ते थे। लोग इतने अच्छे और ईमानदार थे कि घरों में ताले नहीं पड़ते थे। पर यह अगर सच हो सकती हैं तो इस अर्थ में कि ताले उन घरों में नहीं थे, जिसके भीतर कुछ चुराने को था ही नहीं। या तो ताले बनाने की अक्ल पैदा नहीं हुयी होगी, पर ताले नहीं थे यह इस बात का सबूत नहीं था कि लोग चोर नहीं थे, क्यों कि सारे शास्त्र कह रहे है कि, चोरी मत करो, सारे ऋषि, महर्षि सुबह से शाम तक यहीं समझाते हैं कि चोरी मत करो। सुकरात ढ़ाई हजार वर्ष पहले यूनान में यहीं कहता गया कि लड़के बिगड़ गये हैं, कोई मां बाप की नहीं सुनता, शिक्षकका कोई आदर नहीं करता, लोग बेईमान, भ्रष्टाचारी हो गये।

६ हजार वर्ष पुरानी किताब है चीन में, अगर उसकी भूमिका पढ़े तो एसा लगता है कि आज के सुबह के अखबार का एडिटोरियल है। उसमें लिखा है—लोग बहुत बिगड़ गये है। नैतिक ह्रास हो गया है। लोग भौतिक वादी हो गये हैं, भ्रष्टाचार बढ़ गया है, कोई किसी की सुनता नहीं। ऐसा लगता है कि महाप्रलय निकट है। उससे भी पुरानीं पुस्तक है, उसमें लिखा भी है कि पहले के लोग अच्छे थे। पर यह कल्पना से अधिक कुछ नहीं हैं। असल में हम पहले के लोगों को भूल चुके हैं। महावीर आदि कुछ महापुरुष थे। जब तक समाज का तख्ता बिलकुल ब्लैक बोर्ड न रहा हो, कुछ लोग रहे होंगे, बाकी सारी मनुष्यता एक कालें तख्ते की तरह है। कोई मनुष्यता कभी अच्छी नहीं थी जितनी अच्छी आज है। उतनी अच्छी भी नहीं, थी, हम रोज अच्छायी की ओर विकास कर रहे हैं। लेकिन सतयुग हो चुका। अब यह कलियुग हैं, अब तो पतन ही पतन है, जिस कौम के मन में यह धारणा बैठ जायगी कि आगे पतन ही पतन है, उसका पतन निश्चित है। अब तो सब बुरा होना है, यह हमने पक्का मान लिया है, यह संस्कार बन गया है, जब कोई किसी को छूरा भोंकता है, तो कहते है कि आ गया कलियुग, जब

कोई किसी की स्त्री लेकर भाग जाता है, तो हम कहते हैं कि आ गया कलियुग और आपके ऋषि मुनि लेकर भागते रहे तब सतयुग था। राम की औरत चोरी चली गयी तब सब अच्छी दुनिया थी, और आज किसी दूसरे रामचन्द्र की औरत चोरी चली जाय, तो कलियुग आ गया। (पृ० ७४-७५)

उक्त विचार आपात रमणीय हैं। इनमें पूर्वपक्ष उत्तरपक्ष दोनों ही एक जैसे ही हैं। रजनीश की दुनिया भी उनके संस्कारों की ही एक उपज हैं, वह पाश्चात्य आधुनिक प्रभावोंसे पूर्ण प्रभावित एक अपटूडेट मसीहा हैं। अब तो आचार्य और उसके बाद भगवान भी हो गये। कुछ उनके भक्त भी उनके अनुरूप मान्यता वाले हैं। कुछ जैन संस्कार के कारण वे कभी कभी महावीर की प्रशंसा अवश्य कर देते हैं, कभी बुद्धकी भी, क्योंकि वे दोनों उनके संस्कारों के कुछ पोषक हैं। परन्तु भगवान् विष्णु, भगवान् शिव, भगवान राम, भगवान् श्री कृष्ण एवं ऋषि मुनि उनको नहीं जंचते हैं। वे वेदशास्त्रों से तो अपरिचित हैं ही। फिर भी कभी कभी वेदान्त की बात भी कर लेते हैं, शायद श्री कृष्ण का कीर्तन भी करते कराते हैं। इसी सब का शिविर भी लगता है, वे पुराने किसी भी उपदेश को उपयुक्त नहीं मानते। उनकी वैसी मान्यतायें उनके लिये भले ठीक हों, परन्तु प्रमाण की कसौटी पर ठीक नहीं उतरती हैं। भारतवर्ष वैदिक संस्कृति का केन्द्र रहा है, अब भी सर्वाधिक सम्मान वेदादि शास्त्रोंका ही है। वेदादि शास्त्रों एवं तदनुगुण दर्शनोंके विद्वान यहां आज भी हैं। रजनीश उनके साथ विचार विविमय के लिये कभी भी प्रस्तुत नहीं होते, अनेक बार अवसर आने पर वे पराङ्मुख हो जाते है।

वस्तुतः बुद्ध, महावीर आदि तो ढाई हजार साल के हैं, परन्तु वेदशास्त्र अनादि है। बीज अंकुर की धारा कब से है, दिन रात की व्यवस्था, कर्म एंव कर्म फलों की व्यवस्था अनादि ही है। संपूर्ण विश्वका उत्पादक, पालक, संहारक, सर्वाधिष्ठान सर्वेश्वर, निरीश्वरवादी संस्कारों के कारण रजनीश की बुद्धि में नहीं आता।

शास्त्रों के अनुसार अनादि संसार में अपरिगणित वार सृष्टि और प्रलय हुये हैं और होंगे, फिर सतयुग त्रेता कलियुग भी आते जाते रहतेहैं। दुनिया

में उत्थान और पतनभी होता ही रहता है। सतयुगमें भी हिरण्यकशिपु एवं हिरण्याक्ष हुये हैं। त्रेता में भी रावण, कुम्भकरण हुए हैं, शुम्भ निशुम्भ, रक्तबीज, महिषासुर आदि भी उन्ही युगों में हुए हैं। आज कलियुग में भी शंकराचार्य, रामानुजाचार्य, विक्रमादित्य, तुलसीदास, ज्ञानेश्वर, सूरदास, तुकाराम आदि हुये हैं। फिर भी 'वाहुल्येन व्यपदेशा भवन्ति' के अनुसार बहुलता के अभिप्राय से वैसा व्यवहार है। कृतयुग या सतयुग में सत्वगुण की बहुलता होती है। अतः अच्छे लोगों की बहुतायत होती है। तमोगुण, रजोगुण का विकास कम होता है। अतः हिरण्याक्ष, रावण आदि कम होते हैं। इसी दृष्टि से महाभारत में कहा गया है कि कृतयुग में सभी ब्रह्म विद्वरिष्ठ एंव् धर्मनिष्ठ थे। सब एक दूसरे के पोषक ही थे, शोषक नहीं थे। अतएव राज्य राजा तथा संविधान आदि की उपेक्षा नहीं थी ! आगे चलकर उत्तरपीढ़ियोंमें सत्व की कमी और रजतम के विकास से लोगों में राग, लोभ, क्रोध, मोह आदिका प्रवेश हुआ और फिर मात्स्य न्याय फैला, तब नियन्त्रणके लिये राजा, राजनीतिशास्त्र, राज्य आदि कीव्यवस्था हुई। फिर गुणानां संभूय क्रिया कारित्व हैं। सत्व, रज, तम कोई भी गुण अकेले कोई काम नहीं कर सकते। अतः कितना भी सत्व का विकास हो तो भी रज, तम का अत्यन्त निर्मूलन नहीं होता हैं। अतः कभी भी कुछ न कुछ तामस राजस व्यक्ति रहते हैं। अतः शाश्वत वेदादि शास्त्र सदा सर्वदा के लिये विधि निषेधोंके द्वारा कर्त्तव्य अकर्त्तव्य का ज्ञान कराते ही रहते हैं। तदनुसार ही वेद शास्त्रानुसारी ऋषि, महर्षि, विधिनिषेध का वर्णन करते रहते है। अतः चोरी आदि के निषेध से यह अर्थ निकालना कि चोरी की निबृत्ति कभी हुयी ही नहीं, सर्वथा असंगत है। इसी तरह रामायण के राम-राज्य में भी चौर्य्यं आदि नहीं होते थे। वहां भी दण्ड केवल यतियों के हाथ से ही दिखता था। दण्ड विधान की आवश्यकता नहीं प्रतीत होती थी। भेद की बात, नर्त्तक नृत्य, समाज में ही दिखती थी। अतीत विषयोंमें इतिहासको छाड़कर अन्य प्रमाण हो ही नहीं सकते, अन्यथा जैसे भाव सिद्धिमें प्रमाण की अपेक्षा होती हैं, उसी प्रकार अभाव सिद्धिमें भी प्रमाणकी अपेक्षा होती ही हैं। अर्थात् अतीत काल में अच्छे लोग नहीं थे, सब खराब ही थे इसके लिये भी

प्रमाणकी अपेक्षा है ही। चोरीका निषेधमात्र प्रमाण नहीं हो सकता है। क्योंकि वैसा निषेध तो सावधानीके लिये भी हो सकता है। आज भी तो अपराधियों की संख्या की अपेक्षा निरपराधों की संख्या अधिक ही हैं। सैनिक संगठन और युद्ध की तय्यारी सदा रखी जाती है। पर युद्ध कभी ही होता है। परमाणु बम, हाइड्रोजन वम, की खूब तय्यारी रहने पर भी उसका प्रयोग हिरोशिमा, नागाशाकी, को छोड़कर कभी, कही भी हुवा ही नहीं। इसी प्रकार अच्छे बुरे कर्मो का उपदेश और उसकी जानकारीं कराने का प्रयास सदा रहने पर भी निषेध का अवसर कभी ही होता है।

आस्तिक लोग अनादि वेदादि शास्त्रों से ही भला कर्म जानकर अच्छे कर्म का अनुष्ठान करते हैं। निषिद्ध का परिवर्जन करते हैं।

भलेउ पोच सब विधि उपजाये।
गनि गुणदोष वेद विलगाये॥

यह जरूरी नहीं है कि निषिद्धाचरण के प्रचलित होने पर ही निषेध होता है। यह भी आवश्यक नहीं कि अच्छी स्थिति से बुरी स्थिति नहीं आती। जैंसे बुरी स्थिति के पश्चात अच्छी स्थिति आती है, वैसे ही अच्छी स्थिति से बुरी स्थिति आती है। रामायण; भारत की दृष्टि से विदित होता है कि भारत कभी बहुत अच्छा था और कभी बहुत खराब स्थिति में भी था। कुछ लोगों के लिये तो सभी देश सोने की चिड़िया हो सकते हैं। परन्तु व्यवहार वाहुल्याभिप्राय से होता है।

दैहिक दैविक भौतिक तापा।
राम राज काहुहि नही व्यापा॥
नहिं दरिद्र कोउ दुःखी न दीना।
नहिं कोउ अबुध न लक्षण हीना॥
सब नर करहिं परस्पर प्रीती।
चलहिं स्वधर्म निरत श्रुति नीति॥

आदि वचनों के द्वारा राम राज में सबके सुखी रहने की बात हैं ही।

यदि यह सब मिथ्या है तो बुद्ध, महावीर महात्मा थे, इसे कैसे सत्य माना जायगा ?

अच्छायी की ओर विकास करना अच्छा है। प्रयास करने से आज भी अच्छायी आ सकती है। पूर्वजों के अच्छे इतिहासों को गन्दा बताने से कोई लाभ नहीं, उलटा द्वेष से, अन्तरात्मा दूषित होगी। छुरा भोकना पहले भी बुरा था, आज भी बुरा है। राम की स्त्री का अपहरण हुआ, वह भी अच्छा नहीं माना जाता। आज भी वैसा होता है, तो भी अच्छा नहीं। जैसे पुराना सब अच्छा नया सब बुरा, यह धारणा गलत है, उसी तरह नयी सब बात अच्छी, पुरानी सब बुरी, यह धारणा भी गलत ही है।

"पुराणमित्येव न साधुसर्वं न चापिसर्वं नवमित्यवद्यम्
सन्तःपरीक्ष्यान्यतरद्भजन्ते मूढ़ः परप्रत्ययनेय बुद्धिः ॥"

ठीक इसके विपरीत यह भी कहना चाहिये—

"नवीनमित्येव न साधु सर्वं पुराणमित्येव न चाप्यवद्यम् ।
सन्तः परिक्ष्यान्यतरद्भजन्ते मूढः परप्रत्ययनेय बुद्धिः ॥"

ऋषि मुनि तथा देवता भी कोई खराब काम करते थे, तो उनकी भी निन्दा होती थी। ऋषि लोगों की यह भी व्यवस्था थी कि बड़े लोगोंके उसी आचरण का अनुकरण करना चाहिये जो शास्त्रके अविरुद्ध हैं। शास्त्र विरुद्ध आचरणों का नहीं—

"यानिमेऽनवद्यानि तानि त्वयोपास्यानि नो इतराणि',

जो मेरे निर्दोष कर्म हैं, उन्हीं का आदर करो, सदोष कर्मों का नहीं। अन्धेरा सदा ही पीछे नहीं रहता है, कभी आगे भी रहता ही है। संसार में कभी स्वर्ण युग, कभी लौहयुग आता ही रहता है। इतिहास से स्पष्ट विदित होता है कि प्राचीनकालमें तीन रुपये के मनभर घी मिलता था। चावल, गेहूं आदि तो कहीं अधिक सस्ते थे और पहले गेहूं, चावल आदि बिकते ही नहीं थे। वे बिना मूल्य के ही मिलते थे। राम के राज्य में धन, धान्य समृद्ध लोग थे। युधिष्ठिर के समय उत्तम स्थिति थी। चाणक्य के समय भी सब वस्तुयें सुलभ थी। फिर यह कहना कि ताला इसलिये नहीं लगता था कि चुराने की

कोई चीज ही नहीं थी, या लोगोंको ताला बनाने ही नहीं आता था, साहस मात्र है। जहाँ पुष्पकयान बन सकता था वहां ताला नहीं बन सकता था, यह कोइ निर्लज्ज व्यक्ति ही कह सकता है।

अतीत उपेक्षणीय नहीं

"आदमी रोज अच्छा हो रहा है। भविष्य अच्छा बनाना है तो स्वर्ण युग आगे है, अन्धेरा पीछे है, प्रकाश आगे हैं।" (पृ०७५) यह भावना बनाना खराब नही है। परन्तु वस्तु स्थिति से आंख मीचना भी बुद्धिमानी नहीं।

यह कहना भी भावातिरेक ही है कि "इतना अच्छा आदमी पृंथ्वी पर कभी नहीं था, जितना अच्छा आदमी आज है। अभी बिहारमें अकाल पड़ा। दो करोड़ आदमी मर सकते थे इस अकाल में, लेकिन मरे केवल चालीस, यह दो करोड़ आदमी कैसे बचे? सारी दुनिया दौड़ पड़ी दूर देशों से। अनजान बच्चो ने अपने खाने के पैसे बचाये, आइस्क्रीम के पैसे बचाये, सिनेमा देखनेके पैसे बचाये। बिहारमें कोई अनजान आदमी मर रहा है, जिससे कोई सम्बन्ध नहीं है, उसको बचाना है. ऐसा कभी नहीं हुआ था, पहली दफा हुवा है, बियतनाम में युद्धहो रहा था। बम्बई के प्राण कांप रहे थे। कहीं कुछ गलत हो रहा हैं। सारी दुनिया पीड़ा अनुभव कर रही है। मनुष्यता पहली दफा बोध को उपलब्ध हुई है। मनुष्य की समझ विकसित हुयी है। मनुष्य का सुख विकसित हुआ है। (पृ० ७६)

जो बात अच्छी है, वह अच्छी ही है। परन्तु मनुष्य के सामने अतीत तो प्रत्यक्ष नहीं होता है। इतिहासों से ही अतीत जाना जाता है। आर्ष इतिहासों पर जो विश्वास ही नहीं करता, उसे अतीत की बात कैसे समझायी जाय? यह भी तो इतिहास है ही कि महात्मा रन्ति देव ने स्वयं भूखे रहकर प्राण दे दिया परन्तु अपने भोजन एंव पानीसे ब्राह्मण, शूद्र, अन्त्यज तथा श्वानों के प्राण बचाये। शिवि ने कबूतर का प्राण बचाने के लिए अपने शरीर का मांस और अन्त में अपने सम्पूर्ण शरीर को श्येन रूपधारी इन्द्र को प्रदान कर

दिया। सम्राट दिलीप ने नन्दिनी गो की रक्षा के लिये अपने आप को सिंह के सामने अर्पित किया था। कितने ही बोधिसत्व प्राणीरक्षार्थ अपने आपको खतरे में डालते थे। सामूहिक सहायता भी सदा से ही चलती आ रही है। इन्द्रादि लोको में होने वाली अव्यवस्था के निराकरणार्थ भूमि के राजा, असुरों से युद्ध करने स्वर्ग जाते थे। सामान्यतया मध्यकाल में यातायात, सञ्चार, तार, फोन आदि की व्यवस्था न होने से दुनियायी ज्ञान कम होता था, सुतरां सहायता भी कम हो पाती थी। सिद्धान्ततः मनुष्यों के ही नहीं, देवताओं, ऋषियों, पशुओं, पक्षियों तक ही नहीं, प्रेत, पिशाच आदि के भी कल्याण की चेष्टा चलती थी। साथ ही आज यह परिस्थिति है कि आज मकान में रहने वाले ही एक दूसरे को नहीं जानते। वहीं एक तल्लें में आदमी मर रहा है, दूसरे में विवाह-शादी, राग रंग चल रहा है। दुनिया के दुःख पर आंसू बहा रहे हैं, परन्तु अपने समीप में ही नाक के नीचे ही दो दो पैसे बिना लोग मर रहे है। आज भी बम्बई, कलकत्ता आदि नगरों में पून्जीपतियों के विशाल भवनों के नीचे, फुटपाथों पर हजारों भूखे, नंगे, भूखे रहकर जाड़ेमें ठिठुर कर मरते हैं। हजारो सफेदपोश भूखे रहकर रात गुजारते हैं।

अशान्ति शान्ति का हेतु नहीं है

"अमरीका की आप तारीफ कर रहे हैं। लेकिन वहां हिप्पी बढ़ रहे हैं। बिटल बढ़ रहे हैं, बिटनिक बढ़ रहे हैं। कोई एल० एस० डी ले रहा है, कोई मेस्कलीन ले रहा है, कोई शराब पी रहा है। लेकिन इतने अशांत हैं कि नींद नहीं हैं। टेङ्क्रोलाइजर चाहिए। आप कहते हैं अमरीका में समाजवाद आ रहा है।" उक्त प्रश्नों के उत्तर में रजनीश कहते हैं "यह तो प्रगति है, कोई जानवर अशान्त नहीं होता। कभी किसी भैंस को अशान्त होते सुना है? कभी कोई गधा ऊबा हैं? किसी बैल ने आत्महत्या की है? क्या कारण है, उनकी बुद्धि अविकसित होती है। स्वबुद्धि जितनी विकसित होती है, उतनी संवेदनशीलता होती है, उतनी समझ बढ़ती है। हिप्पी, बिटल आदि बगावती लड़के

हैं। उन्हें इस बात की खबर है कि चेतना नये स्तर को छू रही है। जितनी ज्यादा चिन्ता होगी, उतनी वड़ी शान्ति को उपलब्ध किया जा सकता है।" (पृ० ७६) इत्यादि।

परन्तु यदि अशान्ति, आत्महत्या, नींद न आना, ऊबना ही शांतिका मार्ग है और यही आज के मनुष्य का सर्वाधिक विकास, तब तो, इस विकास से ह्रास ही श्रेष्ठ माना जायगा। ऐसी अशान्तियों के कारण जो परेशान होते हैं, आत्महत्या करते हैं, उन्हें तो शान्ति मिलती नहीं। हां पून्जीपतियों को भले ही इससे शान्ति मिलेगी। परन्तु आपको पता होना चाहिये कि कुत्ते भी पागल हुवा करते हैं। अशान्ति में वे पागल होकर मर जाते हैं। उसके बाद भी उनकी कोई उन्नति नहीं होती है।

यह भी कहना निर्मूल है, "कि जितनी मात्रा में अशान्ति होगी, उतनी ही मात्रा में शान्ति होगी। अगर कोई मनुष्य सिर्फ दो इन्च तक अशान्त हो सकता है, तो वह दो ही इन्च शान्त भी हो सकता है। अगर कोई हजार मील तक अशान्त हो सकता है, तो वह हजार मील तक शान्त रहनेकी क्षमता भी रख सकता है। अगर मन में कुरूप का बोध स्पष्ट हो जाय तो सौन्दर्य का बोध भी उतनाही विकसित होता है। पर ज्यादा चिन्तित होनेके कारण पीछे नहीं लौटना है, आगे जाना है।" (पृ० ७७)। कारण कि अशान्ति कभी भी शान्ति का हेतु नहीं होती है। अभाव जनित अशान्ति, भाव से ही मिटती है। अविवेक जनित अशान्ति विवेक, विज्ञान से मिटती है।

यह भ्रान्ति है कि हिंसा के विस्तार से अहिंसा मिलेगी। मिथ्या भाषण के विस्तार से सत्य बढ़ेगा, चौर्य्य के विस्तार से अस्तेय बढ़ेगा, परिग्रह के विस्तार से अपरिग्रह बढ़ेगा, कामपरायणता से ब्रह्मचर्य बढ़ेगा, अशान्ति के विस्तार से शान्ति का विस्तार होगा। दुनिया में अशान्तों की कमी नहीं है। फिर भी शान्ति दुर्लभ ही है।

वे कहते हैं, जब पहली बार बन्दर झाड़ के नीचे उतरा होगा और चार हाथ पैर छोड़कर दो हाथ पैर से चला होगा, तो पहली बात यह है कि बड़ा अकवर्ड मालूम हुआ होगा और जो बन्दर चार हाथ पैर से चलने वाले वृक्षों

पर बैठे होंगे, उन बुजुर्गोंने कहा होगा कि मूर्ख यह क्या कर रहा है ? कितना बेहूदा मालूम पड़ रहा है, कहीं ऐसा बन्दर चलते हैं, जो दो हाथ से चला होगा उसको तकलीफ हुई होगी। उसकी रात रीढ़ भी दुःखी होगी, परेशानीमें भी पड़ा होगा। लेकिन उसी बन्दर से मनुष्यता विकसित हुई। आज जो विकसित चेतना,पीड़ा अनुभव कररही है, आत्महत्यातक पहुंच गयी है, वही एक नयी मनुष्यता को जन्म देने के करीब है। मनुष्यमें एक नयी चेतनाका उमंग निकट है। इसमें आदिवासी जंगलो के भागीदार न हो पायेंगें और आपके मन्दिरों एवं मस्जिदों में बैठे लोग भजन कीर्तन कर लें, लेकिन भागीदार न हो पायेगें, वे सब सन्तोष खोज रहे हैं। असंतोष से भयभीत हैं। आज जो असंतोष की आग में कूदने को राजी है, और उस आग को भी पार करने की क्षमता दिखायेगा, वही नये-नये मनुष्य को जन्म देने के सौभाग्य का भागीदार होगा।

उस अर्थ में हम अभागे हैं कि हिप्पी नहीं पैदा कर पाये हैं। अभी हम उतने चिन्तित और परेशान भी नहीं हैं, तो हम उतने गहरे शान्त भी नहीं हो सकते। अमरीका उस जगह पर खड़ा है, एक आगें की सीमा रेखा पर जहाँ छलांग करीब हैं। इस छलांग के पहले बहुत बार मन होगा कि पीछे लौट चलो। ऐसे लोग भारतीय साधुओं से प्रभावित होकर कह रहे हैं, कहां के झंझट में पड़ते हो, आंख बन्द करके राम-राम भजो, माला फेरो, पीछे लौट चलो। लेकिन यह वापस लौटाने वाला नारा सदा से था। इससे कोई हित नहीं हुआ। जाना है आगे, पीछे लौटा नही जा सकता। एक बार एक बच्चा चौथो क्लास में आ गया। अब कितना ही मन कहता हो पहली क्लाश में लौट चलो, बड़े सरल सवाल थे वहां, तो भी कोई मतलब नहीं है। वह लौट भी जाय तो भी कोई लाभ नहीं।

मनुष्य का चित्त इतना विकसित हो चुका कि अब उसे रामराज्यमें नहीं ले जाया जा सकता है। यह हो सकता है कि एक दो दिन के लिये अच्छा लगे, जंगल चला जाये, लेकिन दो दिन के बाद ऊब जायेगा।

वास्तव में न कोई भारतीय संस्कृति न कोई मुस्लिम संस्कृति, न कोई ईसायी संस्कृति, कोई संस्कृति पीछे लौटकर मनुष्य को सुख नहीं दे सकती।

आगे और आगे, और जहाँ आगे है वहां न हिन्दू बचेगा न मुसलमान न ईसायी बचेगा। इस भविष्य को लाने के लिये कितनी सृजनात्मकता चाहिये इसका हम विचार करें। कितनी सम्पत्ति पैदा करें। कितना स्वस्थ आदमी पैदा करें, कितना शरीर बलशाली हो, कितना सुख जन्मा सके कि उस सुख से संगीत आये, उस सुख से आत्मा की तलाश भी आये। उस सुख से हम किसी दिन प्रभु के मन्दिर पर भी खड़े हो सकें।" (पृ० ७८-७९)

वस्तुतः यह भी एक आत्म संतोष की ही बात है, अन्यथा इसमें कोई युक्ति और तर्क नहीं है। रजनीश पर यह एक विकासवाद का जादू काम कर रहा है, पर उन्हें यह नहीं मालूम की विकासवाद कभीका खण्डित हो चुका। जहाँ विकास वाद का जन्म हुवा था वहीं विकास वादियों—डार्विन, स्पेन्सर, हैकल आदि के सिद्धान्तों का उनके ही पुत्र, पौत्र, प्रपौत्रों ने धज्जियां उड़ा डाली है।

यदि बन्दरों से मनुष्य का विकास हुआ तो आज भी बन्दरों से मनुष्य का विकास होता हुआ क्यों नहीं दिखायी देता ? स्पष्ट देखा जाता है बन्दर से बन्दर पैदा होते हैं ? फिर सांप से छिपकली और उससे ऊंट की उत्पत्ति कैसे संगत हो सकती है। (विकासवादकी समालोचना हमारे मार्क्सवाद और रामराज्य में देखे)। अतः बन्दरसे आदमी के विकासवाली बात अत्यन्त असंगत है। इसी तरह आज की अशान्ति और आत्महत्या की प्रबृत्ति से किसी नयी मानवता का जन्म होगा, यह आशा दुराशा ही है। यह अशान्ति युग युगान्तर से चली आ रही है। इससे शान्ति की आशा करनी असंगत है। हां यह तो होता ही है कि अशान्ति से व्याकुल प्राणी शान्ति की खोज करता हैं, साधना करता है, तो उसको शान्ति मिलती है। अतः हिप्पी, बिटल बनने का सौभाग्य श्री रजनीशजी और उनके अमरीका को ही मुबारक रहे, ऐसा सौभाग्य भारत को नहीं चाहिए।

धर्म, संस्कृति, मानवता के अनिवार्य तत्व

प्रथम क्लास से चौथे क्लास की प्रौढ़ता प्रत्यक्ष है। अतः कोई भी चौथे क्लास से पहली क्लास में नहीं लौटना चाहता है। परन्तु आज की स्थिति में

क्या कोई बात रामराज्य से अच्छी है ? यदि रामायण, महाभारत आदि के द्वारा वर्णित रामराज्य का उत्कर्ष असत्य कहना है तो सभी ऐतिहासिक वस्तुओं को असत्य ही कहना पड़ेगा, और फिर केवल मनोराज्य पर आधारित नयी मनुष्यता भी कैसे सिद्ध होगी ? मनुष्य को कहीं से लौटना भी पड़ता है। यदि कोई आगे बढ़ते बढ़ते खन्दक या दलदल के द्वार पहुंच गया हो तो, उसको पीछे हटना ही पड़ेगा। आगे बढ़ेगा तो निश्चित विनष्ट हो जायगा। इसीलिये संसार के बुद्धिमान, परमाणु बम आदि के विकास पर प्रतिबन्ध लगाना आवश्यक समझ रहे हैं। वे यह नहीं सोचते हैं कि हम इतने आगे बढ़ कर, अब कैसे लौट सकते है ?

वैसे तो वेदान्ती मानते हैं कि एक निरावरण निर्दृश्य, अनन्त अखण्ड स्व प्रकाश प्रत्यक् चैतन्याभिन्न ब्रह्म वस्तु है। उसमें हिन्दू, मुसलमान, धर्म, कर्म सभ्यता-संस्कृति कुछ भी नही है। परन्तु जब तक अज्ञानावरण निराकरण न हो तब तक तो उसके साधन रूप संस्कृति, धर्म-कर्म अपेक्षित ही है। नौका से नदी पार कर ले तब नौका का त्याग उचित ही है। परन्तु नदी पार किये बिना वैसा सोचना असंगत ही है। जहां सम्पत्ति पैदा करना है, स्वस्थ और बलवान् आदमी पैदा करना हैं, जहां सुख जन्माना है, आत्मा की तलाश करनी है, वहां यदि धर्म न होगा, संस्कृति न होगी, तो सबके सब पशु बन जायेगें। सुख और आत्मा की कल्पना, कल्पना मात्र ही रह जायेगी। पशुओं में हिन्दू मुसलमान का भेद नहीं है। धर्म और संस्कृति का कोई भेद नहीं हैं, पर क्या वे आत्मा की तलाश कर सकेगें ? चेतना, बुद्धि आदि के विकास का परिणाम नियन्त्रण है, संयम है, धर्म है, सभ्यता है, उच्छृङ्खलता नही। प्रभुके मन्दिर के पास जाने के लिये प्रभु के नियमों का आदर करना पड़ेगा। प्रभु की आज्ञा को ठुकराना और प्रभु के मन्दिर के द्वार पर पहुचने की कामना करना, क्या बुद्धिमानी है ? क्या बिना किसी नियम के कोई प्रभु या उसका मन्दिर हो सकता है ? यदि नियम होंगे तो बस वही नियम धर्म कहलाते हैं। यदि अनादि अनन्त या सर्व प्राचीन वेदों के आधार पर प्रभु के नियम न समझ पायेंगे तो, रजनीशजी के अनुसार हिप्पी होकर, अशान्त होने या आत्म हत्या से उन नियमों को कैसे जान पायेंगे ?

लोकतंत्र एवं समाजवाद

यह बात सही है कि लोकतन्त्र एवं समाजवाद का समन्वय नहीं हो सकता, क्योंकि लोकतन्त्र में जनता को नापसन्द सरकार बनाने की छूट होती है। भाषण, लेखन की स्वतन्त्रता होती है। जब कि समाजवाद में वैसा नहीं होता। लोकतन्त्र में व्यक्तिगत भूमि, सम्पत्ति आदि होती हैं, तभी प्रत्येक नागरिक स्वतन्त्र या पार्टी बनाकर, निर्वाचन लड़कर, बहुमत बनाकर, नापसन्द सरकार बदलने समर्थ होता हैं। फिर भी लोक तान्त्रिक समाजवाद का अर्थ हैं वर्ग क्रान्ति बिना भी जनता का बहुमत प्राप्त करके, पार्लियामेन्ट के प्रस्तावों द्वारा व्यक्तिगत उद्योग धन्धों, भूमि, सम्पत्ति आदि का सरकारी करण द्वारा समाजवाद की स्थापना। भारत, यूगोस्लाविया आदि मे इसी ढंग का समाजवाद है। इसमें अन्य पार्टियाँ भी रह सकती हैं। स्वतन्त्र अखबार और लेखन भाषण स्वातन्त्र्य भी होता है। अल्पमत की रक्षा इसमें भी की जाती है। जैसे भारत में हिन्दू, मुसलमान सभी रह सकते हैं। बहुमत के नाम पर कोई अल्पमत की हत्या नहीं कर सकता। परन्तु यह कहना ठीक नहीं है कि पून्जीवाद या पून्जीपति अल्पमत है, क्योंकि प्रकृत में पेशा या रोजगारों के आधार पर अल्पमत बहुमत की बात नहीं होती है। अतएव इंगलैण्ड, अमरीका आदि लोकतन्त्र वादी देशों में भी विद्युत, इस्पात कारखानों का राष्ट्रीयकरण किया गया है। भारत में ही कट्टर सनातन धर्मियों की संख्या कम है, पर तो भी उन्हें अल्पमत मानकर उनकों संरक्षण नहीं दिया जाता है। अतएव धनी, निर्धनों का हिन्दू, मुसलमान के तुल्य कोई जाति भेद या संस्कृति भेद नहीं है। इसी तरह डाकू, चोर को भी अल्पमत मानकर उन्हें संरक्षण नहीं दिया जा सकता। सम्पत्ति का बंटना समाजवाद है ही नहीं। अतः बार बार उसकी चर्चा बेकार ही है।

यह ठीक है कि 'वैज्ञानिक अपने अविष्कारों को थोड़े थोड़े रुपयोंमें बेचना चाहता है। कोई उसे खरीदता नहीं। जब किसी ने हिम्मत जुटाकर सम्पत्ति के उत्पादन का नया द्वार खोला और सम्पत्ति पैदा किया तब, जो उसे पागल कहते थे, वे ही सम्पत्ति अर्जित होनेपर उसमें भागीदार होना चाहते हैं। सम्पत्ति बहुत थोड़े से लोगोंने पैदा की है, पर जिन्होंने पैदा नहीं की है, वे मालकियत

के लिये दावेदार होते है। बात आगे भी बढ़ सकती हैं। कुछ लोगों के पास सुन्दर स्त्रियां कुछ लोगोंके पास कुरूप हैं। क्या सुन्दर स्त्रियोंपर सबका समान अधिकार होना चाहिए ?

समाजवाद बहुत से अन्यायों को स्वीकृति देता है, क्योंकि अन्यायके लिए बहुमत को तय्यार किया जा सकता हैं। बहुमत के तय्यार होने से भी अन्याय न्याय नहीं हो जाता और न असत्य सत्य हो जाते हैं। (पृ॰ ८१-८२)

बात ठीक है, परन्तु समाजवाद सम्पत्ति का राष्ट्रीय करण करना चाहता है। सम्पत्ति को बांटने के लिये उसका आन्दोलन नहीं होता। वह भी उस हालत में जब कि संसार के उत्पादन साधन मुठ्ठी भर लोगों के हाथ में पहुंच जाते हैं। अधिकांश लोग बेकार, वेरोजगार हो जाते हैं। राष्ट्र की क्रय शक्ति क्षीण हो जाती है। उत्पादित माल की खपत भी रुक जाती है। मशीन की रफ्तार धीमी करने और श्रमिकों की छटनी से उत्तरोत्तर व्यवस्था बिगड़ती जाती है। तब समाजवाद को छोड़कर दूसरा रास्ता रह ही नहीं जाता। विकेन्द्रीकरण एंव महायन्त्रोंके निर्माण पर प्रतिबन्ध भी रास्ता है। पर उसका भी आदर नहीं किया जाता है। वैज्ञानिक, बुद्धिजीवी लाचारी से ही तो अपने आविष्कारों को पचास रुपये में बेचने को बाध्य हुये थे। जब उनके आविष्कारों से फायदा उठाकर पून्जीपति लाखों के बदले हजारों मजदूरों के द्वारा करोड़ों रुपये कमाते हैं, तो क्या उनका कर्त्तव्य नहीं होता कि जिसके आविष्कार से वह इतना लाभ उठा रहा है, उसे भी उसका भागीदार बनाये।

अल्पमत रक्षण का इतना ही मतलब है कि बहुमत के आधार पर किसी अल्पमत के वैध अधिकार का अपहरण न हो, किसी के साथ अन्याय न हो, बहुमतके बलपर किसीके हितोंकी हत्या न हो। परन्तु उसी हालतमें कि जब वे समाज हित या राष्ट्र के हित में बाधक न बनते हों।

सुन्दर एवं कुरूप स्त्रियों में उपयोग की दृष्टि से कोई भी फर्क नहीं हैं। अतः वैसाप्रश्न उठाना स्वाभाविक नहीं है। परन्तु उत्पादन साधनोंके राष्ट्रीय करण की बात उससे भिन्न है। हां, सुन्दरियों का प्रश्न तो आपके यहां ही

उठ सकता है, क्योंकि आप किसी संस्कृति, किसी धर्म की आवश्यकता नहीं समझते हैं। संभोग से समाधि सिद्धि का रास्ता बताते है। जहां धर्म है संस्कृति है, शास्त्र प्रामाण्य है, जहां धर्म राज्य, राम राज्य का आदर है, वहां तो पर स्त्री में मातृ वुद्धि, पर धन में लोष्ट पाषाण बुद्धि होती है। पर आपके यहाँ उसका कोई महत्व नहीं, तो सब सुन्दर स्त्रियों पर सबका अधिकार क्यों न हो ?

लोकतन्त्र में व्यक्तिगत सम्पत्ति का सिद्धान्त स्वीकृत है। पर यह भी निरपेक्ष नहीं है। जहाँ तक वह समाज हित का विरोधी नहीं है, वहीं तक व्यक्तिगत सम्पत्ति की स्वतन्त्रता मान्य होती है। दुश्मनों के आक्रमण होने पर सम्पूर्ण व्यक्तिगत अधिकार सरकार के हाथ में चले जाते हैं। उस समय सरकार किसी के भी व्यक्तिगत मकान, मोटर तथा बैंक में जमा किये हुए रुपयों को अपने अधिकार में ले सकती है। इसीलिये तो लोक तान्त्रिक समाज़वाद का इतना ही अर्थ है कि राष्ट्रमें समाजवाद लाया जाय। पर वह बहुमत के द्वारा लाया जाय, खूनी क्रान्ति के द्वारा नहीं।

स्वतन्त्रता बहुमूल्य वस्तु है। स्वतन्त्रता का प्राण है—विचार स्वातन्त्र्य। यह भी ठीक है। परन्तु उसकी भी सीमायें हैं। पाश्चात्य देशों में भी स्टुअर्ट मिल, वेन्थम आदि के व्यक्ति स्वातन्त्र्य और विचार स्वातन्त्र्य भी निःसीम रूपसे नहीं मान्य है। कोई भी राज्य, राजद्रोह भड़कानेवाले भाषणों को वरदाश्त नहीं कर सकते। अतः समष्टि समाज के हित को ध्यान में रख कर ही स्वतन्त्रता का उपयोग किया जा सकता है। यह कहना तो मिथ्या ही है कि चीन रूस का समाजवाद भी लोकतान्त्रिक है। क्योंकि भारत, युगोस्लाविया, जैसा वहां निर्वाचन प्रणाली, लेखन, भाषण स्वातन्त्र्य, अखबारोंका स्वातन्त्र्य, विभिन्न पार्टियों द्वारा या स्वतन्त्र रूप से नागरिकों को निर्वाचन की स्वतन्त्रता नहीं है।

अतः यह कथन भी असंगत है कि, "डेमोक्रेसी बचेगी तो पून्जीवाद से बचेगी। समाजवाद के साथ लोकतन्त्र नहीं बच सकता। लोकतन्त्र पून्जीवादी जीवन व्यवस्था का अनिवार्य हिस्सा है।" (पृ० ८३)। क्योंकि पून्जीवादी

व्यवस्था में मुट्ठीभर व्यक्ति ही धन सम्पन्न होकर, निर्वाचन लड़कर, शासनपर हावी हो जाते है। अधिकांश लोग गरीब होते हैं। उनको अन्न वस्त्र की ही चिन्ता पड़ी रहती है। उनसे पास एलेक्शन लड़ने के लिए जमानत का भी पैसा नहीं होता। फिर पोस्टर; जीप लाउडपीकर की व्यवस्था कहां है ? अतः लोकतन्त्र का नाम लेकर करोड़ों आदमियों को मूर्ख बनाकर, पून्जीवादी शासन सत्ता पर रुपये के बल पर कब्जा कर लेते हैं। यह भी कहना गलत है कि, 'व्यक्ति का अपना पृथक् चरम मूल्य है, लेकिन समाजवाद व्यक्ति को नहीं मानता। समाज को, भीड़ को महत्व देता है। समाज के लिए व्यक्तिका बलिदान स्वीकार योग्य है। हमेशा से व्यक्तियोंका बलिदान होता आया है। कभी राष्ट्रों के लिए, कभी सिद्धान्तों के लिये, कभी गीता, कुरान आदि के लिए। व्यक्तियों का बलिदान किसी के लिए भी ठीक नही। क्योंकि व्यक्ति जीवन्त चेतना है।" (पृ० ८३)

इस विषय में बहुत कहा चुका है। व्यक्ति समाजका समन्वय ही ठीक है। व्यक्तियों से ही कुटुम्ब ग्राम, राज्य, समाज, राष्ट्र, विश्व आदि का निर्माण होता है और कुटुम्ब, आदि से व्यक्ति को विकास के लिये सुविधाएं मिलती हैं। अतः समाज राष्ट्र के अवरोध का ध्यान रखकर ही व्यक्ति को आत्मोन्नति का प्रयत्न करना उचित हैं। व्यक्तिवादी वेन्थम आदिकों ने भी यह सिद्धान्त माना हैं। प्राणी अकेला नहीं है, अन्य व्यक्ति भी हैं। उनकी भी स्वतन्त्रता है। उनमें टकराव न हों इसका ध्यान रखना ही पड़ेगा।

"समाजवाद किसी दिन जीवन में अनायास सहज अपने आप आये तो जीवन की स्वतन्त्रता की हत्या बिना किये आ सकता है। अन्यथा असंभव है।" (पृ० ८४) यह सब भी पूर्व में खण्डित हो चुका है। समाजवाद, पून्जीवाद के पेट से उत्पन्न होकर पून्जीवाद का विनाश करता है, इस तथ्य को नहीं भूलना चाहिये।

समाजवाद का तात्पर्य धन की समानता नहीं

"पैसफिक महासागरके उस द्वीपमें जिसके पास फासफोरसकी खदाने हैं, एक एक व्यक्ति को आठ आठ हजार मिल जाते हैं। वहां गरीब कोई नहीं है कोई

अमीर नहीं है। क्योंकि लोग कम हैं, सम्पत्ति ज्यादा है। वह द्वीप शायद पृथ्वी पर अभी पहला समाजवाद है। (पृ० ८४)। यह भी निमूल है। क्योंकि सभी का समान रूप से धनवान् होना ही समाजवाद नहीं है। किसी भी समाजवादी देशमें पहले तो व्यक्तिगत धन होता हीं नही। सभी भूमि, सम्पत्ति उद्योग आदि वहां समाज के अधीन होते हैं। यदि व्यक्तिगत धन होता भी है तो समान नहीं होता हैं। एक वैज्ञानिक, इन्जीनियर और ईंट ढोने वालों के वेतनों में भेद रहता ही है। चीन में कई भूतपूर्व मिल मालिको को हजारों रुपये महीने मिल जाते हैं। कई लोगों के पास लाखों रुपये भी हैं। पर वे उसके द्वारा उच्चस्तरीय भोजन आदि कर सकते हैं, मुनाफा नहीं कमा सकते हैं। मुनाफा कमाने तथा उत्पादन के साधन व्यक्तिगत न होकर समाज के ही हाथ में रहते हैं। किसी राष्ट्र या नगर में भले ही एक-एक लाख रुपये कमाने वाले सब आदमी हों, भले करोड़ करोड़ रुपये वाले ही क्यों न हों, तो भी वहां समाजवाद नहीं कहा जा सकता।

श्रम का मूल्य अनादि काल से निर्धारित

कहा जाता है कि, "आज नहीं कल श्रम गैर जरूरी तत्व होता चला जायगा। श्रम ने पून्जी के अर्जन में साथ दिया है। लेकिन सृजन का मूल केन्द्र वह नहीं है। सृजन का मूल केन्द्र हैं मनुष्य का मस्तिष्क, मनुष्य की बुद्धि, प्रतिभा जिसने सृजन के नये नये आयाम खोजे।" (पृ० ८५)। परन्तु यह भी निरर्थक ही हैं। क्योंकि श्रम में केवल शरीर का ही श्रम नहीं है। मस्तिष्क का भी श्रम श्रम ही है। प्रतिभा का परिणाम भी श्रम का ही परिणाम हैं। वैज्ञानिकों की प्रतिभा का चमत्कार विविध यन्त्र एवं महायन्त्र है। इस दृष्टि से भी कहा जा सकता है कि सम्पत्ति उत्पादन का स्रोत भी बुद्धि जीवी श्रमिकों की प्रतिभा या प्रातिभ श्रम ही है।

इस कथनमें भी कोई सार नहीं हैं कि, "श्रम वहुत जल्दी मर जानेवाली चीज है। अगर मैं आज दिनभर न काम करूं तो आज दिनभर काम न करने

से मेरे पास श्रम बचेगा नहीं कि उसे मैं तिजोरी में रख लूं। अगर मैंने आज दिनभर काम नहीं किया तो आज मैं जो काम कर सकता था, वह मैं कभी न कर सकूंगा, क्योंकि श्रमको बचाया नहीं जा सकता। श्रम रोज खो जाता है। ऐसा नहीं कि एक मजदूर काम न करे जिन्दगी भर तो उसका शोषण नहीं होगा, वह तो मर ही जायगा। क्योंकि श्रम बचाया नहीं जा सकता। पून्जीवाद ने पहली दफा श्रम को बचाने की व्यवस्था सोची। उसको सुरक्षा योग्य बनाया। धन की ईजादसे श्रम बचने योग्य हुवा। आज मैं श्रम करता हूं और पांच रुपये तिजोरी में बन्द करता हूं। पांच रुपये की अकल में मेरा श्रम स्थायी हुआ, बच गया। अगर पांच रुपये की शकलमें न मिले तो श्रम गया। मैं कहता हूं कि मैंने दश रुपये का श्रम किया। मुझे सिर्फ पांच ही मिले। जब कि अगर मैं न करता तो एक पैसे का भी श्रम नहीं होता। (पृ० ८५)

यह वकालत निरर्थक हीं है। क्योंकि बुद्धि, मस्तिष्क या प्रतिभा के सम्बन्ध में भी यही कहा जा सकता है। प्रतिभा या बुद्धि भी तिजोरी में रखने की चीज नहीं होती है। आज यदि बौद्ध या प्रातिभाश्रम न किया जाय तो भी उसको बचाकर नहीं रखा जा सकता है। पून्जीवाद ने पहली बार श्रम को सुरक्षा योग्य बनाया हैं, यह कहना सर्वथा असत्य है। क्योंकि अनादिकालसे ही श्रम का मूल्य मिलता रहा हैं। आपका पून्जीवाद तो आपके अनसार सौ सवा सौ साल का ही है। परन्तु मनु आदि ने अनादि काल से ही श्रम का मूल्य निर्धारण कर रखा है। कौटल्य आदि ने भी विविध श्रमों के मूल्य निर्धारित किये हैं।

व्यक्ति वादियों ने भी मांग और पूर्ति के आधार इतर वस्तुओं के समान ही श्रम के भी मूल्य निर्धारित किये हैं। अतः स्पष्ट जान लेना चाहिए कि शारीरिक श्रम के समान ही प्रातिभ, बुद्धि या मस्तिष्क सम्बन्धी श्रम भी श्रमिकों के ही श्रम हैं। जैसे कभी मजदूर को विवश किया जाता है कि वह थोड़े ही मूल्य में अपना श्रम बेचे, कृषक को अल्प मूल्य में ही कच्चा माल बेचने को बाध्य किया जाता है, उसी तरह गरीबी के कारण ही वैज्ञानिक

को भी अपने आविष्कार पचास पचास रुपये में बेचनें को बाध्य किया जाता है। समाजवादी उत्पादन व्यवस्था को नहीं बिगाड़ना चाहता। किन्तु उसे समाज का बनाकर अत्यधिक विकसित करना चाहता है, जैसा कि व्यक्तिगत रहने पर संभव भी नहीं होता है।

कहा जाता है कि, "अभी पून्जीवाद का क, ख, ग है। अभी उसे विकसित होना हैं। विकसित होने पर कल पांच रुपयेकी जगह दश रुपये भी मिल सकते हैं। कल बीस रुपये मिल सकते हैं। और हो सकता है जो श्रम न करे उसको दिया जाय। अगर ठीक से टेकनालाजिकल रेवोल्यूशन से गुजर जाय तो यह भी हो सकता है कि जो आदमी श्रम की मांग करे उसे कम पैसे मिले और जो आराम करने को राजी हो जाय उसे ज्यादा पैसा मिले। यह इस लिये संभव है कि श्रम की मांग बड़ी और बहुत सी चीजों से जुड़ी है। अगर कल गांवों में सारे स्वचालित यन्त्र लगा दिये जायं तो हजारों, लाखों लोग बेकार हो जायेंगे। लेकिन स्वचालित यन्त्र जो सम्पत्ति पैदा करेंगे, उसका करियेगा क्या ? इन बेकार लोगों को हीं वह देनी पड़गी। उनकी बेकारी का मुवावजा देना पड़ेगा। लेकिन आदमी कह सकता है कि मैं २४ घण्टे बेकार नहीं रह सकता। मैं पागल हो जाऊंगा। मुझे दो घण्टे का काम चाहिये। तो इस आदमी को कम पैसा देना पड़ेगा। क्योंकि यह पैंसा भीं मांगता हैं, काम भी मांगता है। जो बेकाम होनेके लिये बिलकुल तय्यार हों; जो कहते है कि हम सिर्फ पैसे लेंगे, का नहीं मांगते, उन्हें ज्यादा भी मिल सकता है। वह पचास साल में संभव है। अगर उत्पादन व्यवस्था को परिष्कृत किया जाय और उसे जगह जगह तोड़ने का उपाय न किया जाय।" (पृ० ८६)

बेकारी रोकनेके लिए महायत्रों पर प्रतिबंध आवश्यक

उक्त वाते सर्वथा निरर्थक ही है। कारण पून्जीवाद जितना विकसित होगा उतनी बेकारी बढ़ेगी। यह बात तो उपयुक्त पक्ष में ही स्पष्ट है। अब

रहा यह कि काम न करने वालों को, काम करनेवालों से अधिक पैसा दिया जायगा, क्योंकि वह केवल पैसाही मांगता है। पर यह बिलकुल बेतुकी बात है। क्योंकि पून्जीपति पैसा और काम देने को बाध्य नहीं हो सकता। वह श्रम की जरूरत होने से, काम होनेसे ही काम कराता है, पैसा देता है। जरूरत न होने से क्यों काम करायेगा ? और क्यों पैसा देगा ? क्योंकि कोई व्यक्ति बेरोजगारी दूर करने का जिम्मेदार नहीं हो सकता। यह सब तो समाजवाद में ही संभव है। क्योंकि समाजवाद काम देने का जिम्मेदार होता है। इंगलैण्ड आदि ऐसे अनेक राष्ट्र आज भी हैं जो अपने नागरिकों को या तो काम या रोजगार देते हैं, यदि काम नहीं दे सकते तो निर्वाहोपयोगी पैसा देते हैं। परन्तु कोई पून्जीपति इसके लिए बाध्य नहीं किया जा सकता। सम्पत्ति करियेगा क्या ? यह प्रश्न पून्जीपति के सामने नहीं होता। वह तो अनन्त हीरा, जवाहर, रत्न, सोना, रखकर ही धनवान् बनना चाहता है। और उससे कभी किसीको तृप्ति नहीं होती। यह कहा जा चुका है कि सारी पृथ्वी का सोना, हीरा,रत्न, व्रीहि, यव, हाथी, घोड़े, वायुयान, स्त्री, आदि एक व्यक्ति की भी तृष्णा नहीं मिटा सकते। अतः अन्त में तृष्णा मिटाने के लिए प्रयत्न करना पड़ता है। अग्निमें घृत डालने से अग्नि बुझती नहीं, उसी तरह धन से प्राणी की तृष्णा मिटती नहीं। जिनको पैसा मिलता रहेगा, उनको अपने कामकी कमी नहीं रहेगी। व्यायाम, खेलकूद, कला-कौशल, दर्शनादि अध्ययन आदि काम सबके लिए सुलभ है। कोई चौबीस घण्टे व्यायाम करे तो करता रहे। अध्ययन में चौबीस घण्टे लगा रहे तो क्या बाधा है ? अध्ययन के अपार विषय है। पचास नही हजारों वर्षो में वैसा होना असंभव है। क्योंकि वैसी स्थिति ही युक्तिहीन है। यह तो उल्टी मुर्खता ही होगी कि पहले स्वचालित यन्त्रों का निर्माण करके लोगों को बेकार बनाया जाय और फिर लोगों को काम और पैसा देने की परेशानीसे परेशान हुवा जाय। काम न करने वाले का एहसान मन्द बने। इससे वही अच्छा पक्ष है कि बेकारी रोकने के लिए महायन्त्रों के निर्माण पर प्रतिबन्ध लगाकर लघु उद्योग धन्धों का प्रचलन करके सबको स्वावलम्बी बनाया जाय।

सार्वजनिक हित के लिए अधिक आय पर कर लगाना उचित

कहा जाता है कि, देश के नेता एक तरफ चिल्लाते हैं कि, "देश गरीब है, सम्पत्ति उत्पादित होनी चाहिए। दूसरी तरफ जो सम्पत्ति का उत्पादन करते हैं उन पर टैक्स बढ़ाये जाते हैं। जो जितनी ज्यादा सम्पत्ति उत्पादित करता है, उस पर उतना ज्यादा कर लगाये जाते है। परन्तु यह उल्टी बात है। यदि सम्पत्ति ज्यादा चाहते हैं तो जो आदमी एक लाख पैदा करे उस पर ज्यादा टैक्स, जो दो लाख पैदा करे उस पर कम टैक्स होना चाहिये। जो दश लाख पैदा करे उस पर बिल्कुल टैक्स न होना चाहिये। जो करोड़ पैदा करे उसको उल्टा सरकार टैक्स दे तो सम्पत्ति ज्यादा होगी। सम्पत्ति ज्यादा पैदा करने का यह सीधा सूत्र है। आज तो कोई लाख पैदा करता है तो ९०००० टैक्स हो जाता है। तीन लाख पैदा करे तो और टैक्स बढ़ जाता है। चार लाख कमायी की तो वह टैक्समें ही चला जायगा। फिर टैक्स भरने का इन्तजाम, दौड़ धूप अलग, तो आदमी सोचता है कमाने की जरूरत ही क्या हैं? जो कमा सकते हैं उनको रोकते हैं। जो कमा नही सकते उनकी गीत गाते है। इस मुल्क को मार डालने की तरकीब है। मनुष्य समाज का बहुत बड़ा हिस्सा बिल्कुल ही सृजनात्मक नहीं है। उसे भोजन, कपड़ा, स्त्री मिल जाये तो वह तृप्त है। उसे कुछ नहीं करना है। मनुष्य जाति के बहुत थोड़ेसे हिस्सेने सृजनके फूल खिलाये हैं। चाहे वह दिशा कोई हो, कविता हो, चित्र हो, धन हो, विज्ञान हों, धर्म हो, हर क्षेत्र में थोड़े से मनुष्यों ने सृजनके शिखर पाए हैं। इनको रोकने की चेष्टा चल रही है।

कहते हैं कि देश को सम्पत्ति चाहिए और प्रशंसा उसकी करते है जिसके पास सम्पत्ति नहीं है। उसके पास सम्पत्ति क्यों नहीं? करोड़ो साल से वह पृथ्वी पर है। उसके पुरखे भी जमीन पर थे। सम्पत्ति क्यों नहीं? कभी इस पर सोचा? उसने सम्पत्ति नहीं पैदा की, बच्चे पैदा किये। वह दरिद्र होता

चला गया, दरिद्रता बढ़ती गयी। पर जिन्होने सम्पत्ति पैदा की वे आज अपराधी हैं। उनको शूलीपर लटकना पड़ेगा। उनका भी एक ही अपराध है कि तुमने भी बच्चे क्यों नहीं पैदा किये ? तुम भी विना धन सृजन किये क्यों न बैठे रहे ? तुमने धन पैदा किया यही पाप है। जिन्होने धन नहीं पैदा किये, वे बदला लेंगे। तुमने हमें चूस लिया, आश्चर्य है, कि यह धन चूसकर पैदा नहीं किया गया। यह धन कुछ लोगों ने बड़ी प्रतिभा और परिश्रम से पैदा किया है। बड़ी बुद्धि और बड़े आयामों की खोज है। वह हमारे ख्याल में नहीं है। इनको हम मिटाने को तुले हैं।" (पृ• ८६-८८)

उक्त विचार अविचारित रमणीय हैं। एक तरफ तो आप पूञ्जीपतियों पर यह जिम्मेदारी डालते हैं कि बेकारों को बिना काम किये भी पैसा दें। काम करने वालों से भी ज्यादा पैसा काम न करने वालों को देकर प्रसन्न हों, दूसरी तरफ कहते हैं कि काम न करने वालो ने काम नहीं किया, इसलिये उन्हें दरिद्र रहना ही चाहिए। फिर उन्हें क्या हक है कि वे धनवालों का गला दबाये। आपकी सम्मति के अनुसार सम्पत्ति बढ़ाने की दृष्टि से कम सम्पत्ति पैदा करनेवालों पर ज्यादा से ज्यादा कर लगना चाहिये। दश लाख पैदा करने वालों पर टैक्स बिल्कुल न हो। करोड़ पैदा करने वालों को तो पुरस्कार मिलना चाहिए। आपके शब्दोंमें उनको सरकार टैक्स दे। इससे बढ़ कर पूञ्जीपतियोंकी वकालत क्या होगी ?

नेता या सरकार क्यों कहते हैं कि सम्पत्ति चाहिए। इसलिए कि देश के नागरिक भूखे, नंगे न रहे। सबको भोजन, वस्त्र, आवास स्थान, चिकित्सा, शिक्षा तथा यातायात की सुविधा हो। यह तभी संभव होगा जब कि देश में खूब धन हो, अर्थात गेहूं, चावल, चीनी, कपड़े, जूते, साइकिल, मोटर आदि का पर्याप्त उत्पादन हो। यदि करोड़पतियों पर कोई टैक्स नहीं होगा, उन्हें सरकार से करोड़ों का पुरस्कार भी मिलेगा और स्वचालित यन्त्रों से वे धन कमायेंगे, उन्हें मजदूरों को भी कुछ न देना पड़ेगा, तो प्रश्न यह है कि उस धन का उपयोग भी क्या होगा ? जो सम्पत्ति राष्ट्रकी गरीबी नहीं दूर करती, वेकारों की बेकारी नहीं दूर करती, वह सम्पत्ति शैतान की सम्पत्ति ही है। उससे राष्ट्र के नागरिकों को लाभ भी क्या होगा ?

वस्तुतः आज भी अपने खेत में अच्छा गेहूं पैदा करने वालों को पुरस्कार मिलता ही है। अच्छा बैल, अच्छा गन्ना पैदा करने वालों को पुरस्कार दिया ही जाता है। इसी दृष्टि से कम आमदनी वालों पर कम टैक्स लगाया जाता है कि अपनी बढ़ोत्तरी के लिए प्रयत्नशील हों। जिन्हें निर्वाह लायक ही वस्तु प्राप्त होती हैं, उन पर टैक्स नहीं होना उनकी परेशानी कम करना है। परन्तु जिनका करोड़ों का उत्पादन है, उनसे अधिकाधिक टैक्स लगाकर सामूहिक समाज के काम में लगाया जा सकता है। पुलिस, पल्टन, न्यायालय, अस्त्रशस्त्र निर्माण, यातायात-व्यवस्था, पुल,सड़क निर्माण, शिक्षा संस्थाओं के काम में लगाया जा सकता है।

रहा यह कि इससे उनकी कमाने की प्रवृत्ति में प्रोत्साहन नहीं मिलेगा, यह ठीक नहीं। क्योंकि यह प्रवृत्ति स्वाभाविक है। जिसको धन कमाने का चस्का लग गया है, और सामग्री हैं वह ज्यादा से ज्यादा टैक्स भी देगा, वह झंझट भी सहेगा और कमायेगा भी। वैसे भी पूञ्जीपतियों की दृष्टि में उन्मुक्त व्यापार की छूट होनी चाहिये। ऐसी स्थिति में जहां जिस वस्तु की कमी होगी, व्यापारी दूसरी जगह से सस्ता खरीदकर, मंहगा बेचकर लाभ कमायेगा। परन्तु राष्ट्र के हितार्थ, सरकारे प्रतिबन्ध लगाकर वैसा करना रोक देती हैं। सरकारें भावों पर भी मनमानी भाव बढ़ाने पर प्रतिबन्ध लगाती हैं। मिलों से उत्पन्न चीनी या वस्त्र आदि को अमुक मात्रामें सरकार खरीद लेती हैं, जिससे मनमानी लाभ नहीं कमाया जा सकता। सम्पत्ति बढ़ाने से देश को लाभ होना चाहिए। कुछ व्यक्तियों के पास कुछ सम्पत्ति बढ़ जाने से भी उससे समाज का लाभ नहीं होता। प्रत्युत आपकी दृष्टि से करोड़पति पर टैक्स न हो, सरकार से उसे पुरस्कार मिलेगा तो वह दूसरे लोगों के विकास में बाधक ही होगा। वह प्रतियोगिता में किसी को टिकने न देगा। उसके पास करोड़ों की सम्पत्ति है। वह अन्य व्यक्तियो के मुकाबले में अपने माल को सस्ता करके भी दूसरे को पनपने नहीं देगा। अन्य लोगों के पास उतनी सम्पत्ति न होने से वे अपने माल को उतना सस्ता नहीं कर सकते। एक पुस्तक को जो लाखों की संख्या में छापेगा, वह पुस्तक का कम दाम रख कर भी घाटे में नहीं रहता। परन्तु जो दो हजार ही छापता है उसको ज्यादा

मूल्य रखना ही पड़ेगा। फलतः वह बड़े धनवान् के मुकाबले असफल हो जायगा। इस तरह बड़े धनवान के द्वारा दूसरों के विकास में बाधा स्पष्ट है। अतएव सामुहिक सार्वजनिक सम्पत्ति बढ़ाना ही अभीष्ट होता है।

देश गरीब है, इसका अर्थ है समष्टि दृष्टि से देश गरीब है। देशमें अनेक व्यक्ति हो सकते हैं, जिनको गरीब नहीं कहा जा सकता। अतः कुछ धनिकोंको पुरस्कार देकर खरब पति बना देने पर भी देश गरीब ही रहेगा। राष्ट्रों में भी अमीर राष्ट्र, गरीब राष्ट्र रहते हैं। जिस राष्ट्र के पास पर्याप्त भूमि हो, खानें हों, सोना, लोहा, कोयला, पेट्रोल, हीरे, पुखराज आदि रत्न हों, जहां पर्याप्त अन्न, फल, घी, दुग्ध, विविध वस्त्र आदि वस्तुएं सुलभ हों, जो दूसरे देशों को वस्तुओं को निर्यात करता है, आयात कम करता है, जिसके पास सर्वोत्कृष्ट कोटि के महायन्त्र, महान उद्योग धन्धे हों, वह समृद्ध राष्ट्र अमीर होता है। तद्विपरीत स्थिति वाला राष्ट्र गरीब होता है।

कुछ लोगों के पास सम्पत्ति बढ़ जाना राष्ट्र के हित में नहीं है। इसीलिये जमाखोरी भी पाप है। क्योंकि व्यापारी आवश्यक वस्तु को सस्ते दामों में खरीद कर धर लेते हैं। जब सब मंहगाई बढ़ती हैं, तव उसे चौगुने, दशगुने दाम में बेचते हैं। इससे राष्ट्र की परेशानी बढ़ती है। कुछ लोग धनवान हो जाते हैं। परन्तु अधिकांश लोग गरीब ही रहते हैं।

मनु के अनुसार तो जो असाधु पुरुषों का धन छीनकर साधु पुरुषों के रोजी रोजगार चलाने के लिए प्रदान करता है, वह राजा अपने आप को नाव बनाकर दोनोंको तार देता है, जो पिता, पितामहकी करोड़ों सम्पत्तियों का मालिक होकर उनके कर्त्तव्यों का पालन नहीं करता, उनके द्वारा सामाजिक उपकार होते थे, उनकी उपेक्षा करता है, वही असाधु है और साधु पुरुष वे है, जो कर्त्तव्य पालन परायण है। परन्तु बेकारी, बेरोजगारी के कारण कर्त्तव्य पालन में बाधा पड़ती है।

कौटल्य आदि ने भी आमदनीके आधार पर ही कर की व्यवस्था की है। परन्तु फिर वर्तमान कर व्यवस्था अत्यन्त बोझिल। हैं इसका समर्थन नहीं किया जा सकता। इससे तो लोगों की चोरी रोकने के लिए बाध्य होना

पड़ता है। फिर भी जिनकी कम आमदनी है, उन पर अधिक टैक्स लगाया जाय, जिनकी अधिक आमदनी है उन पर कम टैक्स और जिनकी बहुत आमदनी है उन पर बिलकुल टैक्स न हो, प्रत्युत उन्हें करोड़ों का पुरस्कार मिलना चाहिये, ये विचार अव्यावहारिक हैं और कभी भी कार्यान्वित नहीं हुए और न हो सकते हैं। हां यह सर्वत्र होता है कि कम आमदनी वाले बहुत से लोगों पर टैक्स नहीं लगाया जाता है। जिससे अविकसित लोगों को विकसित होने का अवसर मिलता है। उन्हीं को पुरस्कार देकर प्रोत्साहन भी दिया जाता है।

पूञ्जीवाद में आर्थिक असंतुलन को बढ़ावा

यह भी ठीक है कि संसार में जन्मान्तरीय संस्कारों या प्राकृतिक स्वभाव के कारण सब आदमी समान नहीं होते। सब पशु-पक्षी भी समान नहीं होते। धर्मानुष्ठान, ब्रह्मोपासना, ब्रह्म साक्षात्कार में भी सब की प्रवृत्ति नही होती। यद्यपि धन अच्छी चीज है, सब चाहते है और तदर्थ प्रवृत्तियां भी होती हैं, परन्तु सफलता सबको नही मिलती। इसीलिये प्रोत्साहन, उपदेश आदि अपेक्षित होते हैं। परन्तु इसका यह अर्थ कदापि नहीं है कि उनके भाग्यपर उन्हें छोड़ दिया जाय। किसी भी राज्य या राजा का कर्त्तव्य है कि वह प्रत्येक व्यक्ति को उन्नत होने के लिये बाध्य करे। अतएव प्रत्येक नागरिक के लिये विकास की सामग्री और सुविधा तथा प्रोत्साहन देकर विकसित होने के लिए बाध्य किया जाना उचित है। उनमें भी कुछ विषमता हो सकती हैं, तो भी भोजन, वस्त्र, आवास, चिकित्सा, शिक्षा और रोजी की व्यवस्था सबके लिए होने चाहिए। इतने अंशमें समता अनिवार्य है। यह अलग बात है कि किसी के पास धन कुछ कम हो जाय, किसी के पास कुछ ज्यादा। वह विषमता भी असंतुलित न होकर संतुलित ही होनी चाहिए। जैसे शरीर में विषमता होती है, हाथ पैर की अङ्गुलियां भी सब बराबर नहीं होती हैं। कई मोटी, कई पतली, कई छोटी, कई बड़ी भी होती है। परन्तु यह मोटायी, पतलायी;

छोटायी, बड़ायी, संतुलित होनी ही ठीक है। एक दो बहुत मोटी या लम्बी हों जांय, अन्य बहुत छोटी या पतली हो जांय तो शरीरकी शोभा बिगड़ जायगी। पेट बहुत बड़ा और मोटा हो जाय, हाथ पैर पतले हो जांय तो वह स्वस्थता नहीं है। उसे जलोदर आदि रोग ही समझा जायगा। इसी तरह कुछ लोग अरबों, खरबों के मालिक हो जांय, और कुछ के पास दो एकड़ खेत भी न हो, कोई छोटी सी दुकान भी नहीं, नौकरी भी नहीं तो यह आर्थिक असंतुलन है। इसके निराकरण का उपाय पून्जीवाद ने कुछ भी नहीं किया।

संयम-विस्तार से ही जनसंख्या का नियंत्रण उचित

परिवार नियोजन के सम्बन्ध में भी कहा जाता है कि, "जैसे सम्पत्ति बढ़ानी है, जो सम्पत्ति पैदा करे उसको पुरस्कृत करना चाहिये। उसी तरह यदि सन्तान कम पैदा कराने हैं तो सरकार को शादी वालों पर टैक्स ज्यादा लगाना चाहिए। गैर शादी वालों पर कम टैक्स होना चाहिए। जिसके कम बच्चे हों, उस पर कम टैक्स होना चाहिये। जिसके ज्यादा हों उन पर अधिक टैक्स लगाना चाहिए। तभी बच्चों का बढ़ना बन्द होगा। जिसके घर तीन हों तो कम टैक्स, चार हों तो ज्यादा टैक्स होना चाहिए; पांच हों तो और ज्यादा। छठां हो तो उसकी पढ़ाई की फीस कई गुना ज्यादा होनी चाहिये। उसको दवाई मंहगी मिलनी चाहिये। बच्चे ज्यादा बढ़ने से टैक्स भी बढ़ेगा, फीस भी बढ़ेगी। तभी लोग डरेंगे और बच्चों का बढ़ना रुकेगा। अभी गैर शादी वालों पर टैक्स ज्यादा है, शादी होने पर टैक्स कम हो जाता है, यह अनुचित है। उचित यह है कि गैर शादी शुदा पर टैक्स बिल्कुल न हो। जिससे लोग ज्यादा देर तक शादी न करेंगे। यहां तो ज्यादा बच्चे होने पर टैक्स कम लगता है। फिर बच्चे कम कैसे होंगे?" (पृ० ८८)

उक्त विचार भी अविचारित रमणीय ही हैं। विचार करने पर यह पक्ष उचित नहीं है। क्योंकि राष्ट्र की दृष्टि यह अवश्य है कि अन्न संकट काटनेके लिये सन्तानें कम उत्पन्न की जांय, अन्यथा तो यह भी कहना पड़ेगा कि छठीं

या साँतवी, आठवीं आदि सन्तानों को चिकित्सा की सुविधा न दी जाय। इससे वह स्वयं मर जायेंगे। परन्तु यह अमानवता होगी। इसी तरह छठी सातवीं सन्तानों की फीस दश गुनी कर दी जाय, तो यह भी भेदभाव होगा और समानताके सिद्धान्तसे विरुद्ध होगा। गैर शादी पर टैक्स इसलिये ज्यादा होता है कि वह उतनी सम्पत्ति का अकेला ही मालिक है। शादी हो जाने पर धन के दो हिस्सेदार हो गये, एक पति और दूसरी पत्नी। पत्नी भी मनुष्य है, नागरिक है। उसको भी सम्पत्ति रखनेका अधिकार है। तब स्वाभाविक बात होती है, जहां एक आदमी को दश लाख रुपये का टैक्स देना पड़ता था, वहाँ अब दो मालिक हो गये। अब पांच पाँच लाख वाले दो व्यक्ति हो गये। अतः पांच पाँच लाख का ही टैक्स देना पड़ेगा, जो कि दश लाख से कम होगा ही इसी प्रकार जब किसी के घर में दश बच्चे हो गये तो वे बच्चे भी हिस्सेदार हो जाते हैं। अब दश लाख की सम्पत्ति होने पर एक एक लाख के हिसाब का ही टैक्स होगा। लाख से भी कम रुपये हुए और दश बच्चे हुये तो बिलकुल ही टैक्स नहीं देना पड़ेगा। एकाङ्गी तर्क से काम नहीं चलता है।

सिद्धान्तः परिवार नियोजन असंगत व्यवस्था है। शास्त्र की दृष्टि से परिवार नियोजन के लिये लूप लगाकर या इन्जेक्शन आदि द्वारा बन्ध्याकरण, नपुन्सकीकरण पाप ही है। ब्रह्मचर्य, सन्यास, वानप्रस्थ आश्रमों का विस्तार करके; या संयम का विस्तार करके सन्तान की संख्या कम करने का प्रयत्न ठीक है। गोपालन, गोसम्वर्द्धन, दूध, दही, घृत का भोजन मिलने से हृष्ट-पुष्ट बलवान् होने पर, चर्बी आदि बढ़ने से सन्तानोत्पत्ति अपने आप कम हो जाती है। इसके अतिरिक्त कृषि के विकास से अधिक अन्न पैदा करने से भी परिवार नियोजन के बिना भी सब समस्या सुलझ सकती है। अन्नोत्पादन वृद्धिद्वारा ही अन्न संकट दूर करना अच्छा है, भोक्ताओं को कम करके नहीं। भोग्य भोक्ताके लिये होता है। भोग्य के लिये भोक्ता नहीं। वह शैतान की ही पलंग हो सकती है, जिस पर सोने के लिये सोने वाले को ही खींचतान कर बड़ा बनाना पड़े या काट पीट कर छोटा बनाना पड़े।

स्वदेशी साधन ही श्रेष्ठ है

यह भी कहा जाता है कि, "देश गरीब है। तो सम्पत्तिको सारी दुनिया से निमन्त्रित करना पड़ेगा। लेकिन इस मुल्कका ख्याल है कि दूसरे मुल्क से लोग आ जायेंगे तो हमें चूस लेंगे। श्रम अगर उपयोग में नहीं आता तो बिना चूसे ही खत्म हो जाता है। अगर सारी दुनिया की सम्पत्ति यहां निमन्त्रित हो तो इस मुल्कका जो बहुत सा श्रम रोज व्यर्थ मर रहा है, वह सारा का सारा श्रम पून्जी में परिवर्तित हो जायगा। इससे हमारा शोषण नहीं होगा। वरन् जो श्रम गङ्गा के पानी जैसा समुद्रमें गिरता जा रहा है, उसका उपयोग कर लेना ही ठीक है। अन्यथा वह नष्ट हो जायगा। (पृ० ८९)

परन्तु यह कथन भी निःसार है, क्योंकि आज सर्वत्र ही औद्योगिक क्रान्ति हो चुकी है। अपने अपने विकास में सब लगे हैं। वैसे अनेक देशों की पून्जी भारत में लग ही रही है। बाहर के विशेषज्ञ भी यहां आये हैं। अंग्रेज लोग पहले यहां पर हुकूमत करते थे, व्यापार की दृष्टि से ही भारत में आये थे। परन्तु व्यापार करते करते ही वे यहां के शासक बन गये थे। समाजवादी दृष्टिकोण से विदेशी, स्वदेशी सभी पून्जीवादी शोषण करते हैं। अतः राष्ट्रके साधनों का उपयोग कर देश की ही सम्पत्ति बढ़ानी चाहिए। दूसरे देशों से उधार के रूप में भी पून्जी लेकर लगायी जाती है। वैसे विदेशी विशेषज्ञों का भी उपयोग किया ही जाता है। बेकारी दूर करने के लिए विविध विकास योजनाओंमें विदेशी पून्जी का प्रयोग भी शामिल है।

राजनीति अयोग्यों का द्वार नहीं

कहा जाता है कि, "समाजवाद लक्ष्य है, पून्जीवाद प्रक्रिया है।" परन्तु इसी पुस्तक के आरम्भ में कहा गया है कि समाजवाद बादशाह के झूटे कपड़ों जैसी एक असंभव वस्तु है। श्री रजनीश जी कहते है कि, "पून्जीवाद श्रम को सम्पत्तिमें बदलने की प्रक्रिया है। पून्जीवाद को विकसित होनेका मौका दिया

जाय तो वह सारे श्रम को सम्पत्ति में बदलने का मार्ग खोज ल सकता है। लेकिन समाजवादी सब राज्यके हाथमें देने को तय्यार हैं। परन्तु राजनीतिज्ञ से ज्यादा अयोग्य पृथ्वीपर कोई नहीं। जो आदमी किसी भी बाजार में जूता बेंचने की दुकानपर भी नहीं रखा जा सकता, वह शिक्षामन्त्री हो सकता है। क्योंकि शिक्षा मन्त्री होने का योग्यता से कोई सम्बन्ध नहीं। राजनीति एक मात्र अयोग्यों के लिए द्वार है। उसमें कोई भी आदमी जो सिर्फ एक कला जानता है कि दश बीस आदमियों को अपने पीछे इकट्ठा कर सके, शोरगुल मचा सके, वह आदमी राजनीति में योग्य हो जाता है। फिर वह शिक्षा मन्त्री बनेगा। वाइस चान्सलर, शिक्षा शास्त्री उसके आगे पीछे चक्कर काटेंगे। वह आदमी अंगूठेसे दस्तखत करके शिक्षा संचालित करेगा। जिसको मेडिकल साइन्सका कुछ भी पता नहीं, वह स्वास्थ्य पर मुल्कका मार्ग दर्शन करेगा। इसी तरह वही राजनीतिज्ञ धन को भी अपने हाथ में लेना चाहता है। पर ऐसे लोग मुल्क को दिवालिया बना कर ही दम लेंगे।" (पृ० ८९-९०)

उक्त बाते अंशतः सत्य भी हैं। फिर भी सम्पूर्ण राष्ट्र को अपने पीछे चलाने की एक कला तो है ही। आखिर इसी कला से तो आप भी आचार्य और अव भगवान बन गये। अन्यथा क्या आपने वेद शास्त्रों का अध्ययन किया है? किसी दर्शन का साङ्गोपाङ्ग अध्ययन किया है? क्या आप में—

"आ चिनोति च शास्त्रार्थमाचारेत्स्थापयत्यपि।
स्वयमाचरते यस्मात्तस्मादाचार्य उच्यते।"

यह आचार्य का लक्षण है?

"ऐश्वर्य्यस्य समग्रस्य धर्मस्य यशसः श्रियः
ज्ञान वैराग्ययोश्चैव षण्णांभग इतीरणा।"

के अनुसार षड्भग वाले हैं?

"उत्पत्ति प्रलयञ्चैव भूतानामार्गतिगतिम्।
वेत्ति विद्यांमविद्याञ्च स वाच्यो भगवानिति।"

के अनुसार आप भगवान हैं?

कहा जाता है कि, 'जनताके चुने हुये प्रतिनिधि पार्लियामेंट बनाये। परन्तु वे शिक्षा मन्त्री या स्वास्थ्य मन्त्री न बनें। हां पूरे मुल्क से खोज कर किसी योग्य शिक्षा शास्त्री को शिक्षामन्त्री एवं योग्य चिकित्सा विशेषज्ञ को स्वास्थ्य मन्त्री बनाये। गणतन्त्र जब तक गुणतन्त्र से नहीं जुड़ेगा तब तक वह नासमझी की कहानी है। जनता को अपना प्रतिनिधि चुनने का हक है। परन्तु स्वास्थ्य मन्त्री चुनने का अधिकार जनता को नहीं है। हां जनता के प्रतिनिधि योग्य स्वास्थ्य मन्त्री की खोज करे। कैबिनेट और मुल्क के शासन का हक विशेषज्ञों के हाथ में होना चाहिए। जब तक एक्सपर्ट एंव गुणवानों के हाथ में राज्य नहीं होगा तब तक सबके लिये खतरा ही है। आज छोटी सी छोटी चीज के लिये विशेषज्ञ होते हैं। पुराना जमाना गया, जब वैद्य सब कुछ जानता था। वह बिना रोगी से पूछे ही नाड़ी देखकर दवा देता था। किसी डाक्टर के पास कोई औरत आंख दिखाने गयी। डाक्टर ने भीतर लें जाकर पूछा आपकी किस आंख मे तकलीफ है। औरत ने कहा बायें आंख में; डाक्टर ने कहा माफ करिये, मैं दांयी आंख का डाक्टर हूं। बांयी आंख का डाक्टर आगे है। एक आंख भी कितनी बड़ी बात है कि असल में दो आंख का डाक्टर भी ज्यादा दिन नहीं चलेगा। एक आंख की इतनी बड़ी घटना है, इतनी बड़ी जटिलता है। लेकिन जिन्दगी का जो सबसे जटिल तन्त्र है राज्य, वह अविशेषज्ञों के हाथ में है। वे मुल्क को बरबाद करते चले जायेंगे। उनका मन होता है सबपर कब्जा कर लें। धनकी ताकत मेरे हाथ में हो। उद्योग भी मेरे हाथ में हो। धर्म भी मेरे हाथमें हो। विज्ञान भी मेरे हाथ में हो। अगर उसकी चाह पूरी की गयी तो खतरा होगा। अतः गुणतन्त्र गणतन्त्र के माध्यम से चलना उचित है। आज नहीं कल सारी दुनिया में जहां भी समझ बढ़ गयी है, वहाँ विशेषज्ञ मूल्यवान होता जा रहा है। आज नहीं कल इस बातकी बहुत संभावना है कि वह जो विशेषज्ञ है, वह जो ज्ञानी है, उसके हाथमें सब चला जाय।" (पृ० ९१-९२)

यह ठीक है, योग्य व्यक्तियों के हाथमें तो शासन तन्त्र होना ही चाहिए। पर सारी दुनिया में पूञ्जीपति ही योग्य हैं, यह भी कैसे कहा जा सकता है। आज कोई नयी बात तो नहीं है। सदा से ही श्रम सम्पत्ति के रूप में परि-

वर्तित होता रहा है। सभी लोग श्रम से ही नौकरी करके धन पैदा करते हैं। खेती करके धन पैदा करते हैं। व्यापार करके धन पैदा करते हैं। आपके अनुसार पून्जीवाद पचास साल में ऐसी मशीन तय्यार करा लेगा, जब सभी श्रम एवं श्रमिक बेकार हो जायेंगें। श्रमिक से अनन्त गुणित मशीन की शक्ति है। उसके सामने श्रमिक और उसके श्रम का कोई महत्व नही। फिर पून्जी-वाद श्रम का उपयोग क्यों करेगा ?

वस्तुतः रजनीश की बाते आपस में टकराती हैं। नीति शास्त्रके अनुसार राज्य प्राप्त करना एक बड़ी दक्षता एवं नीतिज्ञता हैं। जनता को वश में करके राज्य तन्त्र पर अधिकार प्राप्त करना स्वयं में एक बड़ी बुद्धिमानी है सभी मनुष्य सब विषय में दक्ष नहीं होते। एक चिकित्सक घड़ी का पुर्जा बनाने में अयोग्य ही है। एक इन्जीनियर अपने लड़के की चिकित्सा नहीं कर पाता। संसार में कोई व्यक्ति अयोग्य नहीं है। केवल प्रयोक्ता पुरुष ही दुर्लभ होते हैं। कोई अक्षर अमन्त्र नहीं, कोई मूल, तृण, वीरुध, वृक्ष, लतादि अनौषध नहीं। केवल कोई जानकर यथायोग्य प्रयोग करने वाला दुर्लभ होता है—

"अमन्त्रमक्षरं नास्ति नास्ति मूलमनौषधम्।
अयोग्यः पुरुषो नास्ति योजकस्तत्रदुर्लभः।"

इसीलिए पढ़ने पढ़ाने वाले तथा अन्य शास्त्र चिन्तक व्यसनी एंव मूर्ख ही होते हैं। जो क्रियावान युक्ति एंव शास्त्रों से निश्चित अर्थ को क्रियान्वित करता है, वही बुद्धिमान होता है। अतः कई अक्षर न जानने वाले लोग भी शिक्षा शास्त्रियों का उपयोग करना जानते है। अन्यथा अयोग्य व्यक्ति, योग्य शिक्षा शास्त्री एंव योग्य चिकित्सक को ही कैसे समझ पायेगा ? फिर जब आपके अनुसार दांयी नेत्रका विशेषज्ञ वायीं नेत्रका विशेषज्ञ नहीं हो सकता, तो किसी दांये नेत्र के विशेषज्ञ को भी स्वास्थ्य मन्त्री कैसे बनाया जा सकता है ? क्योंकि चिकित्सा के अन्य सैकड़ों विभागों के लिये तो वह भी अयोग्य ही रहेगा। किसी संस्कृत के महान् विशेषज्ञ को शिक्षा मन्त्री कैसे बनाया जायगा, क्योकि शिक्षा के अन्य सैकड़ों विषयों में अविशेषज्ञ ही रहेंगा। एक

व्यक्ति दो चार विषयों का विशेषज्ञ होने पर भी सैकड़ों विषयों में अविशेषज्ञ या अनभिज्ञ रहता ही है। अतः नीति निपुण व्यवहारज्ञ दार्शनिक सर्वार्थ-दर्शिनी प्रज्ञा से ही विशेषज्ञों का भी उपयोग करता है। विविध विद्यावान् उसके पास उपस्थित होते है। वस्तुतः अभी तक लोकतन्त्र भी विकसित नहीं हो पाया। तभीतो उसमें ऐसे अयोग्योंका सन्निवेश हो पाता है। कई पून्जीपति भी कुछ भी बिना पढ़े करोड़ों रुपये कमा लेते हैं। कई पढ़े लिखे उनकी चाकरी करते हैं और उनके सामने झख मारते हैं। वही, पून्जीपति पार्लियामेंटों पर कब्जा करके रखते हैं। रुपयोंके बलपर या अन्ध विश्वास के बल पर कई गधे भी एम० पी०, एम० एल० ए० हो जाते है।

लोकतन्त्र में भी पर्याप्त सुधार अपेक्षित है। सबसे पहली बात यह है कि चुनने वाली जनता राष्ट्रहित और आत्महित समझ सके और भले बुरे को, योग्य अयोग्य को, पहचान सके। स्वार्थग्रस्त न हो। कोटा और लाइसेन्स के लोभ में, शराब की नशा में अपने बहुमूल्य वोटका दुरुपयोग न करे। वोटरों की योग्यता शिक्षा एंव, चरित्र की स्थितिं निर्धारित होनी चाहिये। प्रत्याशी एंव उम्मीदवारों की शिक्षा, योग्यता एवं चरित्र की स्थिति चाहिए। निर्वाचन मंहगा न हो। प्रत्येक नागरिक के पास निर्वाचन व्यय के योग्य धन हो। तभी योग्य व्यक्तियो का संकलन हो सकता हैं।

वेद, रामायण, महाभारत, तथा मनु, शुक्र, बृहस्पति आदिकोंके अनुसार तो राजा को ही योग्य धार्मिक सदाचारी बनाने पर ही पूरा बल दिया गया है। थोड़े से व्यक्ति तय्यार भी किये जा सकते हैं। परन्तु हर पांच साल में हजारों योग्य लोगोंको ढूंढ निकालना भी सहज काम नहीं है। किसीभी पार्टी या सरकार में कुछ ही मुख्य व्यक्ति होते हैं, जिनकी बुद्धि और नीतिकी प्रधानता होती है और लोग केवल उनके अनुगामी होते है। यदि पून्जीवाद से बेकारी बेरोजगारी बढ़ेती है तो सम्पत्ति समाज के हाथमें जाना ठीक ही है।

जाति जन्मना होती है

रजनीश कहते हैं कि, "कोई जन्म से ब्राह्मण नहीं होता। मनुष्य चार प्रकार का होता है, यह बड़ी कीमती अन्तर्दृष्टि है। पर जन्म से मानना भूल

हैं। कुछ लोग ऐसे है धन की खोज ही जिनकी आत्मा हैं। शक्ति की खोज किसी की आत्मा है। श्रम की खोज एवं ज्ञान की खोज ही किसी की आत्मा है। कुछ लोग धन पैदा कर सकते हैं, पर जरूरी नहीं कि धनिक का बेटा ही धन पैदा कर सकता है। पर ज्ञान की खोज करने वाला मार्क्स जैसा ब्राह्मण हो सकता है। दुनिया में विचार का जन्म बिना ब्राह्मण के नही हो सकता। शुद्ध राजनीतिज्ञता क्षत्रिय में ही हो सकती है। श्रम की खोज करने वाला शुद्र है। [पृ० ६२-६३]

यह सब निर्मूल है। कारण कि ब्राह्मणादिनाम वैदिक संस्कृति के हैं। ईसायी, मुसलिम, जैन, बौद्ध आदि ब्राह्मणादि भेद नहीं मानते हैं, वैदिक धर्म में जहां ब्राह्मणादि की चर्चा हैं, वहां जन्मना ही ब्राह्मणादि मान्य हैं। प्रसिद्ध है—

"ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीत् - - - पद्भ्यां शूद्रोऽजायत्"

इससे स्पष्ट है कि विराट पुरुष के मुख से ब्राह्मण, बाहु से क्षत्रिय, ऊरु से वैश्य, पैर से शूद्र का जन्म है। मनु ने—मुख बाहुरूपज्जानाम् इस वचन के आधार पर मन्त्र के अनुसार ब्राह्मणादि को मुखादि से जन्य कहा है। अतएव वैदिक धर्म में ब्राह्मणादि जन्मना जातिके अनुसार ही संस्कारों का विधान है। इतना ही क्यों, जातकर्म नामकरणादि संस्कार में भी जाति का उपयोग होता है। बाल्य पश्चात, उपनयन संस्कार आदि भी ब्राह्मणादि जाति के अनुसार होता है। उतनी छोटी अवस्था में गुणों तथा कर्मों की क्षमता का ज्ञान संभव ही नहीं है। राजसूयादि यज्ञों में जन्मना जाति ही विवक्षित है। परन्तु जिन्हें यह सब मान्य नहीं, उनका ब्राह्मणादि नाम से कुछ प्रयोजन भी नहीं है। अ क च ट त आदि के नाम से भी वह विभाग हो ही सकता है।

इसके अतिरिक्त यदि किसी में प्रतिभा जन्म जात है तब जाति क्यों नहीं जन्म जात हो सकती? गुणकर्म सदा सबके एक से नहीं होते। यदि गुण कर्म आदि से जाति का निर्णय होगा तब तो कुछ निर्धारण ही न होगा। एक ही

व्यक्ति पढ़ने लिखने में लगेगा तो ब्राह्मण, कुत्ता मारने के लिये दण्ड उठायेगा तब क्षत्रिय, नोन तेल खरीदने जायगा, तो वैश्य, श्रम करेगा, तो शूद्र होगा। प्रायः प्रत्येक व्यक्ति को ज्ञान, शक्ति, धन और श्रम की अपेक्षा रहती ही हैं। ऐसी स्थिति में कौन क्या होगा? यह कर्मणा निर्धारित नहीं हो सकता। यदि गुण कर्म बदलने के साथ जाति बदलती जाय तब वह व्यवस्था न होकर अव्यवस्था होगी।

समाजवाद सुतरां योग्यताके अनुसार व्यवस्था करता ही है। फिर रोक क्यों लगायेगा? रूसमें ईश्वर खोज वर्जित है, यह कहना निर्मूल है। अगर कोई चीज हैं तो उसकी खोज कहीं भी वर्जित नहीं है। "रूसमें वह जो बुद्धि थी, जो धन पैदा करती थी, पचास सालसे उसे रोका गया। समाजवाद इन शक्तियों को स्वतन्त्रता नहीं देना चाहता है। (पृ० ६४)। यह सब निरर्थक है। रूस ने विज्ञान की खोज की है। अमरीका को उससे हाथ मिलाने को बाध्य होना पड़ा हैं। लाभदायक वस्तु के बचाने का प्रयास किया जाना उचित है। परन्तु शोषण को, बीमारी को बचाये रखने की आवश्यकता नहीं होती। रूस की दृष्टि में पूञ्जीवाद शोषण है, बीमारी है। ज्ञान की खोज, शक्ति की खोज, धनकी खोज, किसी देश की अपेक्षा रूसमें कम नहीं है।

समझौता का मार्ग ही सर्वश्रेष्ठ है

रजनीश कहते हैं कि, "गांधी के नेतृत्व ने देश को जो मन दिया वह बनिये का था। बनिया कम्प्रोमाइज चाहता है। गांधी नेतृत्व का परिणाम देश का बंटवारा था। इसीलिये मरी हुई, कटी हुई आजादी मिली। अंग्रेज भी बनिये थे। इसी से गांधी से अंग्रेजों से मेल बढ़ा। भगत सिंह से, सुभाष से, उनका मेल नहीं हो सकता था। गांधी और अंग्रेजों का माइण्ड एक था। अंग्रेजों ने गांधी जी की जितनी सुरक्षा की, दुनिया के किसी राज्य ने कभी राज्य के दुश्मनकी इतनी सुरक्षा नहीं की। परन्तु हमारी सरकार उन्हें नहीं बचा सकी। गांधी जी और अंग्रेजों के बीच एक इनरकम्यून-आन्तरिक संबंध

हो गया। दोनोंका समझौता हुवा। परन्तु आजादी गुलामी से बदतर मिली, वस्तुतः आजादी मांगी नही जाती, ली जाती है, छीनी जाती है। वह समझौते से, वार्ताओं से नहीं मिलती। जब आजादी ली जाती है तो उसमें एक जिन्दगी होती है। उसके खून में गति होती है।

महावीर क्षत्रिय थे। जैनियों के चौबीस तीर्थङ्कर क्षत्रिय थे। लेकिन जैनी कोई क्षत्रिय नहीं। वे सब बनिये हैं। क्योंकि बनिये की अहिंसा अपील कर गयी। जो मुल्क के भीतर बनिया दिमाग था, उसने कहा यह आदमी ठीक कहता है—क्योंकि न हम हिंसा करेंगे, न दूसरे हमारी हिंसा करेंगे। जंचती है यह बात।" (पृ० ९६-९७)

परन्तु यह असंगत ही है। क्योंकि जैन, बौद्ध दोनोंमें वर्ण व्यवस्था मान्य ही नहीं हैं। उनके मतानुसार सब मनुष्य हैं, न कोई क्षत्रिय है न कोई वैश्य। अतः महाबीर क्षत्रिय थे, ऋषभदेव क्षत्रिय थे, यह कहना स्व सिद्धान्त विरोध ही है। उनके यहां वर्ण व्यवस्था का कोई प्रयोजन नहीं। वैदिक हिन्दुओं में ही वर्ण व्यवस्था है। उनके ही यहां इसका उपयोग मी है। क्योंकि वैदिक कर्मकाण्ड वर्ण के आधार पर प्रवृत होता है। ब्राह्मण जाति ही वेदादि के अध्यापक हो सकते हैं। वेदज्ञ क्षत्रिय भी वेदाध्यापक नहीं हो सकते। जब मनुष्य मनुष्य समान है, तब उनमें कौन वैश्य? कौन क्षत्रिय? यदि ऐसी कोई जन्मजात विशेषता मनुष्यमें हो सकती है, तब तो जन्मना जाति मानना ही उचित है। तभी युद्ध के लिये एक एक क्षत्रिय मिल जायेगें। एक एक के लिये छानबीन करने में सैनिक संगठन ही न बन पायेगा। कर्म भी उसी के आधार पर चलता है। मल्लाहका लड़का ही नाव चलाना अच्छा जानता है, पक्षी का बच्चा उड़ना जानता है। मछली का बच्चा तैरना जानता हैं। लड़ने वालेका लड़का लड़ना जानता है। व्यापारीका लड़का व्यापार जानता हैं, सोनार का लड़का सोनार, लोहारका लड़का लोहार होता ही है। अलग से क्षत्रिय दिमाग, ब्राह्मण दिमाग, बनिया दिमाग, समझना असंभव ही हैं।

इसी तरह वेद पढ़ने वाले का लड़का वेद पढ़ने में कुशल होता है।

अन्यथा एक-एक व्यक्ति का दिमाग समझने में वर्षों बीत जायेंगे। फिर कब कौन ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र होने का सर्टिफिकेट देगा ? फिर कब वेद पढ़ने, युद्ध सीखने, व्यापार करने में लगेगा। करनेपर ही दक्षता, अदक्षता का भी निर्णय होगा। उसके आधारपर पुनः नया रद्दोबदल किया जाय तो जीवन ही समाप्त हो जायगा। यह ठीक है कि कभी ब्राह्मण के लड़के वेद नही पढ़ पाते। परन्तु यह असावधानी का दोष है। उत्तम संस्कार, उत्तम वातावरण होने पर अवश्य ही ब्राह्मण का लड़का वेद पढ़ता है। क्षत्रिय का लड़का युद्ध निपुण होता है। वातावरण एवं संस्कार का सुधार करने से जन्मना जाति में सुधार अधिक संभव हैं। इसीलिये लड़ाकू जातियां प्रसिद्ध हैं। उन्हीं में से योग्य योद्धा निकलते हैं। क्षत्रिय भी समझौता वादी होता है। वैश्य ही नहीं। पाण्डव कौरव दोनों क्षत्रिय थे, फिर भी समझौते का भरसक प्रयास किया। श्री कृष्ण को दूत बनाकर भेजा गया। युद्ध तभी उचित होता है जब उससे बेहतर दूसरा कोई रास्ता नहीं बचता। नीति शास्त्रने भी सन्धि न हो सकने पर ही विग्रह की अनुमति दी है। अहिंसा नीति अपनानेसे अंग्रेजों द्वारा गांधी की सुरक्षा उचित ही थी। हिंसक की ही हिंसा में ही विरोधी की भी प्रवृत्ति होती है। योग शास्त्रके अनुसार तो अहिंसा प्रतिष्ठा हो जाने पर अहिंसकके समीप में आने वाले परस्पर विरोधियों में भी हिंसा की प्रवृत्ति निरुद्ध हो जाती है।

यद्यपि गांधी जी की अहिंसा उतनी नही प्रतिष्ठित हो पायी थी, तथापि विरोधी अंग्रेज भी उनकी अहिंसा नीति की कद्र करते थे। यदि अहिंसा बनियों को ही पसन्द हो सकती थी तो आपके अनुसार क्षत्रिय महावीर और जैनियों के २४ तीर्थङ्करों ने अहिंसाक को अपना धर्म क्यों बनाया ? आपके अनुसार या तो वे अहिंस नहीं हो सकते या तो क्षत्रिय नही हो सकते।

आपकी वह कहानी भी आपके विपरीत ही हैं, जिसमें कहा गया है कि मूंछ वाले राजपूत ने ऊंची मूंछ वाले बनिये से कहा, मूछ नीची कर नहीं तो यह तलवार संभाल, निपटारा हो जाय। बनिये ने कहा ठीक है। अगर हम लोग मर जायेंगे, बच्चे स्त्री परेशान होंगे। तू जा पत्नी और बच्चों का सफाया कर आ मैं भी सफाया कर आता हूं। फिर हम दोनों

लड़े। फिर कोई डर नहीं। क्षत्रिय ने कहा बिलकुल ठीक और क्षत्रिय ने जाकर फैसला कर दिया। बाहर आकर खड़ा हो गया तो उस बनिये ने कहा मैंने सोचा क्यों नाहक झगड़ा करें, मूंछ ही नीची कर लेता हूं।' (पृ० ९७)। पर यदि यही राजपूती है, यही क्षत्रियत्व है तो कहना पड़ेगा आप की दृष्टि में मूर्खता ही राजपूती है और आप इसी कोटि में भगत सिंह और सुभाष को रखना चाहते हैं और क्यों जैनों के तीर्थङ्कर भी इसी कोटि के थे?

वस्तुतः क्षत्रिय केवल योद्धा एवं जोशीला ही नहीं, किन्तु बुद्धिमान एवं नीतिज्ञ भी होता है। जो किसी दुश्मन की सलाह पर निरर्थक बच्चों, स्त्रियों का सफाया करे, यह क्या आदर्श क्षत्रिय हो सकता है? जोश एवं होश दोनों ही के बिना कोई लड़ाई जीती नहीं जा सकती। जोश में बेहोश हो जाना मूर्खता ही है। गांधी जी ने ऐसी मूर्खता का विरोध किया था। गांधी जी की अहिंसा को हिन्दू मुसलिम दंगों का मूल कारण कहना बेईमानी है और लोगों को गुमराह करना है। गांधी जी से पूर्व सदियों से इस देश में हिन्दू मुस्लिम अनबन थी। जैसे आप कहते हैं— अंग्रेजों के विरुद्ध हिन्दुस्तान में घृणा की भावना थी। उसको अहिंसा द्वारा दबाना अनुचित था। यही बात मुसलमानों के प्रति भी कही जा सकती थी। अंग्रेज विधर्मी और विदेशी थे वैसे ही सावरकर आदि की दृष्टि में मुसलमान भी विधर्मी और विदेशी थे। अतः वे लोग भी अहिंसा के द्वारा उस घृणा को भी दबाना अनुचित कह सकते थे। वस्तु तस्तु यह दोनों भावनायें भावातिरेक का ही परिणाम है। समझौते का मार्ग सर्वथा श्रेष्ठ है। परन्तु अपने वास्तविक अधिकार को खो देना समझौता नहीं है। यह समझौता करने वालों की कमजोरी थी जो उन्होंने लंगड़ी आजादी लेकर समझौता किया। किन्तु यह हिन्दू मुसलमानों की अपनी कमजोरी थी जो देश की अखण्डता को न बचा सके। इस कमजोरी के कारण यदि हिन्दुस्तात लड़कर भी आजाद हुआ होता तो भी अखण्डता नहीं बचा सकता था। पाकिस्तान में ही क्यों विभाजन हुआ? बंगला देश क्यों बना? मुजीब क्यों मारे गये? क्या यह सब अहिंसा और समझौता का परिणाम है?

गांधी जी की व्यक्तिगत आलोचना अनुचित

श्री गांधी जी के जीवन के सम्बन्ध में रजनीश ने बहुत सी निरर्थक बातें उठायी हैं। परन्तु व्यक्तिवादों पर विचार करना निरर्थक ही है। वे कहते है "हिन्दुस्तान में अंग्रेजों के प्रति सहज घृणा पैदा हुयी थीं। वह दब गयी क्योंकि गांधीजी चौरा चौरी की घटनासे फौरन पीछे हट गये। उस दबाव की वजह से हिन्दू मुस्लिम दंगे हुये। अगर हिन्दुस्तान अंग्रेजोंसे सीधा लड़ता तो हिन्दु मुस्लिम दंगे कभी न होते। जब हम लड़ न पाये और घृणा इकट्ठी हो गयी तो कहीं न कहीं वह निकलेगी। तो हमें रास्ता खोजना पड़ा। हिन्दु-मुस्लिम दंगे हुए, लोग समझते हैं कि उन्होंने रोकने का प्रयत्न किया था। पर मेरी दृष्टिमें परोक्ष रूपसे वे ही सब दङ्गोंके जिम्मेदार थे। मानव शास्त्र के अनुसार जब हिंसा सब तरफ से रोक दी गयी, जो स्वाभाविक थी कि हिन्दुस्तान आग लगा देता अंग्रेजी सल्तनतको फेंक देता उन्हें मुल्कके बाहर। वह सब वेग रोक दिया। वह घृणा कहां से निकले। दफ्तर में काम करने वाले को मालिक डांट देता है। उसकी तबियत होगी मालिक की गर्दन दबा दें। लेकिन मालिककी गर्दन कैसे दबायेगा ? हंसता रहेगा, मुस्कराता रहेगा पर वहांसे जाकर कोई न कोई बहाना बनाकर, वह क्रोध औरत पर उतारता है। वह गर्दन पकड़ता है औरत की। ठीक करना था मालिक को पर वह ठीक करने लगा औरत को। नाली बन्द कर देगें तो घर भर में गन्दगी फैल जायगी। हिंसा है, उसका बहाव भी चाहिए। अगर वह ठीक जगह से न जायगी तो गलत जगह से बहेगी। पत्नी अपना क्रोध बेटे पर उतारेगी, बेटा गुड़िया का टांग तोड़ेगा।

गाँधी ने हिन्दुस्तान की हिंसा रोककर दमन पैदा किया। वह अंग्रेजों की तरफ बही होती तो शानदार मुल्क पैदा होता। हिन्दुस्तान, पाकिस्तान दो मुल्क न बनते। लड़कर तलवार पर धार आ गयी होती लड़कर हमारी जिन्दगी में रस, उमंग, आ गयी होती। वह नहीं हो पाया तो हमें तलवार चलानी पड़ी। पड़ोस में फिर हिन्दू मुसलमान टकराये। १५ अगस्त ४७ के

बाद दश लाख लोग मारे गये। उसका जिम्मेदार कौन ? लोग बहुत बेईमान है। कोई कहता है अंग्रेजों ने भड़का दिया, जिन्ना ने भड़का दिया वास्तव में किसी ने नहीं भड़काया। हिन्दुस्तान के मन में आग थी, उसको निकालने का मौका नहीं था और जब हिन्दुस्तान बंटा एक मौका मिल गया। सैकड़ों वर्ष से गुलामी की पीड़ा थी। उसके बंटनेका कोई उपाय नहीं था और दश लाख मरे। अगर दश लाख लोग ही मरने थे तो अंग्रेजों से हम कभी का देश छीन लिये होते। अंग्रेज दूसरे ही दिन हिन्दुस्तानमें न होते।" (पृ० ९८-९९-१००)

उक्त बातें अत्यन्त अनर्गल और बेतुकी हैं। यह कौन समझदार स्वीकार करेगा कि कोई व्यक्ति दुश्मन से पीटता है तो वह अपने मित्र पर क्रोध उतारता है। हिन्दुस्तान अंग्रेजों से लड़ता, पर क्या ईंट, पत्थर से, बांस की लाठियों से लड़ता ? उसके पास कोई आधुनिक अस्त्र शस्त्र नहीं थे ? स्वतन्त्र होने के बाद भी हिन्दुस्तान लड़ा था चीनसे, क्या दशा हुयी ? क्योंकि आधुनिक अस्त्र शस्त्र नहीं थे। यहां तो मशीनगन बनाने वाले कारखानों में बाल्टियाँ बनने लगी थीं। उस समय तो बिल्कुल अस्त्र शस्त्र न थे। यदि हिन्दुस्तान आप जैसे लोगो की सलाह से लड़ता तो, कितने मरते इसका क्या हिसाब, हिसाब भी नहीं हो सकता था। अहिंसा के द्वारा गांधी ने तो अस्त्र शस्त्र सम्पन्न अंग्रेजों को पंगु बना दिया। सत्याग्रहियों पर अस्त्र नहीं चला सकते थे। कभी चलाते थे तो शर्मिन्दा होते थे दुनियाके सामने। काम, क्रोध हिंसा आदि का निरोध कल्याणकारी होता है। परन्तु रजनीशका दिमाग तो उल्टा ही है। वे तो काम को रोकने को भी अनर्थ का हेतु मानते हैं।

हिन्दू शास्त्र तथा जैन, बौद्धों के आश्रमों द्वारा भी इन बातोंका समर्थन नहीं हो सकता है। कथञ्चित वेद तो वैदिकी हिंसा को हिंसा नहीं मानते। हत्यारे को फाँसी देना, आततायी का बध करना, हमलावर दुश्मन का वध करना उनकी दृष्टि में पाप नहीं है। परन्तु जैन, बौद्ध तो अपराधी की हिंसा को भी हिंसा ही मानते हैं। वैदिक भी निवृत्ति मार्ग में तो "अक्रोधेन क्रोधम्, अक्रोध से क्रोधको जितने का उपदेश करते हैं।

मलमूत्र के वेग का धारण करना हानि कारक होता है। परन्तु काम,

क्रोध का वेग, हिंसा के वेग का धारण कल्याणकारी ही होता है। इसके सैकड़ों उदाहरण शास्त्रों में भरे पड़े हैं।

उचित दबाव डालना हिंसा नहीं

कहा जाता है कि, "वैश्य का अपना उपयोग है। वह अपनी जगह बहुत कीमती है। ब्राह्मण भी बहुत कीमती है। परन्तु समाजवाद इन सबको लीप पोत देना चाहता है। मनुष्यों में जो विभिन्न टाइप हैं उनको पोंछ डालना चाहता है। वह कहता है कि मनुष्य एक है।" (पृ० १००) परन्तु जैन बौद्ध एवं रजनीश एवं उनके साथी भी तो वर्ण व्यवस्था के विरोधी ही हैं। इनको जाति पांति कुछ भी मान्य नहीं है। यदि कोई स्थायी जाति व्यवस्था, वर्ण व्यवस्था नहीं मान्य है, तो बात वही होगी। समाजवादी पून्जीवादी दोनों ही समान ही है। दोनों भौतिकवादी, दोनों शास्त्र विरोधी यदि वैसी स्थिति में भी कोई वैश्य दिमाग, क्षत्रिय दिमाग या ब्राह्मण दिमाग उभड़ता है, तो वह किसी वाद में उभड़ सकेगा। स्वाभाविक उभाड़ किसी के रोके रुक नहीं सकता है। जाति भेद, वर्णभेद, शास्त्र प्रामाण्य, मान्यता न होने से कोई भी अच्छा उभाड़ कहीं सफल नहीं हो सकता।

यह कहा जाता है कि, "अगर मैं किसी से कहूं कि मेरी बात मानो नहीं तो मैं छूरा मार दूंगा, जैसे यह हिंसा है। वैसे ही मेरी बात मानो नहीं तो मैं अपने को छुरा मार लूंगा यह भी हिंसा ही है। ऐसे आमरण उपवास के द्वारा कोई बात किसी से मानने का आग्रह करना भी हिंसा ही है। खुद मरने की धमकी तथा दूसरों को मारनेकी धमकी हिंसा है।"(पृ०१०१)

अवश्य यह बात विचारणीय है। क्या दबाव डालना ही हिंसा है? या अनुचित दबाव डालना हिंसा? स्पष्ट है कि अनुचित दबाव डालना ही हिंसा है। उचित दबाव डालना अहिंसा ही है। पुत्र शिष्य का शिक्षा के लिये ताडन करना भी अहिंसा ही है। पंचायत या न्यायालय के द्वारा विरोधी पर दबाव डालकर भी अपना हक प्राप्त

करना अहिंसा ही है। विचार विनिमय द्वारा या मध्यस्थ के निर्णय से विरोधी को अपना विचार मानने को वाध्य करना भी हिंसा नहीं है। इसी तरह अनशन द्वारा विरोधी को उचित बात मानने के लिये भी वाध्य करना अहिंसा ही है। जहां विरोधी मदोन्मत्त होकर औचित्यानौचित्य विचारने के लिये ही तय्यार न हों, वहां आत्मसंयम द्वारा उसे विचार के लिये वाध्य करना अहिंसा ही है। दूसरों को भोजन न करने देना और स्वयं भोजन न करना दोनों समान नहीं है। स्वेच्छया एकादशी आदि व्रत किया जाता है। जैन साधु तो सैकड़ों दिनों का उपवास करते हैं। इसे वे अहिंसा ही मानते हैं। परन्तु वही जब दूसरों को न खाने दे तो वह अवश्य ही हिंसा होगी। हां दूसरों को सताने के लिये अनुचित दबाव डालने के लिये बिना शास्त्रीय विधान के जो अनशन करके दूसरों एवं अपने को सताता है, वह हिंसा ही है, निन्द्य है।

देश, काल, परिस्थिति के अनुसार परिवर्तन उचित

कहा जाता हैं कि, "पूञ्जीवाद से छुटकारा पाने के लिये या तो आगे बढ़कर समाजवाद में जाना पड़ेगा या तो पीछे हटना पड़ेगा। परन्तु पीछे लौटना न उचित है न संभव है। जो लोग कहते हैं कि शहर से गांव अच्छे हैं, शहर बुरा है, वे लोग शहरों में रहते हैं, गांवों में नहीं, वस्तुतः गांव का कोई भविष्य नहीं हैं, भविष्य है शहर का। आने वाले भविष्य में गांव नहीं होगा। होंगे शहर और बड़े शहर, जिनकी हम कल्पना भी नहीं कर सकते। सच तो यह हैं कि जैसे जैसे हम आगे बढ़ेगें, वैसे ही आदमी जमीन से मुक्त हो जायगा। आदमी निरन्तर मुक्त हो रहा है। वह दिन दूर नहीं है कि जब आदमी को जमीन पर भोजन के लिये निर्भर न रहना पड़ेगा। जमीन पर निर्भर रहने की बात आगे संभव नहीं। जमीन छोटी भी पड़ गयी। कृषि बहुत पुरानी पड़ गयी। भोजन के लिये मार्ग खोजे जायेंगे। समुद्र से भोजन खोजा जा सकता है। हवासे भोजन खोजा

जा सकता है, सूरज की किरणों से भोजन खोजा जा सकता है। आज नहीं तो कल कास्मिक किरणोंसे सीधा भोजन खोजा जा सकता है। भोजनके लिए जब तक जमीन से छुटकारा नहीं मिलता, तब तक दुनिया की दीनता, दरिद्रता नही मिटेगी। क्योंकि जमीन छोटी पड़ गयी है, लोग ज्यादा हो गये हैं, मृत्यु की दर कम हो गयी। जन्म की दर कम नही हो रही है।" (पृ० १०४-१०५)।

हमने पहले ही कहा है कि जैसे सब पुरानी चीजों को अच्छा कहना और नयी नयी वस्तुओंको उत्तम कहना अनभिज्ञता है, उसीतरह पुरानी सब चीजों को बुरा कहना, नयी नयी चीजों को अच्छा कहते जाना भी, अनभिज्ञता ही है। आत्मा पुरानी वस्तु है। सूर्य, चन्द्र पुराने ही है। पर उन्हें कौन समझदार छोड़ना चाहेगा। रोग, दोष, कालरा, प्लेग, आदि कितना नया है। तो भी वह आदरणीय नहीं है। आवश्यकता के अनुसार विकास होता है और होना भी चाहिए। परन्तु पहले वर्तमान की चिन्ता करनी चाहिये। जो असज्जन, अशान्ति, आत्महत्या और पागलपन को ही भावी उन्नति की पूर्व पीठिका मानते हैं, वे चाहे जो कुछ कहें, परन्तु वह अविमृश्यकारी ही है। विचारक तो इतिहास का अध्ययन करके, उससे सबक सीखकर, वर्तमान का अनुभव करके भविष्य का अनुमान लगाकर, कार्यकारण भाव निर्धारण करके ही किसी कार्य में प्रवृत्त होता है। अभी तो देश, काल, परिस्थितिके अनुसार कई बार आगे भी बढ़ना पड़ता है, कभी पीछे हटना भी पड़ता है। यदि मोटर दलदल या खन्दक के मुहंपर पहुंच जाय तो पीछे भी हटना पड़ता है। अन्यथा नष्ट हो जाना अनिवार्य है। धन क्षय, जन क्षय, शक्ति क्षय से बचकर निरुपद्रव मार्ग से ही आगे बढ़ना उचित होता है। पून्जीवाद से आगे बढ़ने, पीछे हटने का कोई सवाल ही नहीं, क्योंकि वह निर्विवाद वाद नहीं है। सम्पत्ति प्राचीन काल में भी थी। यान्त्रिक विकास था ही तभी तो वा० रा० में कहा गया है—

"यन्त्रोत्क्षिप्तात्पला इव"

यन्त्रों के द्वारा प्रक्षिप्त महान पाषाण खण्डों के समान, बानरी सेना के योद्धा बन्दर, समुद्रके पार कूद कूद कर पहुचते थे। '...था सरित्सागर' एवं

'समराङ्गण सूत्रधार' आदि के विमान आधुनिक विमानों से कहीं उत्कृष्ट थे। पुष्पक विमान की बराबरी का तो कोई विमान आज है ही नहीं। ब्रह्मास्त्र, पाशुपत आदि अस्त्रों के सामने आज के हाईड्रोजन बम भी झख मारते हैं। प्राचीन इतिहासको अप्रमाण कह देना केवल साहस है। यदि आजकी सभ्यता नष्ट हो जाय, और कालान्तर में इसका उल्लेख मिलें तो भी लोग अविश्वास कर ही सकते हैं। समुद्र में पुल बांधना आज भी कठिन ही प्रतीत होता है। इन सब बातों को झुठलाना अपनी कूपमण्डूकता का ही परिचय देना है। सिद्धान्ततः अनेक प्रकार के यन्त्रों के भी विकास भारत में हो चुके हैं। तभी तो मनु ने महायन्त्रों के निर्माण पर प्रतिबन्ध लगाकर उपपातक बतलाया है। यदि महायन्त्र होते नहीं तो प्रतिबन्ध का प्रसंग ही क्यों होता ? अतः सब पुराना खराब, भविष्य सब अच्छा, यह कहने वाले लोग भी आधुनिकता के रोग से पीड़ित ही हैं।

अमीबा से मानव पर्यन्त के विकास की कथा अत्यन्त अप्रामाणिक है। यह वर्तमान प्रत्यक्ष के विरुद्ध ही है। "जटिलता उत्तरोत्तर बढ़ती जाती है। अमीबा सरल, बन्दर जटिल, बन्दर से भी ज्यादा जटिल मनुष्य है। मनुष्य में आदिवासी कम जटिल, बम्बई का निवासी ज्यादा जटिल है।" (पृ० १०६) यह सब विकास सिद्धान्त खण्डित है। चींटी का मस्तिष्क मनुष्य से कम जटिल नहीं, मधुमक्खी का भी मनुष्य से कम जटिल नही है।

यह भी सत्य नहीं हैं कि मनुष्य निरन्तर जटिलता की ओर बढ़ता है। आवश्यकतायें बढ़ाता जा रहा है। क्योंकि परिस्थितिके अनुसार मनुष्य आवश्यकताओं को बढ़ा भी लेता है, घटा भी लेता है। बड़े बड़े चक्रवर्ती नरेन्द्र भी वैराग्य की हालत में अपनी आवश्यकताओं को अत्यन्त संकुचित कर लेते हैं। देवहूति, जो कर्दम महर्षिकी पत्नी थी, जिसके लिये ही पुष्पक विमान का निर्माण हुवा था, वही वीतराग होकर एक मात्र चीर धारणी होकर रह सकी थी !

सामान्यतया यह ठीकही है कि, "जितनी आवश्यकतायें फैलती है, उतना मनुष्य उत्पादन करता है। विस्तृत आवश्यकताओंसे मस्तिष्क के अवरुद्ध हिस्से

सक्रिय होते हैं। पशु के पास थोड़ी आवश्यकतायें हैं। इसलिये वह पशु है। मनुष्य होने का मतलब है जटिल आवश्यकताओं के विस्तार से भरा हुवा जीवन।" (पृ० १०७)। यह सब स्वाभाविक है। कामनायें अनन्त है। अनन्त ब्रह्माण्ड का ऐश्वर्य भी उसके सामने छोटा हो जाता है। परन्तु अन्तिम लक्ष्य है सर्व प्रपञ्च का निर्वाण—पाचों इन्द्रियों एवं मन सहित बुद्धि का अत्यन्त निर्विचेष्ट होना ही।

सभ्यता के विकास के लिए नियंत्रण आवश्यक

कहा जाता है कि, "जब भी सामने जटिल समस्या आती है, तब ही प्राणी घबड़ाता है। बच्चोंके समान रोता है। मस्तिष्कसे मांग होती है—उठो चेतन हो जाओ। इतनी मांग हम नहीं झेल पाते तो हम वापस लौटते हैं। आदमी शराब पी लेता है, बेहोशी का रास्ता खोज लेता है। पीते ही जटिल समस्याओं को भुला देता है। ऐसे ही झञ्झट से बाहर हो जाता है। ज्यादा जटिल समस्या आ जायतो भजन कीर्तन करने लगता है। उससे ही समस्याओं को भुलानेकी चेष्टा करता हैं। यह सब संघर्ष से पलायनहै। बम्बई, न्यूयार्क, मास्को में न रहो, गांवमें रहो, सादगी धारण करो, विरक्त रहो, नंगे रहकर कन्दमूल खाकर रहो, यह सब पलायन वाद ही है। यह पीछे लौटने का आग्रह क्यों? इसलिये है कि जिन्दगीकी बड़ी समस्याएं खड़ी हो गयी। जिनको हल करनेमें कुछ लोग घबड़ा जाते हैं। परन्तु जब ऐसी समस्याएं आती हैं तब मनुष्य को जिन्दगी में छलांग लगाने का मौका आता है। चेतना वहीं छलांग भरती है, सोचना विचारना पड़ता हैं। संघर्ष करना पड़ता है। प्राणों का दांव लगाना पड़ता है। इस समय मनुष्यता बहुत सी जटिल समस्याओं के सामने खड़ी है। दो तरह के लोग हैं। अधिक लोग है, पीछे लौट चलो, जहाँ कोई समस्या नहीं थी। रेल, कार, मोटर, हवाई जहाज नहीं थी। शहर नहीं, विश्वविद्यालय नहीं। गुरुकुल थे, दश पाँच बच्चे पढ़ाते थे। अब एक यूनिवर्सिटी में बीस बीस हजार लड़के पढ़ते हैं। दुनिया में इससे पहले बीस हजार

जवान लड़के इकट्ठे नहीं हुये थे। पुराना लड़का अपने बाप के पास था। बाप हमेशा एकाधिकारी था। बेटे को दबा देता था। अब बीस हजार बेटे इकट्ठे हैं। बीस हजार बाप इकट्ठे नहीं हैं। बेटे बाप को दबाये दे रहे हैं। उन बीस हजार लड़ोंकी समस्याओं का सामना करने के लिए कुछ सोचो, जो कि बहुत कठिन है। पुरानी संस्कृतिके पास इसका कोई उत्तर नहीं है। पुराने किसी ग्रंथ में उत्तर हो ही नहीं सकता। क्योंकि युवकों की समस्या नयी है। युवकों का इकट्ठा होना ही एकदम नयी समस्या है। पुरानी दुनियां में युवक ही नहीं होता था। बच्चे होते थे, बूढ़े होते थे। न होने का कारण था। युवक होने देने के पहले ही समस्याका हल कर देते थे। बाल विवाह कर देते थे। बस वह आदमी बूढ़ा हो जाता था। उसे युवक होने का मौका ही नही मिला। जब वह बीस साल का युवक होगा तब उसे कई बच्चे हो चुके होंगे। बाप कभी भी जवान नहीं होता। बाप बूढ़ा हो ही जाता है। उसका उत्तरदायित्व खड़ा हो जाता था। अब एक लाख जवान विद्यार्थी एक ही जगह खड़े हैं। अतः समस्या हैं अब क्या करें। अब यह रास्ता है विश्व-विद्यालय तोड़ो, गांव भेजदो इनको। इन्हें बुनियादी शिक्षा दे दो। बढ़ईगिरी जूते, चमड़े के काम में लगा दो, कपड़ा बुनने में लगा दो। यह शिक्षा अगर मान ली गयी तो देश मर जायेगा। पर वह पलायनवाद है। समस्या से जूझना चाहिए। जूझने में ही विकास है, गति है। नये सवाल को नये ढंग से हल करना है। लेकिन पुरानी बुद्धि में उत्तर नहीं है। क्योंकि उन दिनों वहाँ यह समस्या नहीं थी।

आज लड़कों का सवाल सारी दुनिया में है। लड़के इकट्ठे हो गये हैं। उनका क्लास है, वर्ग हैं, बूढ़ों का कोई वर्ग नहीं।" (पृ. १०७, १०८-१०९, ११०)।

यह सब उच्छृङ्खलता पन्थियों की बहक है। असल में उन्हें अपने पूर्वजों के अतीत का बोध ही नहीं है। वे जिस मन गढ़न्त आधुनिक इतिहासमें विश्वास करते हैं, वह है केवल ६ हजार वर्ष का। इसी में उनका ऐतिहासिक काल एवं प्रागैतिहासिक काल भी आ जाता है। जो भारत के प्राचीन रामायण, महाभारत इतिहास हैं उनपर इनका विश्वास ही नहीं है। इन्होंने भारतीय

साहित्यों, दर्शनों का अध्ययन किया ही नहीं। न्याय वार्तिक, वार्तिक तात्पर्य, तात्पर्य परिशुद्धि; खण्डन खण्ड खाद्य, अद्वैत सिद्धि की एक पंक्ति भी इनके समझ में आना कठिन है। वे थोथे तर्कों के बल पर उड़ान भरते हैं और क्षुद्र तर्कों के बल पर कहते हैं कि पुरानी संस्कृति के पास इस समस्या का उत्तर नहीं है। वस्तुतः आज की समस्या गढ़ी गयी है। उच्छृङ्खलता जानबूझ कर फैलाने का प्रयास किया गया है। इन दिनों भारत में आपात स्थिति है। सब समस्याएं सुलझ गयी हैं। किसी विश्वविद्यालय में कोई आन्दोलन नहीं है। लाखों नहीं, करोड़ों जवान विद्यार्थी पढ़ने लगे हैं। सब नियन्त्रित हैं। आपात स्थिति के पहले बड़ी समस्या थी। विद्यार्थी आन्दोलन चलाते थे। विश्वविद्यालयों में आग लगायी जाती थी। बस, मोटर, सरकारी इमारतें जलायी जाती थी। अब सब बन्द है। क्या बात है? पुरानी संस्कृति का एक ही सूत्र था, कन्या को शरम होना चाहिए, बनिया को नरम होना चाहिए, शासन को गरम होना चाहिए। प्रत्येक राष्ट्रमें सेनाये होती हैं। एक एक राष्ट्रमें पचासों लाख नव जवान सैनिक होते हैं। पर सब नियन्त्रित रहते हैं। कहीं कोई समस्या नहीं है क्योंकि अनुशासन है। गरम शासन है। भारतीय इतिहास के अनुसार एक एक कुलपति के पास दश हजार छात्र होते थे। श्री भागवत में दुर्वासा को अयुताग्रभुक कहा गया है। वे दश हजार छात्रों को खिलाकर भोजन करते थे। ऐसे अनेक कुलपतियों के उदाहरण मिलते हैं। भगवान राम करोड़ों नहीं, महर्षि बाल्मीकि के अनुसार, असंख्य महाबलवान् बानरों और भालुओं की सेना पर नियन्त्रण करते थे। तुलसी दास जी के अनुसार १८ पद्म यूथपति वानर वीरों पर नियन्त्रण करते थे।

रावण पुत्र वधू, मेघनाद की पत्नी, त्रिलोक सुन्दरी सुलोचना राम के दरबार में जाती है। वानर वीरोंने परम प्रशान्त अचञ्चल होकर, परम अनुशासित रहकर, आत्म संयम का लोकोत्तर उदाहरण उपस्थित किया था। कितनी भी संख्या बढ़े, विज्ञान बढ़े, शक्ति बढ़े, सब तभी आदरणीय हैं, जब नियन्त्रण रहे और नियन्त्रित रहना ही सभ्यता का मूल है। जब भी जो भी विकास होगा तब भी नियन्त्रित रहे बिना सम्पूर्ण बिकास व्यर्थ ही होगा। बीस

हजार नहीं बीस करोड़ युवक हों, परन्तु उनका विकास तभी लाभदायक होगा जब नियन्त्रित, संयमित रहें। जो बेटे बाप के लिये खतरे के रूप में उपस्थित होते हैं, वे कभी भी उत्तम विकास के सूत्रपात में समर्थ नही हो सकते। आपके कथनानुसार भी ये हजारों, लाखों जवान नहीं हैं। क्योंकि आपके अनुसार विवाहित लड़के अनेक बच्चों के पाप होने से बूढ़े ही होते हैं। अविवाहित और ब्रह्मचारी तो प्रति सहस्र एक दो ही निकलेंगे। आपके अनुसार भी उनको युवक नहीं कहा जा सकता। कोई शिक्षा केवल शिक्षा के लिये नहीं होती। शिक्षा का उद्देश्य है राष्ट्र को धर्म, अर्थ, काम, मोक्षके हेतुभूत ज्ञान विज्ञानोंसे सम्पन्न बनाना और उसमें अधिकार एवं योग्यता का संबन्ध जुड़ा रहता है। अतः किन्हीं के लिये कपड़ा बनाने, जूता बनानेका काम सीखना भी बुरा नहीं। मशीन बनाना भी तो काम ही है। कृषि विद्या भी आज का प्रमुख विज्ञान हैं। अतः इतने छिछलेपन से इन विषयों पर विचार करना लाभदायक नहीं होगा।

पुरानी पीढ़ी पीढ़ी नहीं है वह तो फुटकर हैं, यह कहना भी गैरजिम्मेदाराना ढंग है। कभी भी नयी समस्या, नये सवाल, नये ख्याल, नयी व्यवस्था की योग्यता के लिये भूमिका या पीठिका अपेक्षित ही है। सर्वथा असंस्कृत, अशिक्षित कभी कोई विकास नहीं कर सकते हैं।

प्रपञ्च विस्मृति समाधि से भी होती है। भजन, कीर्तन से भी होती है। शराब पीने से भी होती है। सिनेमा आदि मनोरञ्जन साधनोंसे भी होती है। परन्तु क्या सब बातें समान ही है। समाधि और शराब दोनों को जो समान समझता है, उसकी बुद्धि पर तरस आना चाहिये। भजन कीर्तन में समाधि से होने वाली प्रपञ्च विस्मृति स्थायी शान्ति का जनक है। परन्तु शराब से अशान्ति ही बढ़ेगी। अशान्ति, व्याकुलता कई गुना होकर उभड़ेगी। भजन, कीर्तन से, समाधि से मन की एकाग्रता होती है। एकाग्र मन से कल्याकारी निर्विघ्न मार्गों का स्फुरण हो सकता है। शतशः अनुभव किया जा सकता हैं। एकाग्र चित्त से ग्रंथ ग्रंथियां खुलती हैं। गणित का सूक्ष्म ज्ञान होता है। सूझ हो सकती है। शराब पीने से, भजन कीर्तन को समान कहना साहस एवं धृष्टता ही है।

दान मुख्य धर्म

ऐसे ही दानको पुरानी व्यवस्था कहकर उसकी मखौल करना भी अनभिज्ञता ही है। भारतीय धर्मोंमें दान मुख्य धर्म है। यह भारतमें ही नहीं किसी न किसी रूप में सर्वत्र प्रचलित है। इसी के अभाव से पून्जीवाद वदनाम हुवा है और आर्थिक असंतुलन दूर करनेमें असफल रहा है। पीछे कहा जा चुका है कि धर्म, यश, अर्थ, काम, एवं स्वजनोंके लिये अतिरिक्त आयमें हिस्सा बाँटकर आर्थिक असंतुलन दूर किया जा सकता है। इतने पर भी अधिक धन इकट्ठे होने पर होमादि यज्ञ करके, उसका वितरण करके, असंतुलन मिटाया जा सकता है।

शास्त्रों ने कहा है कि जितने में भोजन वस्त्र आदि की व्यवस्था सम्पन्न हो जाय उतने ही धन में अभिमान करना उचित है। अधिक में अभिमान करना चौर्य्य है। ऐसा व्यक्ति दण्ड्य हैं। आतिथ्यकी दृष्टिसे प्रत्येक व्यक्ति या कुटुम्ब अपने गाढ़े पसीने की कमायी से दूसरोंको तृप्त करने का प्रयास करता है। अतएव यज्ञ, होम द्वारा देवताओंका, श्राद्ध द्वारा पितरों का, स्वाध्यायाध्ययन द्वारा ऋषियोंका, तर्पण किया जाता है। काक श्वान, कीट, पतंग, पिपीलिका, प्रेत, पिशाच, नाग आदि का भी तर्पण किया जाता है। प्रत्येक कुटुम्ब अतिथि की प्रतीक्षा करता है और मिलने पर उसकी पूजा करता है। प्रत्येक व्यक्ति हर तरह से देना चाहता है। लेने वाला बचने का प्रयास करता है देने वाला कहता है लीजिये, कृपा कीजिये, कुछ स्वीकार कीजिये। लेनेवाला कहता है—नहीं चाहिये, सब है। वह पुरातन दानादि धर्म छोड़ने का दुःपरिणाम आज सामने है। आज तो लेने वाला कहता है—लेंगे, मरकर लेंगे, मार कर लेंगे। देने वाला कहता है नहीं देगें, मर जायंगे, मिट जायंगे, पर नहीं देगे। पूर्वकाल में लीजिये, लीजिये, नहीं नहीं, की आवाज थी। आज दीजिये, दीजिये, नहीं, नहीं, की आवाज है।

श्री रजनीश बिल्कुल पूर्वा पर विरुद्ध बोलते हैं। एक तरफ तो पून्जीवाद का समर्थन करते हुये व्यक्तिगत सम्पत्ति को छीनना अनुचित कहते हैं, उसके

समाजीकरण का विरोध करते हैं, दूसरी तरफ गांव की सारी खेती इकट्ठी हो सके, तो खेती उपयोगी हो सकती है, कहकर खेती के समाजीकरण का समर्थन करते हैं। यदि खेती इकट्ठी हो कर उद्योग हो सकती हैं तो सब पून्जी इकट्ठी हो कर महोद्योग क्यों नहीं बन सकती ? इससे स्पष्ट विदित होता है कि उनका कोई सिद्धान्त नहीं। वे तो किन्हीं पून्जीपतियों की तरफसे ही वकालत करना चाहते हैं। अन्यथा ऐसी पूर्वापर विरुद्ध बाते कैसे संगत हो सकती है ? यहां वे दान धर्म का खण्डन करने के आवेग में कुछ का कुछ बोल गये।

विचार से ही तृष्णा की निवृत्ति

यह ठीक है कि "जब तक रोटी नहीं मिलती है तब तक रोटी की ही मांग है। रोटी, कपड़ा मिलने पर फिर साबुन, फिर रेडियो, फिर कारकी मांग होती है। और होनी ही चाहिए।" (पृ० ११२-११३) इतना ही नहीं करोड़-पति, अरबपति बनना चाहता है। अरबपति सम्राट बनना चाहता है। सम्राट इन्द्र, इन्द्र ब्रह्मा, ब्रह्मा, विष्णु होना चाहे तो यह कोई आश्चर्य नहीं। कहा ही गया हैं कि घृत की आहुति से अग्नि प्रशान्त न होकर अधिकाधिक प्रज्व-लित होती है। इसी तरह भोग प्राप्तिसे, धन ऐश्वर्य्य मिलनेपर तृष्णा, कामना बढ़ती है। प्रवृत्ति मार्ग में बढ़ना ठीक भी है। परन्तु विश्व सुख शान्ति को ध्यान में रखते हुये कहीं कहीं तो तृष्णा को रोकने का प्रयत्न करना ही पड़ेगा, अन्त में आत्मा ब्रह्म की प्राप्ति से ही शान्त होगी। परन्तु यह कहना गलत होगा कि खूब धन बढ़ने के बाद ही उसकी व्यर्थता प्रतीत होती है और धन से भिन्न आत्माकी खोज होती है। क्योंकि विचार बिना सम्राट, इन्द्र, महेन्द्र की भी तृष्णा नहीं मिटती है, विचार होनेपर साधारण स्थितिमें भी तृष्णा निवृत्ति, भगवत्प्राप्ति हो सकती है। यही तो निवृत्ति मार्ग का चमत्कार है। प्रवृत्ति विविध वस्तु सापेक्ष होती है। परन्तु निवृत्ति सर्व निरपेक्ष होती है। साम्राज्य सुख के लिये सेना सम्पत्ति की अपेक्षा है, किन्तु सन्यास के लिये कुछ नहीं चाहिये। स्त्री सुख के लिये स्त्री चाहिये। ब्रह्मचर्य के लिये कुछ न चाहिये।

राग के लिये अपरिगणित वस्तुओं की अपेक्षा है। वैराग्य के लिये कुछ भी नहीं चाहिये।

मिथ्या कल्पना

उपनिषद् की कहानी रजनीश की मनगढ़न्त है। किसी उपनिषद्में ऐसा नहीं है "कि एक युवक गुरुकुलसे ब्रह्म ज्ञान सीखकर लौटा। वह दिन भर ब्रह्म ज्ञान की बात ही करता था। उसके बाप ने कहा तू २१ दिनका उपवास कर फिर तुझसे ब्रह्म ज्ञान की बात करेंगे। वह उपवास करने लगा, ब्रह्म ज्ञान की बात भूल गया। पिताने कहा पहला ब्रह्मअन्न है।" (पृ० ११३-११४) वस्तुतः छान्दोग्य उपनिषद्का आख्यान है कि—श्वेतकेतु गुरुकुलसे अनूचानमानी होकर घर आया। पिता ने उसके मिथ्याहंकार मिटानेके लिये उससे पूछा क्या तुमने उस वस्तु को जान लिया, जिसके दर्शन से सबका दर्शन हो जाता है, जिसके श्रवण मनन से सबका श्रवण, मनन, हो जाता है। श्वेतकेतु ने कहा ऐसी तो कोई वस्तु नहीं हो सकती कि जिस एक के ज्ञान से सबका ज्ञान हो जाय। उद्दालक ने कहा जैसे सुवर्ण के ज्ञान से कटक, मुकुटादि ज्ञान हो जाता है, मृत्तिका के ज्ञान से घटादिका ज्ञान हो जाता है, जल का ज्ञान होने से तरंगादि का ज्ञान हो जाता है, उसी तरह सर्व कारण के ज्ञान से सबका ज्ञान क्यों नहीं हो सकता? तब श्वेतकेतु ने कहा कि ऐसी वस्तु तो हमारे गुरुजी ने नहीं बतायीं है। आप कृपा कर बताइये। इस पर उद्दालक ने—
"स देव सोम्य ईदमग्र आसीत्"

इत्यादि रूप से सद्विद्या का उपदेश दिया था। उसी प्रसंग में अन्नमय मन हैं, यह सिद्धांत बताने के लिये उन्होंने उससे कहा कि १५ दिन तक अन्न त्याग कर सोलहवें दिन मेरे पास आवो। जब श्वेतकेतु सोलहवें दिन आये तब उन्होंने उसे वेद पढ़ने को कहा परन्तु उसको मन्त्र का स्फुरण नहीं हो सका। तब उन्होंने कहा जावो भोजन करके आवो। जब भोजन करके आया तो फिर उसे पढ़ने को कहा तो उसने मन्त्र पढ़ दिया। उन्होंने कहा १५ दिन अन्न न

खाने से अन्नमय मन की कलाएं क्षीण हो गयी थीं। इसीलिये तुम्हें मन्त्रों का स्मरण नहीं आया। अन्न ग्रहण करने से वे कलाएं फिर जाग्रत हो रही है और अब तुम्हें मन्त्रों का स्मरण हो रहा है। इसीलिए जान लो कि मन अन्नमय है। अतः स्पष्ट है कि उपनिषद् के नाम उन्होने मिथ्या ही कल्पना की है।

रजनीश के अनुसार न, नव मन तेल होगा, न पूना नाचेगी। जब तक लोग महाधनवान् न हो जायेगे, तब तक आत्मा का विचार हीं असंभव है। उनकीं दृष्टि में सब धनवान् ही मनुष्य होते हैं। वे ही आत्मा के जानने के अधिकारी हैं।

तकनीकी विकास पूञ्जीवाद तक ही सीमित नहीं

आप कहते हैं कि, "बच्चा विकसित होगा जवानी आयेगी। जवानी विकसित होगी बुढ़ापा आयेगा। यह सब लाने से नहीं आती। पूञ्जीवाद विकसित होगा तो समाजवाद अपने आप आता है। लाना नहीं पड़ता।" (पृ० ११५) परन्तु यह सब अनर्गल प्रलाप मात्र है। यदि यह बात सही है तो पूञ्जीवाद भी अपने आप आयेगा। उसके लिए पैर पीटने की क्या आवश्यता है? जैसे जवानी, बुढ़ापा अपने आप आता है वैसे पूञ्जीवाद भी अपने आप आये। फिर किसी को भी प्रयास करने की क्या आवश्यकता है?

आप कहते हैं कि, "कई समाजवादी देश लौट रहे हैं। मनुष्य के श्रम से सम्पत्ति का बाहुल्य नही होगा। मनुष्य की जगह टेक्नालाजी स्थापित होगी। जबरदस्ती काम नहीं चलेगा। एक दो दिन जबर दस्ती काम कराया जा सकता है। अनन्त काल तक नहीं।" (११६)। परन्तु यह भी निःसार है क्योंकि समाजवाद में भी टेकनालाजी पर ही बल दिया जाता है। फिर इसके लिये पूञ्जीवाद ही क्यों?

इसी तरह यह कहना भी गलत है कि पूञ्जीवादी जर्मनी पूर्ण विकसित हो गया, लेकिन कम्युनिस्ट जर्मनी अब भी दरिद्र हैं और यहां कम्युनिस्ट व्यवस्था

और कैपटलिस्ट व्यवस्थाके बीच सीधा चुनाव साफ हुवा जा रहा है।' (११६) परन्तु यह भी वस्तुस्थिति के विपरीत है। पूञ्जीवादी देशों का सहारा पाकर पश्चिम जर्मनी का विकास अवश्य हुवा है, परन्तु यदि पूर्वी जर्मनी कमजोर होता तो कभी का वह पश्चिम जर्मनी में मिल गया होता। परन्तु यह असंभव ही है।

आप कहते है कि, 'मास्को में दुनिया को दिखाने के लिए एक गगन चुम्बी मकान है। पर अमरीका में सैकड़ों हैं। लेकिन अमरीका में वे मकान चुपचाप अपने आप विकसित हुये हैं। जैसे जमीन से बड़ा पौधा। इसके लिए जोर जबरदस्ती नहीं करनी पड़ी।'' (पृ० ११७)

परन्तु यह सब पूञ्जीवादी देशों का प्रचार मात्र हैं। जोर जबरदस्ती से रूस परमाणु बम, हाइड्रोजन बम का भण्डार नहीं भर सकता। मिगविमान की सप्लायी अन्य देशों को नहीं कर सकता। चन्द्रलोक पर रूसी गाड़ी नहीं पहुंचा सकता था। अभी गत दिनों रूसी-अमरीकी अन्तरिक्ष यानों की संयुक्त उड़ान हुयी थी। अमरीका को उससे हाथ मिलाने को बाध्य होना पड़ता है। वह अपने राकेटों को सीधे भूमि पर सुरक्षित उतार सकता है? परन्तु अमरीका वैसा नहीं कर सकता है। उसे समुद्र में ही अपने यात्रियों को हर बार उतारना पड़ता है। क्या यह सब विकास जोर जबरदस्ती का फल है। अतः रूस की गरीबी, अमरीका की अमीरी की कहानी अमरीकाके विकास एंव रूस के ह्रास की कहानी, अमरीकी दलालों की मनगढ़न्त कहानी ही है।

यह ठीक ही है कि जब तक संसार में महायन्त्रों पर प्रतिबन्ध नही लगता हैं, तब तक उसका विकास अपने देश में भी अधिकाधिक होना चाहिये। तकनीकी विकास में पीछे रहने का मतलब हर क्षेत्र में पश्चात पद होना है, और उसके लिये एकमत होकर काम में लगना ठीक ही है। परन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि आवश्यक अनिवार्य आन्दोलनों से भी मुख मोड़ लिया जाय। व्यक्तिवादियों ने भी माना है कि मतभेद होना प्रगति का लक्षण है। स्वतन्त्र विचार से अनेक उत्कृष्ट अवस्थाएं आ सकती है।

आप कहते हैं कि, ''भूमि न कहीं आती है न जाती है। फिर हिन्दुस्तान पाकिस्तान की मांग को लेकर आन्दोलन के समान ही आज प्रान्तों के आन्दो-

लन भी चलते हैं। ये गांव मैसूरमें जांय; ये गांव महाराष्ट्रमें, ये गांव गुजरात में जांय, यह सब पागलपन हैं। कोई गोहत्या बन्द करना चाहता है तो कोई मच्छर हत्या का आन्दोलन करना चाहता है।" (पृ० १२०)। वस्तुतः थोड़ी सी बुद्धि होने पर भी ऐसी बातों का खोखलापन साफ व्यक्त होता है। भूमि तो जहां की तहां रहती है, कोई राष्ट्र अन्य राष्ट्र पर अधिकार कर लेता हैं तो भी। अंग्रेजों के हाथ में भूमि थी तो भी भूमि जहाँ की तहां ही थी। फिर अंग्रेजों को हटाने के लिये, आजादी प्राप्ति के लिये क्यों प्रयत्न किया गया? जिनकी दृष्टि गाय की हत्या, मच्छर हत्या में समान ही हैं, ऐसे अकल के पुतलों से पूछा जाय क्या तुम मच्छर का दूध पीकर गुजारा कर लोगे? क्या दुग्ध, दधि, नवनीत, घृत, कूर्च मच्छरों से मिल जायगा? क्या खेतों को उपजाऊ बनाने के लिये गोबर, गोमूत्र का खाद मच्छरोंसे प्राप्त हो जायगा? क्या पञ्चगव्य, पञ्चामृत की व्यवस्था भी मच्छर से होगी? हल जोतने के लिए बलवान् बैल भी क्या मच्छरों से मिलेंगे? क्या यज्ञ विवाह श्राद्ध आदि मे गोदान के स्थान में मच्छर दान होंगे? उन्ही के दुग्ध घृत आदि का प्रयोग होगा?

सच्चरित्रता का आधार सुविधा सम्पन्नता ही नहीं

कहा जाता हैं कि, "गरीबी में चरित्र पैदा नही हो सकता। चरित्र का आयाम, परमविलास है, सुविधा सम्पन्नता उसकी मूलशर्त है। दरिद्रता, चरित्र हीनताकी मूलभूत शर्त है। गरीब का जीवन चारों ओरसे उसे कौंधता है, उसे दबाता है, चरित्रहीन होने को मजबूर हो जाता हैं। चरित्रहीनता का मिटना असंभव हैं। गरीबी मिटाने का प्रयास करना चाहिए। गरीबी मिटने से चरित्र का तल ऊपर आना शुरू हो जाता है। पांच नया पैसा की रिश्वत न लेने की बात बहुत मिल जायेगी। पांच सौ रिश्वत न लेनेवाले कम मिलेंगे, पांच लाख न लेने वाले बहुत ही कम मिलेंगे।

पहले समृद्धि पैदा करने का प्रयत्न करना चाहिए। तब चरित्र हम कभी

भी पैदा कर लेंगे । अगर हमने सोचा कि चरित्र पहले पैदा करेंगें तो ध्यान रहे चरित्र तो पैदा नहीं होगा, देश और गरीब होता चला जायगा । [पृ० १२२, २३, २४]

उक्त बाते किसी सीमा तक ठीक हो सकती हैं । परन्तु अन्तिम सत्य नही है । जैसे रिश्वतकी अनेक सीमाएं हैं, वैसे ही गरीबी की भी । कई लोग लक्ष-पति होकर भी गरीबी ही महसूस करते हैं, तो कई कोटिपति होनेमें भी अपने को गरीब ही समझते हैं । वस्तुतः यह तो एक दृष्टिकोण है । अपनेसे नीचे की ओर देखने से सभी अपनी महिमा समझने लगते हैं ।

अन्धा अपने को अन्ध या पंगु की अपेक्षा ठीक ही समझता है । परन्तु अपने से ऊपर की ओर निहारने पर तो इन्द्र भी अपने को दरिद्र ही मानता हैं ।

"अधोऽधः पश्यतः कस्य महिमानोपचीयते ।
उपर्य्युपरि पश्यन्तः सर्व एव दरिद्रति ॥"

अतएव कितनी समृद्धि हो जानेपर हम चरित्रवान् बनेगें, यह कहना भी कम कठिन नहीं है । सर्वथा सर्वोपरि समृद्ध हो जाने के बाद यदि हम चरित्र संभालने की ओर लगेंगे तो, शायद कभी अवसर भी नहीं आयेगा । फिर आज तो चरित्रहीनता अमीरों में भी कम नहीं है । हां यह अवश्य है कि धनवान् पांच पैसे, पांच रुपये की रिश्वत न ले परन्तु लाखों, करोड़ों की रिश्वत तो उनमें ही हजम हो जाती है । परिणाम यह होगा कि कोई मनुष्य नहीं समृद्ध होगा और नहीं चरित्रवान होगा । परन्तु वस्तुस्थिति ऐसी नहीं । यह तो आदत है, बनाये से बन जाती है । बिगाड़नेसे बिगड़ जाती है । जहां माता पिता उत्तम वातावरण में रख कर बच्चेको उपनयनादि संस्कार करके वेदादि शास्त्रों के पठन पाठन में लगाते हैं, सन्ध्या, सूर्य्यार्घ्य, सूर्योपस्थान की आदत डालते हैं, विधि निषेध के संस्कार डाल देते हैं, वे बच्चे गरीब रहकर भी चरित्रहीन नहीं होते । ब्रह्मचर्य का संस्कार पहले से ही डाला जा सकता है । यह नहीं संभव हैं कि पहले उत्तम स्त्री से समृद्ध बनाकर फिर ब्रह्मचर्य की साधना करायी जाय ? सत्य बोलने की आदत, झूठ न बोलने की दृढ़ता, किसी वस्तु को न लेने की दृढ़ता, किसी स्त्री की ओर सकाम दृष्टि न रखने की

दृढ़ता आदि की शिक्षा दी जा सकती है, बालकों में और उसमें सफलता भी मिलती है। पूर्ण समृद्धि पाने तक इन बातों का विचार न करने वाला व्यक्ति समृद्धि पाने पर भी सदाचारी नहीं हो सकेगा। गाँवों के सामान्य लोग, हल जोतने वाले, जंगलों में भेड़ चराने वाले लोग भी, शहरोंके धनवान् से अधिक ईमानदार होते है। सामान्यतया किसी की वस्तु चुराना, झूठ बोलना, किसी की बहू बेटी को बुरी निगाह से देखना, उनमें नहीं मिलेगा।

पहाड़ी लोग अधिकांश गरीब होते हैं, हजारों आदमियों का अनुभव है। उनमें किसी की वस्तु लेने की आदत नहीं। बदरीनारायण यात्रा की चट्टियों पर किसी की कोई वस्तु छूट जाती थी, लौटने तक वह वस्तु वहीं पड़ी रहती थी। उसे कोई छूता तक नहीं था।

"परान्नं पर द्रव्यं वा पथि वा यदि वा गृहे।
अदत्तं नैव गृह्णीयादेतत्ब्राह्मण लक्षणम् ॥"

दूसरों का अन्न हो, द्रव्य हो; बिना मालिक के दिये न लेना यह अच्छे लोगों के लक्षण हैं। इसका ठीक व्यवहार पहाड़ियों में चलता है। हो सकता है रजनीश कुछ उदाहरण चोरी का ढूंढ लें, फिर अधिकांश लोग वैसे ही मिलेंगे। गोरखोंकी ईमादारीमें आज भी विश्वास किया जाता है। पहरेदारी का काम वे ईमानदारी से करते हैं। सेना में भी उनका काम ईमानदारी से भरा रहता है। अतः संस्कार और वातावरण तथा संग एवं साहित्य के अनुसार सदाचार, दुराचार के संस्कार घटाये बढ़ाये जा सकते हैं। तभी तो शास्त्रों ने मातृमान, पितृमान आचार्यवान् के लिये ही ब्रह्म प्राप्ति कही है। अपरिगणित उदाहरण ऐसे हैं कि अकिंचन रहकर ही सदाचारी हुये हैं। अतएव संसार के सभी राष्ट्रों में सदाचार, सच्चरित्रता पर बल दिया जाता है। इसके लिये अमीरी, गरीबी कोई मुख्य हेतु नहीं। कितने ही गरीब भी सदाचारी होते है। कितने ही अमीर भी सदाचारी होते हैं। ऐसे ही यदि कुछ गरीब दुराचारी होते हैं तो अमीर बहुत अधिक मात्रा में दुराचारी होते हैं। अतः चरित्र की बात छोड़ देने की बात नहीं है।

वस्तुतः परान्न, पर द्रव्य हरण की प्रवृत्ति सदाचार सच्चारित्र्य से ही

संभव है। यदि चरित्र की बात छोड़ दी जाय तब तो दूसरों की सम्पत्ति का अपहरण करके धनवान बनना बिलकुल ही सरल होगा। पून्जीवाद का समर्थन करना और सदाचार तथा चारित्र्य की बात को छोड़ देने की बात करना, दान प्रवृत्ति की निन्दा करना, इत्यादि बातें आश्चर्यजनक ही हैं।

"यौवनं धन सम्पत्तिः ऐश्वर्यमविवेकिता।
एकैकमप्यनर्थाय किमु यत्र चतुष्टयम् ॥"

यौवन, धन, सम्पत्ति, ऐश्वर्य एवं अविवेक एक एक वस्तु भी अनर्थ का हेतु है, फिर जहां चारों जुट जायंगी, ईश्वर ही जाने क्या होगा ? इस मार्ग से न भारत, न अमरीका बनेगा, न इजराइल बनेगी, न जापान बनेगा किन्तु रहा सहा भारत भी नष्ट हो जायगा।

धर्म नियंत्रित राजनीतिज्ञ ही सम्मान का अधिकारी

राजनीतिज्ञोंको अधिक सम्मान न देने की बात भी एक सीमातक ही ठीक है। वस्ततः राजनीति विष्णु की पालनी शक्ति है। उसके बिना संसार उच्छृङ्खल होकर नष्ट हो जायगा। अतः राजनीति का अधिक से अधिक ज्ञान सम्पादन करना आवश्यक है। दण्डनीति से ही संसार रास्ते पर चलता है। सबके सो जाने पर दण्डनीति ही जागरूक होकर मर्यादाओं की रक्षा करती है। हां वह राजनीति धर्म नियन्त्रित रहनी चाहिये, अनियन्त्रित, उच्छृङ्खल नहीं। ईमानदार गरीब, अमीर सभी भगवान के यहां आदरणीय होते हैं। निष्काम होना बहुत अच्छा है, परन्तु सकाम होकर भी ईमानदारी से भगवान् की आराधना की जा सकती है। भगवान के यहां मन्दिर में गरीब कम मांगता है। गरीबकी मांग तो रोटी, कपड़े तक ही सीमित है। पर अमीर तो जाने क्या क्या मांगता है। इस दृष्टि से सर्वाधिक कंगाल अमीर ही ठहरता है। भगवान अकिंचनजनप्रिय कहे जाते है।

वस्तुतः "समाजवाद से सावधान" पुस्तक स्वयं ही परस्पर विरुद्ध है।

पहले तो उसमें समाजवाद को सम्राट के झूठे कपड़ों की उपमा देकर उसे अत्यन्त असत् एवं असंभव कहा गया है। बाद में चलकर उसे पून्जीवाद का अनिवार्य परिणाम बतलाया गया है। उसके लिये पाश्चात्यों के व्यक्तिवाद को अपनाया गया है। व्यक्तिवाद को भी विकृत करके ही उपस्थित किया गया है।

व्यक्तिवाद का स्वरूप

व्यक्तिगत स्वतन्त्रता यद्यपि सभीको मान्य है, तथापि व्यक्तिवाद में व्यक्ति को सर्वोच्च स्थान दिया गया है। इस मत के अनुसार न्याय एवं सुरक्षा के अतिरिक्त व्यक्ति की स्वतन्त्रता में समाज या राज्य का हस्तक्षेप नहीं होना चाहिये। व्यक्ति को निजी, सामाजिक आर्थिक विषयों में सर्वथा स्वतन्त्र छोड़ देना चाहिए। सामन्तवादी प्रतिबन्धों को मिटाने के लिये, स्वतन्त्र व्यापार करनेके लिये, व्यक्तिवादके आधार पर व्यापारियोंने संघर्ष किया था। व्यक्तिवाद के आधार पर ही १६ वीं सदी में बृटेन में औद्योगिक क्रान्ति हुयी थी। उसके नेता पून्जीपति ही थे। बृटेन में उनका प्राधान्य था। सामन्तों एवं श्रमिकों से संघर्ष लेकर वे सफल हुये थे।

बृटेनमें अर्थ शास्त्र के प्रमुख 'स्मिथ' की पुस्तक 'राष्ट्रों की सम्पत्ति' पून्जीपतियों के लिये बायबिल के तुल्य सिद्ध हुयी थी। उसमें व्यक्तिवादी अर्थशास्त्र का विश्लेषण है। 'माल्थस' के जनसंख्या सम्बन्धी सिद्धान्त का अर्थशास्त्र में महत्वपूर्ण स्थान है। रिकार्डों के भूमिकर सिद्धान्त का भी उस पर अच्छा प्रभाव पड़ा था। 'स्टुअर्ट' मिलके 'अर्थशास्त्र के सिद्धांत' पुस्तक का भी प्रभाव पड़ा था। वे नैसर्गिक नियमों के समान ही अर्थशास्त्र के नियमों को अपरिवर्तनीय मानते थे। जैसे शीत के पश्चात, ग्रीष्म, ग्रीष्म के बाद वर्षा के आने का नियम, सूर्य का पूर्व में उदय होकर पश्चिम में अस्त होने का नैसर्गिक नियम अपरिवर्तनीय है, जाड़े में प्राणी को गरम कपड़े गर्मी में हल्के कपड़े पहनने पड़ते हैं, मनुष्य को उनके अनुकूल ही नियम बनाना पड़ता है। ये

सिद्धान्त पूञ्जीवादियों के लिये अनुकुल, किन्तु, श्रमिकों के लिए विष तुल्य था।

इसके अनुसार मनुष्य तार्किक एंव स्वार्थी है। वह स्वयं अपना हित अहित जानता है। सस्ता खरीद कर मंहगा बेचता है। उसे स्वतन्त्रता मिलने पर वह स्वयं ही बढ़ जाता है। इसीके अनुसार कहा जाता हैं--लार्ड क्लाइव, वारेन हेस्टिग्ज जैसे साधारण श्रेणी से उठकर भारत में अंग्रेजी राज के जन्म-दाता और गर्वनर बने। इनकी दृष्टि से व्यक्ति एवं समाज का विरोध नहीं। मनु, शुक्र, बृहस्पति आदि के अनुसार व्यक्ति के समुदाय का नाम ही समाज है। सुतराँ व्यक्तियों के सुखी होने पर समाज सुखी होगा। एक समाजके सुखी होने पर व्यक्तियो का सुखी होना स्वाभाविक है।

उनके अनुसार मनुष्य बाजार से एक वस्तु का क्रय, विक्रय अपने हितकी दृष्टि से करता है। दूसरों की न्यूतम मूल्य में खरीदना चाहता हैं। राज्य को इस सम्बन्ध में कानून नहीं बनाना चाहिये। मांग और पूर्ति के आधार पर वस्तुओं के मूल्य अपने आप निर्धारित हो जायंगे। वस्तु की मांग अधिक, पूर्ति कम होने से मूल्य बढ़ता है। पूर्ति अधिक, मांग कम होने पर मूल्य घटता हैं। स्वतन्त्र प्रतियोगिता के द्वारा वस्तुओं का वितरणभी स्वयं हो जाता है। जहां वस्तु की आवश्यकता होगी, व्यापारी पहुंचायेगा। जहां मांग न होगी, वहां न भेजेगा। किस कार्य के करने से लाभ होगा, किससे हानि; इसे मनुष्य स्वयं जान लेता है। उसमें भी राज्य का हस्तक्षेप नहीं होना चाहिए। वेतन निर्धा-रण भी माँग पूर्ति के आधार पर स्वयं हो जाता है।

सीमित नियंत्रण आवश्यक

परन्तु रामराज्य वादी की दृष्टिमें यदि सभी शिक्षित हों तो यह सिद्धांत ठीक हो सकता हैं। परन्तु संसार में जाल, फौरेब भी चलता है। अशिक्षित, अज्ञानियों को धोखा हो ही सकता है। मोल, भाव करना भी सबको नहीं आता। क्रय, विक्रयका व्यवहार सब लोग नहीं जानते। हीरा, पन्ना, पद्मराग

आदि मणियों तथा अन्य रत्नों के गुणदोष सब लोग नहीं जानते। अतएव सावधानी के लिये बोर्डों पर सरकारी या गैर सरकारी तौर पर विभिन्न वस्तुओंके मूल्यों का उल्लेख रहता है। नदी पार उतारनेवाले नाविकों, मोटर टैक्सी आदि के भाड़ों का सरकारी तौर पर निर्धारण मिलता है। कभी कभी रुपये की आवश्यता होने पर गरीब किसानोंको अपना गेहूं, अन्न, कपास आदि को सस्ते दाम में बेचने को बाध्य होना पड़ता है। ऐसी स्थिति में उत्पादन एवं आवश्यकता देखकर किसी सीमा तक नियन्त्रण आवश्यक होगा।

कहीं दर का नियन्त्रण करने के लिये दूकाने भी खोलनी पड़ती है। वेतन आदि के नियम भी साधारणतया ठीक है। पर कहीं मालिक एवं नौकर में स्वयं ही आवश्यकता के अनुसार वेतन निर्णय करना पड़ता है। तथापि नागरिकों के जीवनस्तर के अनुसार वेतन की भी सीमा निर्धारित करना आवश्यक ही है। अमुक अमुक काम में कम से कम कितना वेतन होना चाहिये। भले ही इससे ऊपर योग्यता और काम के अनुसार नौकरी में कमी बेशी हो सकती है।

युक्ति कल्पतरु, आदि ग्रंथोंमें मणियों, रत्नोंके गुणों एवं मूल्योंका निर्धारण किया गया है। वेतन के सम्बन्धमें भी स्मृति ग्रंथों में विचार हैं। यदि मालिक और नौकर ने वेतन तय किये बिना काम किया और कराया है तो वेतन के सम्बन्ध में विवाद उपस्थित होने पर न्यायालय द्वारा यह व्यवस्था की जाती है कि कृषि, पशुपालनादि संबंध में लाभ की अमुक मात्रा नौकर को मिलनी चाहिये। "दुर्लभो हि शुचिर्नरः" संसार में पवित्र लोग दुर्लभ होते हैं, अतः बिना नियन्त्रण के शोषण चलेगा।

व्यक्तिवादी नियम नैसर्गिक नहीं

व्यक्तिवाद के अनुसार देशके आयात निर्यातपर कर नहीं लगाना चाहिये, पूर्ति और मांग के अनुसार जैसे देश के बाजारों में मूल्य निर्धारण होता है। वैसे ही अन्तर्राष्ट्रीय बाजारों में भी मूल्य का निर्धारण होगा। इसको मुक्त

व्यापार की संज्ञा दी जाती है। कहा जाता है कि नैपोलियन से होने वाले युद्ध के समय यूरोप के अनाज पर बृटिश सरकारने आयात कर लगाया था। इससे बृटेनमें अनाज का मूल्य बढ़ा था। इससे जमीन्दारों का लाभ भी बढ़ा। किन्तु इससे जन साधारण एवं श्रमिकों का निर्वाह व्यय बढ़ा। श्रमिकोंने वेतन वृद्धिकी मांग की। वेतन वृद्धिसे श्रमिकोंका लाभ घटता था। उस समय जन-साधारण की सहायता के नाम पूञ्जीपतियों ने मुक्त व्यापार की माँग की। आयकर रद्द करने का आन्दोलन हुवा। संघर्ष के पश्चात अन्न दर घटाया गया। तभी से मुक्त व्यापारकी प्रथा चली। अन्न सस्ता हुवा, वेतन बृद्धिकी मांग भी कुछ दिनों के लिये रुक गयी। पूञ्जीपतियों एवं सामन्तों को लाभ हुवा। बृटेनमें ही सर्वप्रथम औद्योगिक क्रान्ति हुयी थी। अन्य देशोंकी वस्तुओं से बृटेन की वस्तु अच्छी और सस्ती होती थी। यदि सर्वत्र मुक्त व्यापार की प्रथा होती तो संसार भर के बाजारों पर बृटेन का अधिकार हो जाता। जहां उनका अधिकार था, वहां सदियों के देशी व्यापार का अन्त हो गया। साम्राज्यवाद से व्यापार में बृद्धि, व्यापार बृद्धि से साम्राज्यवाद का विस्तार हुआ।

परन्तु भारतीय राजनीति से यह विरुद्ध है। कारण स्वार्थी लोग लाभ के लिये देश का माल विदेशों में भेज देते हैं। देश के लिये उपयोगी वस्तुओं को मंहगी कर देते हैं। इससे गरीबों का जीवन संकट में पड़ जाता है। सरकारों का कर्त्तव्य होता हैं कि उपयोग लायक पदार्थ से अतिरिक्त हो तभी बाहर भेजने की आज्ञा दें, जिससे अल्प मूल्य में सबका कार्य चल सके। अपने देश के व्यापार की वृद्धि हो, इस दृष्टिसे विदेशी माल पर प्रतिबंध या उचित कर लगाना चाहिये। कौटल्य आदि ने इस कर का समर्थन किया था। जर्मनी आदि ने आयात कर लगाकर अपने राष्ट्रीय व्यवसायों को बृटेन की प्रतियोगिता से बचाया था। बृटेन ने भी अमरीका की वस्तुओं का एकाधिकार रोकने के लिये १९३१ में रक्षित व्यापार प्रथा को स्वीकार किया था।

इस दृष्टिसे उक्त नियम ग्रीष्म ऋतु के अनन्तर, वर्षा ऋतु आने, या सूर्य का पूर्व में उदय होकर पश्चिम में अस्त होने के नियम जैसे, प्राकृतिक नियम नहीं है और न ही ये नियम ईश्वरीय शास्त्रों से ही समर्थित है।

बेन्थम का उपयोगिता वाद—

उसके अनुसार जीवन का एकमात्र ध्येय सुख प्राप्ति और दुःख निवारण है। वही जीवन का सार है। वही वस्तु उपयोगी है जिससे सुख हो, आनन्द या आनन्द का कारण सुलभ हो। क्लेश या क्लेश का कारण दुःख है। वेन्थम के अनुसार मनुष्य के सभी कार्य उपयोगिता से ही निर्धारित होते हैं धर्म, अधर्म, न्याय, अन्याय, भलाई, बुराई की परख उपयोगिताके आधार, पर ही की जाती है।

उपयोगिता एवं व्यक्तिवाद—

उपयोगिता की दृष्टि से राज्य के नियम स्वतन्त्रता के बाधक होते हैं। अतः वे विकारतुल्य हैं, किन्तु उसके बिना सभ्य जीवन निर्वाह संभव नहीं है। अतः वह आवश्यक विकार है। अतः राज्य को कम से कम नियम बनाना चाहिये। जैसे आरोग्यता सर्वोंतम है। परन्तु अस्वस्थ होने पर औषध आवश्यक है। स्वतन्त्रता पूर्ण जीवन उपयोगिता की दृष्टि से आदर्श जीवन है। परन्तु चोरी; दुराचार आदि बाधाओं के द्वारा स्वतन्त्रता भंग होने की संभावना होती है। तब नियम ही औषध का काम करते हैं। परन्तु स्टुअर्ट मिलने उसमें संशोधन किया। उसके अनुसार एक असन्तुष्ट विद्वान होना संतुष्ट मूर्ख से अच्छा है। उपयोगिता की परख केवल सुखकी मात्रा पर नहीं, किन्तु गुणों के आधार पर होनी चाहिए।

उपयोगितावाद से पूञ्जीवाद लाभान्वित

यदि मनुष्य जाति उपयोगिता के अनुसार ही चलती तो वसिष्ठ, विश्वामित्र, शङ्कर, रामानुज; ईशा, आदि जैसे लोगों की उत्पति न होती। उपयोगितावाद के अनुसार वेन्थम को एक धनी वकील होना था, गरीब दार्शनिक नहीं। आज भी नैतिकता के नाम पर कितने ही सज्जन, सत्य बोलकर अपने को संकट में डालते हैं। भारतीय वेदान्त के अनुसार स्वतन्त्रता पूर्ण सुख एक आत्मा ही है। परन्तु वेन्थम का तो ध्येय भौतिक ही सुख है।

वेन्थम का उपयोगितावाद पून्जीपतियों के लिये उपयोगी है। पून्जीपति अपने सुख और लाभ के लिये मानवता को भूल जाता है। वह अपने अधिक तम सुख को ही अधिकतम मनुष्यों का सुख समझता है। मानवतावादी तो यही चाहेगा कि संभव हो तो अधिक तम लोगों को अधिकतम सुख मिले, नहीं तो जितना भी सुख हो उतना अधिकतम लोगों को मिलना चाहिये। यह नहीं कि अल्प से अल्प लोगों को अधिकाधिक सुख मिले।

वैयक्तिक स्वतन्त्रता—

स्टुअर्ट मिल की पुस्तक स्वतंत्रता 'लिबर्टी' व्यक्तिगत स्वतंत्रताका सर्वोत्कृष्ट समर्थन करती हैं। व्यक्ति की स्वतन्त्रता एवं व्यक्तित्वके लिये व्यक्तिवाद आवश्यक है। उसके अनुसार मानव प्रगति के लिये विचार एवं भाषण की स्वतन्त्रता आवश्यक है। कहते हैं स्टुअर्ट मिल सतर्क लोगों की स्वतन्त्रता का समर्थक था। उसके अनुसार उनमें से भी किसी नयी विचार धारा का जन्म हो सकता है। डा० जानसन् के अनुसार दमन से सचाई छिप नहीं सकती। सत्य की दृढ़ता के लिये दमन एक कठोर कसौटी हैं। परन्तु मिल दमन को प्रगति में बाधक मानता था। ब्राउन के अनुसार 'मिल' ने जीव शास्त्र के जो योग्य हैं—जीवित रहेगा, इस नियमको दुनियामें लागू किया। उसके अनुसार जो विचार, तर्क संघर्षमें बलिष्ठ होता है, वही सत्य सिद्ध होता है। फिर भी समाज के प्रतिकूल व्यक्तिगत कार्यों की स्वतन्त्रता नहीं होनी चाहिये। उसके अनुसार जिसका बुरा असर समाज पर न पड़े ऐसे व्यक्तिगत कार्यों में स्वतन्त्रता ठीक है। यदि मधुपायी अपने अनुभव से मद्यपान को हानिकारक समझेगा तो उसे छोड़ देगा। परन्तु राज्य के प्रतिबन्धसे मद्यपान छूट सकता है। पर इससे चारित्रिक संघटन नहीं होगा। राज्य प्रतिबन्ध से मनुष्य छिप कर भी मद्य पी सकता है। उसके अनुसार नागरिकों को अपने बच्चों को स्कूल भेजने के लिये बाध्य करना राज्य का कर्त्तव्य हैं। परन्तु शिक्षा पर राज्य का प्रतिबन्ध न होना चाहिये।

मानवता विहीन तर्क

परन्तु उक्त बातें अविचार रमणीय ही हैं। यदि मद्य-पान आदि

के लिये व्यक्तियों को स्वतन्त्रता होनी चाहिए, तब तो आत्महत्या की भी स्वतन्त्रता होनी चाहिये। मनमानी व्यवहार करने से तो पशुता एवं मनुष्यताका भी अन्तर मिट जायेगा। अतः धर्महीन, स्वतन्त्रता स्वेच्छाचारिता उच्छृङ्खलता ही बन जाती है।

स्पेन्सर के अनुसार गरीब वही है, जो जीवन को सामाजिक व्यवस्था के अनुसार सञ्चालन करने में असफल रहता है। जो योग्य होता है वही सफल होता है। अयोग्य व्यक्ति परिस्थिति के शिकार होते है। अयोग्य प्राणियों के समान ही अयोग्य व्यक्ति भी समयानुसार जीवन यापन में असफ़ल होते हैं। वे गरीब होते हैं। योग्य, अनुपयुक्त वातावरण में भी सफलता प्राप्त करता है। योग्य परिस्थितिके शिकार होते हैं, जैसे अयोग्य प्राणी मृत्युके शिकार होते हैं। वैसे अयोग्य प्राणी निर्धन एवं निर्बल होते हैं। संघर्ष में पिछड़ जाने वाले ही गरीब हो जाते है। योग्य जीवित रहता है। इस प्रकृति के नियम में राज्य को हस्तक्षेप नहीं करना चाहिये। इसका अर्थ यह है कि एक गन्दी बस्तीके निवासियों को उनके भाग्य पर छोड़ देना चाहिये। जो योग्य होंगे वे उस प्रतिकूल वातावरणमें भी जीवित रह सकेगें। अयोग्य बीमारहोकर मर जायंगे। राज्य को स्च्छता का प्रबन्ध नहीं करना चाहिये। अयोग्य संघर्ष से लुप्त हो जायगा, योग्य बच जायगा। किसी रुग्ण मूछित अध्यापक को परिस्थिति से मुकाबिला करने के लिये छोड़ देना चाहिये। परन्तु यह सब बातें मानवता के विरुद्ध ही हैं।

विकासवाद की मान्यताएं आधारहीन

लगभग अर्द्ध शताब्दी से विज्ञान ने प्राणी विज्ञान सिद्धान्त में पर्याप्त रद्दो बदल किया है। विकासवाद तो वस्तुतः खण्डित ही हो गया है। "साइन्स एण्ड रिलीजन" (धर्म एवं विज्ञान), पुस्तक में सर ओलीवर जोजेफ, लाज आदि सात वैज्ञानिकों के मन्तव्यों का उल्लेख है। इस पुस्तकमें ईश्वर धर्म एंव विकास के सम्बन्ध में डार्विन आदि के मत का खण्डन करके आस्तिक पक्ष का समर्थन किया गया है।

प्रोफेसर वाटमल कहते हैं कि हेकल का प्राचीन भौतिकवाद वर्तमान युग से बिल्कुल दूर है। हेकल की 'दि ओल्ड रिडल आफ युनिवर्स' का उत्तर, रद्दी विचार एंव नूतन उत्तर 'दि ओल्ड रिडल एण्ड न्यूएस्ट आन्सर' पुस्तक में दिया गया है। उसमें कहा गया है कि नवीन वैज्ञानिक पहले की अन्धी प्रकृति के हाथ में न रहकर प्रकृति को अपने हाथ में रखने की शिक्षा देते हैं। विकास को मनमाना नहीं, प्रत्युत नियमबद्ध होकर कार्य करने वाला बताते हैं।

डार्विन के सुपुत्र प्रो० जार्ज डार्विन ने १६ अगस्त सन् १६०५ को दक्षिण अफ्रीका में ब्रिटिश एशोसियेशन के प्रधान की हैसियत से कहा था कि जीवन का रहस्य अब भी उतना निगूढ़ है, जितना पहले था। यदि यह विकास क्रम सही है तो बन्दरों से बन्दर की, मनुष्यों से मनुष्यों की, पक्षियोंसे पक्षियों की, उत्पत्ति का क्रम क्यों दिखायी पड़ता है? आज भी बन्दरों की परम्परा से मनुष्यो का जन्म होता हुवा क्यों नहीं दिखायी देता?

किञ्चिन्मात्र सादृश्य से अन्यत्र अन्य रूपमें अन्य का परिणाम सिद्ध नहीं होता। कितने पौधे समान होते हुये भी गुणों में भिन्न है। कोई जहर है तो कोई अमृत।

नवीन विज्ञान के अनुसार कई प्राणी ऐसे मिले हैं जिन्होंने अपने जन्म से लेकर अब तक अपना रूप बिलकुल नहीं बदला। यही स्थिर शरीर वाले कहे जाते हैं। हेकलके अनुसार मनुष्य को उत्पन्न हुये आठ लाख बीस हजार साल हुये है। इसी बीच में उसने इतनी उन्नति की है। परन्तु मि० जांन टी० रोड ने नेवादा में एक ६० लाख साल का पुराने जूते का तल्ला पत्थर की दशा में पाया है। उससे विकासवाद सर्वथा धराशायी हो जाता हैं। पृथ्वी की आयु अब तक जितने भी प्रकारो से सिद्ध की गयी है, इनमें से कोई भी प्रकार इस जूते के कारण विकासवाद की सब कड़ियों को उत्पन्न करने में समर्थ नहीं है। अमीवा से लेकर मनुष्य तक जितनी कड़ियां हैं, यदि एक एक कड़ी करोंड़ वर्ष लें तो ज्यादा से ज्यादा कितनी पुरानी हो सकती है; इसका अन्दाजा लगाना भी कठित है। यह सिद्धान्त स्थिर हो चुका कि मनुष्य का विकास बन्दर से नहीं हुवा, प्रत्युत बन्दरों का जन्म ही मनुष्यों से हुवा। इन

वैज्ञानिकों के अनुसार पूर्वकाल के मनुष्यों ने ज्ञान विज्ञान में बहुत उन्नतिकी है। इस लिये उनके शिर कमजोर हो गये। कुछ दिनों के बाद ये असभ्य, जंगली हो गये। अतः रजनीश की यह बात वेतुकी है जिसमें कहा गया है जब बन्दर पहले पहल दो पैर से खड़ा हुवा होगा तो उसकी रीढ़में दर्द भी होगा, कठिनाई भी हुई होगी।

यंत्रों का विकास जैसे किसी चेतनकी बुद्धिका परिणाम है वैसे ही विश्व का विकास भी किसी चेतन ईश्वर से ही संभव है।

डा० जे० जे० एम० फ्लेमिग का कहना है कि साइन्स के अध्ययन करने से हमें प्राकृतिक जगत में तरकीव, योजना, धारणा और विचार दिखलायी पड़ते हैं। ये वातें इत्तिफाकसे अचानक नहीं आ गयीं। ये विचार चैतन्य की सूचना देते हैं। यह संसार बिना विचारवानके नहीं बन सकता। 'थर्टी इयर्स आफसाइकिकल रिसर्च' पुस्तकमें लिखा है कि पचास वर्ष पूर्व विज्ञानका रुख था कि जो बात भौतिक विज्ञानसे नहीं सिद्ध है उसका अस्तित्व ही नहीं, वह ढोंग है। परन्तु ऐसे प्रमाण मिल रहे हैं कि, जो भौतिक विज्ञान के बाहर हैं, ऐसे पदार्थों को साइकिकल कहते हैं। मद्रास हाई कोर्ट के जज टी० एल० स्टेज के अनुसार जल कृमियों में भिन्न भिन्न रूप वाले जन्तु प्रतिदिन उत्पन्न होते हैं। उनके लिये आवश्यक नहीं है कि वे एक दूसरे से विकृत होकर उत्पन्न हों। प्रत्युत वे स्वतंत्र एक दूसरे से अपेक्षा रहित, एक ही समय में अलग अलग आकार के साथ उत्पन्नहोते हैं। इससे क्रम विकास का खण्डन होता है। सिर में मैंल जमने से जुयें साक्षात् उत्पन्नहोती हैं। उनको अन्य अनेक देह धारण नहीं करना पड़ता। खटमल भी मलीनता से ज्यों के त्यों उत्पन्न होते हैं। मूत्र के कीड़े सब जगह एक से नहीं होते हैं। इससे सिद्ध है कि अमुक आकार प्राप्त करने के लिये अनेक आकारों का चक्कर लगाना आवश्यक नहीं।

हक्सले ने अपने 'एनिवर्सिटी एड्रेस' में कहा है कि प्रत्येक प्राणी और वनस्पति की महान जातियों में विशेष जातियां ऐसी भी होती हैं जिनको मैं परसिस्टेण्ट टाईप (स्थिर आकृति) नाम देता हूं। इनके स्वरूपमें आदि सृष्टि से लेकर अब तक कोई विकार नहीं हुवा। डी. ह्वाइज टी. एल. स्ट्रेज ने

भी ऐसा ही माना है। फिर ऊंट पहले सांप और छिपकली बनकर फिर ऊंट बना, इत्यादि बातें अनर्गल ही हैं।

विकासवादके अनुसार—यदि पृथ्वीकी किसी तहमें एक ही जगह घोड़ा, गधा, और जेब्राके अस्थिपञ्जरमिले तो विकासवादी तीनोंको एक ही समझेगा। उनके विश्वासके अनुसार घोड़े की कड़ियां मिल गयी। यूरोप, अमरीका की खुदाईसे मिले विभिन्न जातियों के अस्थि पञ्जरों को मिलाकर दिखलाने की कोशिश की जाती है, वे सब घोड़े के पूर्वज हैं। हक्सले ने इसे बड़ा महत्व दिया था। परन्तु आधुनिक खोज से उसका खण्डन हो गया। 'मार्डन आइडिया आफ इवोल्यूशन' पुस्तक में यह बात स्पष्ट है। फेगस, अपनी पुस्तक 'लेस अम्पुलस डे डारविन' पुस्तक में लिखते हैं कि घोड़ों की कड़ियां न तो इस प्रकार के जिन्दा जानवरों से पूरी होती हैं और न प्रस्तरी भूत अस्थि पञ्जरों से ही। इसी तरह जोन्स से नवम्बर सन् १६२२ ई० के 'न्यू एज' पत्र में लिखा है कि इस म्यूजियम में एक कण भी ऐसा नहीं है जो यह सिद्ध कर सकें कि जातियों में परिवर्तन हुवा हैं। अब तो केन्द्राकर्षण काल और दिक् संबंधी विचार भी बदल गये हैं। गणित तथा पदार्थ विज्ञान में बहुत से ऐसे सिद्धांत हैं जो परस्पर विरोधी हैं। उदाहरणार्थ पहले युक्लिडके स्वतः सिद्ध नियम अनिवार्य तत्व माने जाते थे। किन्तु सालिवान के अनुसार अब वह पुरानी वस्तु हो गयी। उनका कहना है कि आज से सौ वर्ष पूर्व लोवा शेफ्सी नामक रूसी और वोलियाई नामक हङ्गेरियन ने यह जान लिया था कि युक्लिड का रेखागणित अविनेच्य आवश्यकताका स्थान नहीं ले सकता।

दो हजार वर्ष तक युक्लिडके सिद्धान्तोंने निर्विरोध राज्य किया। सभी वैज्ञानिक उन्हें जितना मनुष्यों के लिये उतना ही देवताओं और ईश्वर के लिये आवश्यक मानते थे। उस समय लोवा शेफ्सी तथा बोलयियायी को लोग विक्षिप्त कहते थे। महान् विद्वान गांस तक को जो स्वयं इसे समझ चुका था, अपना आविष्कार प्रकाशित करने का साहस न हो सका। किन्तु अन्तमें लोवा शेफ्सी आदि की बातें मान्य हुयी।

जिस 'आइजक न्यूटन' का केन्द्रीय आकर्षण सिद्धान्त आज भी श्रद्धा से पढ़ाया जाता है, उसी के सम्बन्ध में सालिवान का कहना है कि न्यूटन का यह आविष्कार और इसकी पुष्टि मानवी बुद्धि की चरमकृति समझी जाती थी, तो भी आज हम केन्द्रीय आकर्षणकी व्याख्या भिन्न परिभाषा द्वारा करते हैं। इस विषय में हमारा सम्पूर्ण दृष्टिकोण न्यूटन के दृष्टिकोण से मूलतः भिन्न है। न्यूटन का सिद्धांत लागू करने पर कई अंशों में यह अवास्तविक और अशुद्ध ठहरता हैं। आज वह प्रणाली जड़ और शाखा सहित उखाड़ कर फेंक दी गयी, जिसकी नींव पर यह सिद्धांत खड़ा था।

हक्सले के अनुसार अचेतन पदार्थ हीनज्योति अथवा पानी के भंवर के तुल्य निष्प्रतीत होनेपर भी प्रतिक्षण बदलने वाली शक्तियां हैं। नये नये परमाणु मिलते जाते हैं और पुराने पृथक् होते जाते हैं। यह निरन्तर बहती रहती है। इसलिये चैतन्य का सिलसिला नहीं टूटता। वैज्ञानिकों के अनुसार परमाणुओं की गति प्रति सेकेण्ड एक लाख मील है। यहाँ यह विचारणीय है कि अलग रहकर इतने वेग से चलने वाले परमाणु किस प्रकार अपना ज्ञान दूसरे परमाणु में डालते है या ज्ञान किस प्रकार एक परमाणु से उड़कर दूसरे परमाणु में जाता है?

बौद्धों के क्षणिक विज्ञानों के सम्बन्ध में भी यही आपत्ति उठती है। बीसों वर्ष पढ़ कर भी एक छात्र गुरु का सम्पूर्ण ज्ञान ग्रहण नहीं कर पाता। चाहते हुये भी गुरु अपना ज्ञान छात्रों में शीघ्रता से संक्रांत नहीं कर पाता। फिर बिना किसी साधन के दूर दूर स्थित परमाणु इतने वेग से दौड़ते हुए अपना ज्ञान दूसरे में फेंक कर चले जाते है और दूसरे उस ज्ञान को ले लेते हैं। यह कितनी असंगत बात है। अतः विकासवादियोंके परिवर्तनशील आत्मा और बौद्धों के क्षणभङ्गुर विज्ञान आत्मा से कूटस्थ नित्य विज्ञान रूप आत्मा का पार्थक्य ही मानना पड़ेगा।

श्री रजनीश जी कहते हैं कि समाजवाद का अन्तिम परिणाम अराजकतावाद है। अराजकतावाद भी समझ लेना आवश्यक है।

अराजकतावाद—

अराजकतावादियों के अनुसार मनुष्य समाज अराजकता की ओर अग्र-

सर हो रहा है। मनुष्य जातिने सहयोग द्वारा ही प्रगति की है, प्रतियोगिता द्वारा नहीं। सहयोग द्वारा ही मनुष्य ने प्रकृति पर विजय पाई है। सहयोगसे ही प्राचीन लोग जीवित रहते थे। स्वेच्छात्मक संस्थाओं की वृद्धि हो रही है। मनुष्य जितना सभ्य होगा उतना ही सहयोगी हृगा। अब थोड़े ही प्रयत्न से राज्य का अन्त और स्वेच्छात्मक संस्थाओंका युग आरम्भ होगा। अराजकता वाद ही पूर्ण स्वतन्त्रता का युग है। उसमें २४ से पचास वर्ष तक काम करने की व्यवस्था होगी। प्रत्येक व्यक्ति को प्रतिदिन चार या पांच घण्टे तक काम करना होगा। मनुष्य वेतन या प्रोत्साहन के बिना ही काम करेगा। काम करना मनुष्य का स्वभाव होता हैं। किन्तु सुगम एवं रोचक काम ही पसन्द होते हैं। भावी समाजमें सभी काम सुगम एवं रोचक होंगे, विज्ञान की प्रगति से कोई काम गन्दा न रह जायगा। पहले बच्चों, बूढ़ों, अंगहीनों को उनके आवश्यकता के अनुसार चीजे दी जायंगी, फिर अन्य लोगों को जीवनोपयोगी वस्तुएं दी जायंगी, फिर आराम की वस्तुएं। सामाजिक वहिष्कार से असामाजिक कार्यों की स्वतः निबृत्ति हो जायगी। इतने पर भी सुधार न होगा तो अपराधी का डाक्टरी इलाज होगा। उसे सुधार गृहमें भेजा जायेगा। मनुष्य सामाजिक समझौंतो को भंग न करेगा। संघटन के लिये छोटे छोटे प्रादेशिक संघ होंगे। इन्हीं में प्रान्तीय समितियां बनेगी। प्रान्तीय समितियों से राष्ट्र समितियाँ बनेगी। वहां से यूरोप, अमरीका आदिको प्रतिनिधि भेजे जायंगे। फिर संसार की समिति बनेगी। वे प्रतिनिधि विशेषज्ञ ही होंगे। अल्पज्ञ या अर्धज्ञान नहीं। समस्या पूर्ति होने पर इन अस्थायी संघों का भी अन्त हो जायगा। दूसरी समस्या आने पर उस प्रकार के विशेषज्ञ प्रतिनिधि भेजे जायंगे। जैसे रोग निबृत्ति के लिये चिकित्सा विशेषज्ञ प्रतिनिधि होंगे। खेलके लिये खेल का विशेषज्ञ खिलाड़ी प्रतिनिधि होगा।

स्वतन्त्र स्वेच्छात्म संघों का समुच्चय ही अराजकतावादी संघ होगा। अराजकतावाद का सार व्यवस्था का अन्त नहीं, किन्तु निरङ्कुशता का अन्त होगा। इसके अनुसार समाज की बिना स्वतन्त्रता से शोषण और अन्याय बढ़ता है। और स्वतन्त्रता के बिना समाजवाद से दासता और पशुता बढ़ती

है। क्रोपोटकिन के अनुसार क्रान्तिके द्वारा पून्जीवाद का अन्त होते ही राज्य का भी अन्त हो जाना चाहिये। न मर्ज (वर्ग) रहे न मरीज (राज्य) लेनिनके अनुसार भी राज्य दमन का यन्त्र है। किन्तु वे विरोधियों को कुचलने के लिये उसकी आवश्यकता मानते थे। अराजकता वादियों के अनुसार ऐतिहासिक दृष्टि से राज्य आवश्यक नहीं।

राज्य की उत्पत्ति के पहले भी मनुष्य रहते थे। अपने समूहों में सुखी और स्वतन्त्र जीवन बिताते थे। श्रमिक क्रान्तिके बाद भी वैसे ही बिना राज्य के सुखी एवं सम्पन्न रह सकते हैं, वर्ग विहीन समाजमें जो कि श्रमिक क्रांति का फल है। वर्गीय संस्था की दृष्टि में राज्य की आवश्यकता नहीं रह जाती। राज्य कभी भी न्यायपूर्ण नहीं था। व्यक्तिगत सम्पत्ति के द्वारा ही राज्य का जन्म हुवा था। व्यक्तिगत सम्पत्ति एक चोरी है। राजा इसका रक्षक रहा है। राज्य सदा ही शोषकों का पक्षपाती रहा है। राजा निरङ्कुशता का प्रतीक है, चाहे वह जैसा भी हो। जैसे राजतंत्र या कुलीन तंत्रों में अल्प संख्यकों द्वारा बहुसंख्यक बहुमत, द्वारा वैयक्तिक स्वतन्त्रताका अपहरण होता है। उनके अनुसार कोई मनुष्य दूसरे का प्रतिनिधित्व नहीं कर सकता। 'अ' का प्रतिनिधि सभा में ठीक 'अ' की भांति नहीं बोल सकता। फिर समूहों का प्रतिनिधि तो कोई हो ही कैसे सकता हैं? कोई विधान विशेषज्ञ घारा सभाका सदस्य बनता है पर वह सफाई, शिक्षा, शासनके सम्बन्धमें अनुभव शून्य ही रहता है। फिर उसके द्वारा इन विषयों में बनाये नियम कैसे लाभदायक हो सकते है। शक्ति का मद तो शासक में आता ही हैं। मनुष्य राजनीतिज्ञ होने से ही बुरा हो जाता है।

राज्य के बिना भी मनुष्य खाता, सोता, बोलता, पढ़ता है। जुवाड़ी जुये में हारकर बिना राज्य के दबाव के ही रुपया दे देता है। चोर भी आपस में समझौता करते हैं। कितने खेलोंमें खिलाड़ी स्वयं नियम बनाते हैं और उसका पालन करते हैं। राज्यके बिना भी स्वेच्छात्मक संस्थाओं द्वारा सब काम चल सकता है। बाह्य आक्रमण भी राज्य सेना की अपेक्षा जनता की सेना अधिक अच्छा सामना करती है।

दण्ड के भय से प्राणी अपराध नहीं करेगा, यह समझना भ्रम है। किसी व्यक्ति को फांसी देने से उसके बच्चे निराश्रित, असहाय होकर समाज के लिये अधिक हानिकारक होते हैं। राज्य का अन्त हुये बिना राजनीतिज्ञों के पाखण्डों काअन्त नहीं होगा।"

प्रतिनिधि की कल्पना अनिवार्य

वस्तुतः आज के सारे इतिहास के महल कुछ ईंट, पत्थरों एवं मुद्राओं के आधार पर बने हैं। वे महाभारत एंव रामायण के समान किसी महर्षि की ऋतम्भरा प्रज्ञा के आधार पर निर्मित नहीं है। अतः ऐसे इतिहासों के आधार पर किसी सिद्धान्त का निर्धारण नहीं हो सकता। यदि सभी लोग सात्विक धर्मनिष्ठ, जितेन्द्रिय, तत्ववित् हों तो अवश्य राज्य, राजा आदि के बिना भी कार्य चल सकता है। यह "न वै राज्यं न राजा, सीत" आदि के अनुसार महाभारत में स्पष्ट है। पर जब तक वैसा संभव न हो तो अराजकतावाद से सुख, शान्ति सर्वथा असंभव ही होगी। रामायण के अयोध्या काण्ड के ६७ वें सर्ग में अराजकता की दुरवस्था का वर्णन है—

नाराजके जनपदे विद्युन्माली महास्वनः।
अभिवर्षति पर्जन्यो महीं दिव्येन वारिणा॥
नाराजके जनपदे वीजमुष्टिः प्रकीर्यते।
नाराजके पितुः पुत्रो भार्या वा वर्तते वशे॥
अराजके धनंनास्ति नास्ति भार्य्याप्यराजके।
नाराजके जनपदे योगक्षेमः प्रवर्त्तते॥
न चाप्यराजके सेना शत्रून् विषहते युधि।
यथा ह्यनूद का नद्यो यथा वाप्यतृणं वनम्।
अगोपाला यथागावस्तथा राष्ट्रमराजकम्॥

सभी का शासन में भाग लेना असंभव है। अतः प्रतिनिधि की कल्पना अनिवार्य है। प्रतिनिधि मुख्य से भिन्न होता ही है। वही मुख्य का अपेक्षित

निश्चित कार्यकारी होता हैं। अराजकता वादियोंको भी समय-समय पर प्रांत देश एंव संसार के लिये प्रतिनिधि निश्चित करना मान्य है ही । अतः धर्म नियन्त्रित राजा या धर्म नियंत्रित जन प्रतिनिधियों द्वारा शासन अपेक्षित है ही ।

आत्मवाद का स्वरूप

समाजवाद खण्डन के प्रसंग में रजनीश कई बार कहते हैं कि समाजवाद में आत्मा का विकास तथा आत्माका ज्ञान नहीं होता, परन्तु आत्मा क्या है ? कैसा है ? वे कुछ भी नहीं बता पाते ।

कहा जाता है कि जैसे व्यवहार में भौतिक कार्य कारण संघात भौतिक ही आदित्यादि ज्योति से उपक्रियमाण होता है, उसी तरह स्वप्नादि में भी कार्यकरण संघात का उपकारक आत्म ज्योति भी भौतिक ही है । अर्थात् भूतों का ही परिणाम विशेष हैं। अतः यदि संघात से व्यतिरिक्त भी कोई ज्योति मान्य होगी तो भी वह भौतिक ही होगी । अनुमान भी यथादृष्ट ही होता है। जो कहा जाता है कि अन्तःस्थ एवं अप्रत्यक्ष होने से आत्मज्योति आदित्यादि से विलक्षण अभौतिक ही है, तो यह भी ठीक नहीं है, क्योंकि चक्षुरादि इन्द्रियों में उक्त हेतु व्यभिचरित है । चक्षुरादि भी अप्रत्यक्ष तथा अन्तःस्थ ही है । फिर भी वे अभौतिक नहीं हैं । किन्तु भौतिक ही है ।

वस्तुतः कार्य कारण संघात के होने पर ही चैतन्य ज्योति का सत्व होता है । अतः तद्भाव भावी होने से जैसे रूपादि भूत धर्म ही है, वैसे ही चैतन्य भी भूत धर्म ही है। सामान्यतो इष्ट अनुमानके आधार पर यह कहा जाता हैं कि जैसे जाग्रत काल में संघात तद्व्यतिरिक्त आदित्यादि ज्योति से उपकृत होता है, वैसे ही आदित्य, चन्द्र, अग्नि, वाक्, आदि ज्योति के न रहने पर भी स्वप्न में संघात व्यतिरिक्त आत्मा से उपकृत होता है । परन्तु यह ठीक नहीं है । क्योंकि अनुमान से प्रत्यक्ष प्रबल होता है । हम देखते ही हैं कि देहादि संघात ही दर्शन श्रवणादि क्रियाका कर्ता होता हैं । वही मनन एंव

अध्यवसान भी करता है। फिर यदि कोई भिन्न भी आन्तर आत्म ज्योति हो तो वह भी आदित्यादि के समान भौतिक ही होनी चाहिए। यदि कहा जाय कि देहादि संघात ही दर्शनादि क्रिया का कर्ता है; तो फिर क्या कारण है कि मरण दशा में संघात के ज्यों के त्यों बने रहने पर भी दर्शनादि क्रिया क्यों नहीं होती ? स्पष्ट है कि संघात में कभी दर्शनादि क्रिया दिखती है कभी नहीं दिखती है। परन्तु यह कथन भी असंगत ही है, क्योंकि जो वस्तु जैसी दृष्ट हो उसे वैसा ही मानना चाहिए। खद्योत (जुगुनू) में कभी प्रकाश, कभी अप्रकाश देखा जाता है। तस्मात् उसका प्रकाश अप्रकाश दोनों ही धर्म है। उसी तरह देहादि का भी कभी दर्शनादि क्रिया का कर्त्ता होना, कभी दर्शनादि क्रिया का कर्त्ता न होना, दोनों ही संगत है। वहां किसी कारणान्तर की कल्पना व्यर्थ ही है।

पदार्थ का स्वभाव पर्यनुयोज्य नहीं होता है। अग्नि का औष्ण्य, जल का शैत्य स्वभाव ही है। वैसे ही खद्योत का प्रकाश एंव अप्रकाश स्वाभाविक धर्म है। वैसे देहादि का भी चैतन्य, अचैतन्य दर्शनादि क्रिया का कर्तृत्व तथा अकर्तृत्व स्वाभाविक धर्म है। यदि अग्नि की उष्णता आदिको भी प्राणियों के धर्माधर्म से माना जायगा तब तो फिर धर्माधर्म के फल दातृत्व का भी कोई अन्य हेतु मानना पड़ेगा और फिर तो अनवस्था प्रसंग होगा। अतः अग्नि की उष्णता आदिके समान ही देहादिमें कादाचित्क दर्शन, अदर्शन को स्वाभाविक ही मानना उचित हैं।

इस पूर्व पक्ष का खण्डन करते हुये सिद्धान्त वादी कहता है कि यदि देहादि की ही दर्शनादि क्रिया मानी जायगी, तब तो स्वप्न में दृष्ट के ही दर्शन का नियम होना चाहिये ! देखा जाता है कि अन्ध मनुष्य भी स्वप्न में दृष्ट पूर्व रूप का दर्शन करता है। शाक द्विपादिगत अदृष्ट रूप का स्वप्न में दर्शन नहीं करता। परन्तु स्वप्न में जाग्रत का देह न होने पर भी जाग्रत अवस्था के दृष्ट रूपका ही स्वप्नमें दर्शन होता है। अतीन्द्रिय संस्कार चार्वाक को मान्य नहीं हो सकते। यह भी नहीं हो सकता कि जाग्रत देह के दृष्ट रूप को स्वप्नस्थ अन्य देह देखे, क्योंकि अन्य दृष्ट को अन्य पुरुष स्वप्न में भी नहीं

देख सकता है। इसलिये अगर देह ही आत्मा है, तो स्वप्न में दृष्ट के ही दर्शन का नियम नहीं बन सकता।

कई लोग कहते हैं कि स्वप्न में दृष्ट के ही दर्शन का नियम नहीं है। क्योंकि अन्ध को भी स्वप्नमें रूप का दर्शन होता है। परन्तु यह ठीक नहीं है, क्योंकि अन्ध भी दृष्ट पूर्व ही रूप को स्वप्नमें देखता हैं। अदृष्ट शाकद्वीपादि रूप का दर्शन नही होता है। इससे यह सिद्ध हो जाता है कि जिसने स्वप्न में दृष्ट पूर्व वस्तु को देखा है उसी ने चक्षु के रहने पर भी जाग्रत अवस्था में रूप को देखा था। देह या चक्षु ने नहीं देखा। हां वे सब उसके दर्शन में साधन हैं। यदि जाग्रत और स्वप्न दोनों ही स्थलों में देह को द्रष्टा माना जाय तो जिस आंख वाले देह ने जाग्रत अवस्था में रूप देखा था, उसके अन्धे हो जाने पर स्वप्न में दृष्ट पूर्व रूप का दर्शन नहीं होना चाहिये। क्योंकि अन्ध हो जाने से, देह का सहायक नेत्र न होने से स्वप्न में दृष्ट पूर्व रूप का दर्शन कैसे हो सकेगा? यदि स्वप्न में नये चक्षु की उत्पत्ति संभव हों तब तो नये आंख वाले देह की ही उत्पत्ति क्यों न मान ली जाय? परन्तु ऐसा स्वीकार कर लें तो भी अन्य देह से दृष्ट का अन्य देह द्वारा स्वप्न में दर्शन नही हो सकता है। अन्य दृष्ट का स्वप्न में अन्य को दर्शन नहीं होता है। यह भी नहीं कहा जा सकता है कि स्वप्न में पूर्ण दृष्ट दर्शन नहीं होता। क्योकि मैंने पूर्ण दृष्ट हिमालय के शिखर को आज स्वप्न में देखा था, ऐसा अनुभव नष्ट नेत्र वाले अन्धों को भी होता है। अगर कहीं जन्मान्धों को भी ऐसा अनुभव होता हैं तो वहां भी जन्मान्तरीत अनुभव के कारण ही जन्मांध को स्वप्न में रूप का दर्शन होता है, तस्मात् जैसे स्वप्न में देह द्रष्टा न होकर देहादि संघात से भिन्न आत्मा ही द्रष्टा है, उसी तरह जाग्रत अवस्थामें नेत्रवाले देह को द्रष्टा न मानकर उसी आत्मा को ही द्रष्टा मानना उचित है।

इसी तरह जो द्रष्टा होता है वही स्मर्त्ता होता है। क्योंकि द्रष्टा एवं स्मर्त्ता के एक होने का नियम है। अन्य दृष्ट को अन्य कभी स्मरण नही कर सकता है। कभी आंखे बन्द करके स्मरण करता हुवा मनुष्य दृष्टरूपको दृष्टके समान ही देखता है। उस स्थलमें बन्द आंख द्रष्टा नहीं है। अतः नेत्र बन्द होने पर भी जो स्मरद्रूप को देखता है, नेत्र बन्द न होने पर भी उसी को रूप का द्रष्टा

मानना उचित है। मृतदेह में देह अविकल (सर्वांगपूर्ण) रहनेपर भी रूपादि दर्शन नहीं होता। यदि देह ही द्रष्टा हो तब तो मृत देह में भी दर्शनादि क्रिया होनी चाहिए। जिसके न रहने से दर्शनादि नहीं होते। जिसके रहने पर दर्शन होता है, वह आत्मा ही दर्शनादि क्रिया का द्रष्टा है। देह नहीं।

यह भी नहीं कहा जा सकता है कि चक्षुरादि इन्द्रियां, दर्शनादि क्रिया के कर्त्ता है। क्योंकि—"यदहमद्राक्षम् तत्स्पृशामि" मैंने जिस घट को देखा था, अब उसी का स्पर्श कर रहा हूं। इस प्रत्यभिज्ञान से प्रतीत होता है कि दर्शन एंव स्पर्श क्रिया का कर्त्ता एक ही है। परन्तु चक्षु और त्वक् इंद्रियां तो एक नहीं है। अतः इन्द्रियां दर्शनादि क्रियाओं के कारण तो हो सकती है, लेकिन कर्त्ता नहीं। किन्तु एक ही आत्मा चक्षु से घट को देख सकता है, त्वक् से स्पर्श कर सकता है, वही मन से संकल्प एवं बुद्धिसे निर्णय कर सकता है। यदि इन्द्रियां एक एक स्वतंत्र आत्मा होंगी तब विरुद्ध दिक्की ओर क्रिया होनेपर शरीर का ही उन्माथ हो जायगा, यदि सब इन्द्रियाँ मिलकर परस्पर सम्मति से काम करेंगी तब तो एक कोई स्वतंत्र आत्मा न होगा, फिर कभी वैमत्य भी हो सकता है।

मन आत्मा हैं, यह पक्ष भी संगत नहीं है। क्योंकि स्वप्न में मन ही तो विषय रूप में परिणत होता है। जाग्रद्वासना वासित अर्धनिद्रा से प्रावृत आत्म ज्योति से दीपित मन ही स्वप्न होता है। वैसे भी जैसे "चक्षुषा पश्यामि" इत्यादि रूपसे चक्षु में करणत्व प्रतीत होता है, वैसे ही—

"मनसा संकल्पयामि, बुद्धया अध्यवस्यामि"

मैं मन से संकल्प करता हूं। बुद्धि से निर्णय करता हूं, इस रूप से मन, बुद्धि में करणत्व ही प्रतीत होता है, कर्तृत्व नहीं। जैसे वृक्ष के छेदन में कुठारकरण है, वैसे ही रूप दर्शन में चक्षु करण है। इसलिए संघात मे अन्तःस्था अप्रत्यक्ष व्यतिरिक्त ज्योति आत्मा अभौतिक ही है, भौतिक नहीं।

कहा जाता है कि वह व्यतिरक्त ज्योति भी आदित्यादि के समान भौतिक

ही होना चाहिये। क्योंकि आदित्यादि ज्योति भौतिक देह के समान जातीय ही है, विजातीय नहीं। उपकार्य्य-उपकारक भाव सजातीय में ही होता है, विजातीय में नहीं। परन्तु यह कहना ठीक नहीं, क्योंकि उपकार्य्य-उपकारक भाव में साजात्य का नियम नहीं होता है। देखा जाता है कि पार्थिव ईंधन आदि से अग्नि का प्रज्वलन होता है। अग्नि और ईन्धन में काष्ठादिका साजात्य नहीं है, तो भी उपकार्य्योपकारक भाव होता है। इतना ही क्यों कभी उदक से वैद्युत अग्नि का उपकार होता है। जाठर अग्नि का उपकार अन्न आदि से होता है।

यह भी कहा जाता है कि अन्तः स्थत्व अप्रत्यक्षत्व चक्षुरादि में होने पर भी चक्षुरादिमें भौतिकत्व है ही। अतः अप्रत्यक्षत्व अतःस्थत्व आदि हेतु आत्मा के अभौतिक होनेमें प्रमाण नहीं हैं। पर यह कहना ठीक नहीं क्योंकि चक्षुरादि करणों से भिन्न होकर जो अन्तःस्थ और अप्रत्यक्ष ज्योति है, वही देहादि संघात का उपकारक आत्म ज्योति है—

"तथा च चक्षुरादि भिन्नत्वे सति अन्तःस्थत्वं"

तथा अप्रत्यक्षत्व ही अन्तर ज्योति के आत्मत्व अभौतिकत्व का प्रयोजक हैं। यदि सामान्यतो दृष्ट अनुमान प्रमाण न माना जायगा, तो भोजन पानादि सर्व व्यवहार का लोप हो जायगा, क्योंकि भोजन पान द्वारा क्षुधा पिपासा की निवृत्ति देखकर ही दूसरे दिन भी क्षुधा पिपासा निवृत्ति के लिए सामान्यतो दृष्ट अनुमान से ही भोजन पान में प्रवृत्ति होती है। विशेष रूप से प्रत्येक भोजनादि का क्षुधा निवृत्ति आदि के साथ कार्य्यकारण भाव दृष्ट नहीं है। खद्योत में प्रकाशाप्रकाश भी निर्निमित्त नहीं है। पक्षादि अवयवों के विकास से, प्रकाश और संकोच से अप्रकाश होता है। उसी तरह आत्मा के सन्निधान से ही देह में दर्शनादि क्रिया होती है। असन्निधान के कारण ही मृत देह में दर्शनादि क्रिया नहीं होती। धर्म, अधर्म में फल दातृत्व, अग्नि में उष्णता, जल में शीतलता के समान स्वाभाविक हो सकता हैं। परन्तु चार्वाक तो धर्माधर्म मानता ही नहीं है। फिर उस

दृष्टान्त के आधार पर अग्नि की उष्णता, जल की शीतलता को स्वाभाविक कैसे कहा जा सकता है ?

अतएव, यद्यपि अहं स्थूलः, अहं कृशः, इस व्यवहार में स्थूल देह ही आत्मा प्रतीत होता है। परन्तु ऐसा होने पर—

"योऽहं बाल्ये पितरावन्व भवम् सोऽहं प्रनप्तॄ ननुभवामि"

जो मैं बाल्य काल में माता पिता को देखता था वही मैं प्रपौत्रों को देख रहा हूं। यह अनुभव नहीं बन सकेगा, क्योंकि बाल्य देह एवं वृद्ध देह में प्रत्यभिज्ञा का गन्ध भी नही है, जिससे कि उनका ऐक्य सिद्ध हो। अतः कहना होगा कि—आत्मा ने ही बाल्यकाल में माता पिता को देखा, उसी ने वृद्धा-वस्था में प्रपौत्रों को देखा। जैसे व्यावृत्त कुसुमों में अनुवृत सूत्र कुसुमों से भिन्न होता है। वैसे ही वार्धक, यौवन, बाल्य आदि अवस्थायें परस्पर व्यावृत्त हैं। परन्तु अहंप्रत्ययका आलम्बन आत्मा उनमें अनुवृत है। अतः तीनो अवस्थावाले शरीरों से भिन्न ही हैं। कोई मनुष्य स्वप्नमें दिव्य देव देह ग्रहण करके दिव्य भोगों को भोगता है। जगने के बाद वह देखता है कि मैं तो मनुष्य हूं, देवता नहीं हूं। इस तरह दिव्य देह के बाधित होने पर भी अहं अहं ज्यों का त्यों अनुवर्त्तन है। अतः व्यावृत देव देह एंव मनुष्य देह दोनों में अनुवर्त्तमान अहं आत्मा उनसे भिन्न ही है। कोई योगी काय व्यूह निर्माण करके अनेक देहों में एक अपने आत्मा को देखता है। कभी स्वप्न में मनुष्य व्याघ्र बन जाता है। वह अपने को व्याघ्र देखता है। जगने पर वह अपने को मनुष्य मानता है। इससे सिद्ध होता है कि मनुष्य, व्याघ्र दोनों देह भिन्न है। परन्तु दोनों में अहं का आस्पद आत्मा उन दोनोंसे पृथक् ही है।

यदि आत्मा देह से भिन्न होकर अणु परिमाण हो तो स्थूलोऽहुं, दीर्घोहं यह अनुभव बाधित होगा। साथही देह व्यापी सुख दुःखानुभूति न हो सकेगी, मध्यम परिमाण होगा तो देह के समान ही अनित्य होगा। इस पक्ष में भी अवयव समुदाय देह को चैतन्यवान बनायेगा या प्रत्येक अवयव। यदि प्रत्येक अवयव चेतन होंगे तो पूर्ण स्वतन्त्रों की एक वाक्यता न होने से सम समय में भी विरुद्ध दिशाओंकी ओर क्रिया होगी, तब शरीर ही उन्मथित हो जायगा।

यदि समुदाय में ही चेतयितृत्व होगा तब तो एक अङ्ग के छिन्न होने पर आत्मा के अवयव भी छिन्न होंगे । फिर चेतना का लोप प्रसंग होगा । विज्ञान ही अहं का आलम्बन बने तो यह पक्ष भी ठीक नहीं क्योंकि विज्ञान सब अनित्य क्षण भंगुर है । किन्तु अहं अहं तो स्थिर एक रस ही है ।

जंगल के पशुओं के बच्चे उत्पन्न होते ही दूध पीने के लिये माता का स्तन ढूंढ लेते है । यह कैसे हो सकता है ? माना कि माता ने अपना स्तन भी बच्चे के मुख में डाल दिया, फिर भी स्तन से दूध चूसने की पद्धति उसे विना पूर्व जन्म के संस्कार के कौन सीखा सकता है ? क्योंकि सद्योजात बालक देह मात्र तो वैसे अनुभवों से रहित होता है । अतः कहना पड़ता है कि देह से भिन्न कोई नित्य आत्मा हैं । वही पूर्व देह के अनुभवों से उत्पन्न संस्कारों का आधार होता हैं । जीवन की अन्यथा अनुपपत्ति से वही जन्मान्तर संस्कार उद्भूत होते है जिनके कारण उन्हें ढूंढ लेने और चूसने की विद्या उद्भूत होती है ।

यद्यपि भौतिक देह, दिल, दिमाग, मस्तिष्क आदि के रहने पर ही चेतनावस्था उपलम्भ होती है, उनके अभाव में चेतना का उपलम्भ नही होता । तो भी चेतना उनका धर्म नहीं है । क्योंकि यहां व्यतिरेक संदिग्ध है । अर्थात् दिल, दिमाग, मस्तिस्क, या भौतिक शरीर के न रहने पर आत्मा की सत्ता ही न होने से उसका अनुपलम्भ हैं । अथवा सत्ता रहने पर भी उसका अभिव्यञ्जक न होने से अनुपलम्भ है । अभिव्यञ्जक न होने पर भी अनुपलब्धि होती हैं । जैसे जाति के व्यापक होने पर भी जहां अभिव्यञ्जक व्यक्ति नहीं होता, वहां जाति का उपलम्भ नहीं होता, अतः अन्वयमात्र से चेतना देहादि का धर्म सिद्ध नहीं होता । प्रायः भौतिक वादी तेज अग्नि पदार्थ की सत्ता अङ्गीकार करते है । परन्तु दाहकत्व, प्रकाशकत्व, विशिष्ट पदार्थ अग्नि का उपलम्भ पार्थिव एवं आप्य पदार्थों के संसर्ग से ही होता है ।

लकड़ी, लोहा, कोयला और पानी के बिना केवल अग्नि कहीं उपलब्ध नहीं होती है । लकड़ी पर, कोयले पर, तार पर अग्नि का दाहकत्व, प्रकाश-

कत्व दिखता है। घृत, तेल, पेट्रोल, डीजल पर अग्नि दिखता है। सूर्य मण्डल भी मूर्त पदार्थों का सार होने से ही प्रज्वलित है। दीपक, गैस आदि का प्रकाश तन्मूलक ही है। विद्युत भी अविन्धन होने से जलमूलक ही है। तब क्या कहा जाय कि दाहकत्व, प्रकाशकत्व, अग्नि का धर्म न होकर केवल जल पृथ्वी, लोहा, कोयला, लकड़ी आदि का ही धर्म है ? पर ऐसा कहना उचित न होगा। तस्मात् यही कहना होगा कि लोहा, लक्कड़ आदि अग्नि का अभि-व्यञ्जक है। इसीलिए उसके साथ अग्नि का अन्वय व्यतिरेक प्रतीत होता है। इन दोनों भूतोंसे अग्नि या तेज नाम की पृथक् ही वस्तु है। इसी तरह चैतन्य भी देह, इन्द्रिय, मन, बुद्धि, दिल, दिमाग, मस्तिष्क का धर्म नहीं हैं। किन्तु वह देहादि भिन्न स्वतंत्र आत्मा का ही धर्म या स्वरूप है।

मार्क्स आदि के अनुसार ऊंचे से ऊंचे ज्ञान, विज्ञान, ब्रह्म आत्मा की कल्पनाएं देह के भीतर ही बैठकर की जा सकती है। देह के बाहर आकर कोई भी ज्ञान विज्ञान की कल्पना नहीं कर सकता। तस्मात् देह का ही धर्म ज्ञान, विज्ञान हैं। परन्तु यह कहना ठीक नहीं है। क्योंकि इसके विपरीत यह भी कहा जा सकता है कि भूतों की कल्पना भी तो ज्ञान के बल पर ही की जाती हैं। प्रसिद्ध है कि—

"लक्षणा प्रमाणाभ्यां वस्तु सिद्धिः"

लक्षण एंव प्रमाण से ही वस्तु सिद्ध होती है। प्रमाण ज्ञान का ही विशेष रूप है। चक्षुः श्रोत्रादि जन्य रूप शब्दाद्याकार बृत्ति ही चैतन्य व्याप्त होकर प्रमाण कही जाती है।वस्तुतः जैसे दर्पण में प्रतिविम्ब भासित होता है वैसे ही चिद्रूप दर्पण में ही सम्पूर्ण दृश्य प्रपञ्च प्रतिभासित होता है। अतएव जैसे दर्पण बिना प्रतिविम्ब का उपलम्भ नहीं होता, उसी तरह अखण्ड भान चित् के बिना कोई भी दृश्य परिलक्षित नहीं होता है। श्रुती भी यही कहती है—

"तमेव भान्तमनुभाति सर्वम्"

अखण्डभान आत्मा के भान होने के पश्चात ही सब वस्तुएं भासित होती हैं। जिसमें सब खप जाय सबका अन्तर्भाव हो जाय, और जिसका किसी में

अन्तर्भाव न हो, किसीमें खपत न हो, वही मूलवस्तु या आत्मा हैं। इस दृष्टि से अनन्त सत्ता, अनन्त स्फूर्ति में ही सबका अन्तर्भाव है। जिसकी सत्ता नहीं है, जिसकी स्फूर्ति नहीं है, उस वस्तु की कल्पना भी नहीं होती। सत्ता बिना सब वस्तु असत् हो जायगी। स्फूर्ति बिना, भान बिना, किसी वस्तु का अस्तित्व ही असंभव है। स्फूर्ति वाली वस्तु ही प्रामाणिक वस्तु हो सकती है। किसी वस्तु, सत्ता या स्फूर्ति का अन्तर्भाव कहीं नहीं हो सकता। अतः वही मूलवस्तु है। वही ब्रह्म या आत्मा है। वह भी दो नहीं है। स्फूर्ति का अवाधित होना ही सत्ता है और सत्ता का स्वप्रकाश होना ही उसकी स्फूर्ति है। अतः स्वप्रकाश सत्ता या अत्यन्ता वाध्य स्फूर्ति ही आत्मा है। जैसे शय्या प्रासाद आदि संघात संहृत होने से ही स्वार्थ नही होते। प्रासाद शय्या आदि प्रासाद आदि के लिये नहीं होते। किन्तु देवदत्तादि स्वविलक्षण चेतन देवदत्तादि के प्रयोजन से ही प्रयुक्त होते हैं। उसी प्रकार देहादि संघात भी स्व-भिन्न किसी असंहृत चेतन के लिये ही प्रयुक्त होते हैं। जैसे भृत्यादि किसी स्वामी के प्रयोजन से किसी कार्य में प्रवृत होते है, उसी तरह चक्षु श्रोत्रादि भी किसी असंहृत भोक्ता आत्मा के ही प्रयोजन से प्रयुक्त होते हैं—

"देहादय संघाता स्वातिरिक्ता संहृतात्मार्थाः संहृतत्वात् शय्यादिवत्"

अतएव शरीर इंद्रियादि का अधिष्ठाता आत्मा ही शरीर एंव इन्द्रियों में चैतन्य संपादन करता है। वैसे अहं सुखी, अहं दुःखी, इस रूप में आत्मा प्रत्यक्ष ही है। फिर भी चावार्क आदि प्रतीति को देहादि गोचर ही कहते हैं, अतएव अनुमानादि प्रमाणों से आत्मा सिद्ध किया जाता है। जैसे छिदादि क्रियाओं के करणभूत कुठारादि बिना कर्त्ता के फलाधायक नही होते हैं; उसी प्रकार ज्ञानकरण, चक्षुरादिकरण भी कर्त्ता के बिना फलोपधायक नहीं हो सकते। अतः चक्षु श्रोत्र मन आदिसे भिन्नआत्मा मान्य होना ही चाहिये।

कुछ लोग शरीर को ही ज्ञान का कर्ता मानते हैं। परन्तु वह ठीक नहीं, क्योंकि पूर्वोक्त रीति से मृत शरीर में व्यभिचार होता है। कहा जाता है कि ज्ञानादिक ही तो चैतन्य है। जैसे न्यायमत में, मुक्त आत्मा में ज्ञान नहीं होता, वैसे ही मृत शरीर में ज्ञान न होने पर भी शरीर के आत्मा होने में

कोई बाधा नहीं है। जैसे मुक्त में प्राण न होने से ज्ञान नहीं होता, वैसे प्राण न होने से शरीर में ज्ञानाभाव उत्पन्नहो सकता है। लेकिन यह पक्ष ठीक नहीं है। क्योंकि यदि शरीर ही आत्मा होता तो वाल्यकाल में दृष्ट वस्तु का बृद्धावस्था में स्मरण नही होना चाहिये था। शरीर के अवयवों का उपचय अपचय होने से शरीर का उत्पाद विनाश होता रहता है। अतः बालदेह से बृद्ध देह भिन्नही है। अन्य से अनुभूत का स्मरण अन्य को नहीं हो सकता। जो कहते है कि पूर्व शरीर से उत्पन्नसंस्कार द्वारा उत्तर शरीर में संस्कार उत्पन्न होते हैं, अतः स्मरण बन सकता है, उन्हें अनन्त संस्कार की कल्पना करनी पड़ेगी। उसकी अपेक्षा एक आत्माकी कल्पनामें ही लाघव है। यह भी कहा जा चुका कि शरीरमें चैतन्य माना जायगा तो बालक की स्तनपानमें प्रवृत्ति असंभव होगी। क्योंकि प्रवृत्ति में इष्ट साधनता ज्ञान हेतु है। सद्योजात बालक में इष्ट साधनता का अनुभव कराने वाला कोई साधन नही है।

देहातिरिक्त आत्मवादी के मत में तो जन्मान्तरानुभुत इष्ट साधनता का स्मरण होने से प्रवृत्ति संभव है। यह नहीं कहा जा सकता कि इस तरह तो जन्मान्तरानुभूत अन्य वस्तुओं का भी स्मरण होना चाहिये। क्योंकि अन्य वस्तु विषयक संस्कारों का कोई उद्‍भावक हेतु नही है। प्रकृत में जीवन का हेतुमूत अदृष्ट ही स्तनपानके इष्ट साधनता संस्कार का उद्‍भावक है। संसार अनादि होने से आत्मा का भी अनादित्व सिद्धही हैं। बीज एंव अङ्कुरमें कौन पहले, कौन पीछे है, यह नही कहा जा सकता। सोने, जगने, दिन, रातमें भी कौन पहले हुवा, यह नहीं बताया जा सकता। इसी तरह देहादि एवं उनके हेतुभूत कर्मों में भी कौन पहले है, यह नहीं कहा जा सकता। यदि देहादि नहीं तो देहेन्द्रियादि का हलचल रूप कर्म नहीं बन सकते और वे कर्म न हों तो देहेन्द्रियादि की ही उत्पत्ति निर्हेतुक कैसे हो सकती है ? अतः देहादि से प्रथम उनके हेतु भूत कर्म चाहिए और कर्म के लिये उनके हेतुभूत देहेन्द्रयादि आवश्यक है। इस तरह बीजाङ्कुर धाराके समान इनकी धारा को भी अनादि मानना उचित है।

कर्मों के बिना विश्व का वैचित्र्य बन ही नही सकता। कोई क्यों अकस्मात सम्राट् बना, कोई क्यों कंगाल बना, कोई क्यों कुत्ता बना,

कोई क्यों उष्ट्र, हाथी या मनुष्य बना? यहां नित्य सिद्ध आत्मा के जन्मान्तरीय कर्मों से ही उत्तर जन्म के वैलक्षण्य को स्वीकार करना उचित है।

चक्षु आदि तो ज्ञान के करण हैं। ज्ञान कर्त्ता नहीं हो सकते। यदि चक्षु आदि को ही कर्ता माना जायगा तब तो चक्षु आदि के न होने पर अन्ध हो जाने पर रूपका स्मरण नहीं हो सकेगा। परन्तु अंधों को भी रूप एवं रूपादि मान वस्तुओं स्मरण होता है। यदि नेत्र ही आत्मा है, तब तो नष्ट हो जाने से आत्मा नष्ट हो गया। फिर रूपादि का स्मरण कैसे होगा? इन्द्रि-यान्तर से स्मृति होगी, यह भी नहीं कहा जा सकता। क्योंकि अन्य से अनु-भूत का स्मरण अन्य को नहीं हुवा करता। अतएव देवदत्त के अधीत को यज्ञ दत्त स्मरण नहीं कर सकता है।

इसी प्रकार मन में भी ज्ञातृत्व नहीं संभव है, क्योंकि वह भी करण है, मनसा संकल्पयामि ऐसा व्यवहार दिखता ही है। साथ ही यदि मन ही आत्मा हैं, तो अहं सुखी, अहं दुःखी यह प्रत्यक्ष न होगा। क्योंकि मन अणुपरिमाण है। प्रत्यक्ष में महत्व हेतु है। यदि मन का प्रत्यक्ष न होगा तो मन के सुख दुःखादि धर्म का प्रत्यक्ष नहीं हो सकेगा। एक काल में अनेक ज्ञान नहीं होते। यही मनके अणुत्वमें प्रमाण है। यदि मन व्यापक या मध्यम परमाणु का होता तो मन का अन्य इन्द्रियों से सम्बन्ध होने से अनेक ज्ञान भी समकाल में होने चाहिये थे। यद्यपि दीर्घ शष्कुली, पापड़ भक्षण काल में, शब्द स्पर्शादि के सम काल में प्रतीति मालूम पड़ती हैं, तथापि वहां भी क्रम ही मानना चाहिये। जैसे कमल के शतपत्र छेदन में क्रम नहीं प्रतीत होता तो भी वहाँ क्रम है ही, वैसे ही प्रकृत में भी जानना चाहिये। मान्य सान्य प्रत्यक्ष में ही महत्व को कारणता है। अतएव माध्वमत में अणुपरिमाण वाले आत्मा का भी प्रत्यक्ष होता हैं। तथापि पृथक्-पृथक् दो कार्य कारण भाव कल्पना में गौरव ही है। अतः महत्व को प्रत्यक्ष साधारण का हेतु मानना युक्त है।

बौद्ध विज्ञान को ही प्रकाश रूप होने से चेतन आत्मा कहते हैं और ज्ञान सुख आदि उसी के आकार विशेष हैं, वह भी क्षत होनेसे दीप, कलिका आदि

के समान क्षणिक है। नीलादि विज्ञान प्रवृत्ति विज्ञान हैं। अहं जानामि, इत्यादि विज्ञान आलय विज्ञान है। पूर्व पूर्व विज्ञान उत्तरोत्तर विज्ञान का हेतु होने से सुषुप्ति अवस्था में भी आलय विज्ञान धारा निराबाध ही रहती है।

यद्यपि कहा जा सकता है कि विज्ञान क्षणिक है। तो तदाश्रित संस्कार को भी क्षणिक ही कहना होगा। अतः कालान्तर में स्मरण असंभव होगा। तथापि यह ठीक नहीं। मृगमद वासना वासित वसनों के समान पूर्ण पूर्ण विज्ञान जनित संस्कार उत्तरोत्तर विज्ञानों से संक्रांत होते रहेगे। अतः स्मरण हो सकेगा।''

परंतु यह बौद्ध मत भी उचित नहीं। क्योंकि यहां प्रश्न होगा कि विज्ञान क्या सम्पूर्ण जगत विषयत्वेन प्रकाशन करेगा या किसी विषय का ही प्रकाशन करेगा? प्रथम पक्षमें सर्वज्ञता का प्रसंग होगा। यकिञ्चित विषय का प्रकाश माना जायगा तो विनिगमनाविरह होगा। किसका प्रकाश हो, किसका न हो इसमें कोई हेतु न होने से किसी का भी प्रकाश न होगा। साथ ही सुषुप्ति में भी जब विज्ञान रहता ही है तब तो विषयों का भी प्रकाश होना चाहिये। क्योंकि ज्ञान सविषय ही होता है। यदि कहा जाय कि उस समय निराकार विज्ञान की धारा ही रहती है, वह भी ठीक नही क्योंकि निराकार या निर्विषय विज्ञान धारा होने में कोई प्रमाण नहीं है। क्योंकि ज्ञानत्व विषयिता व्याप्य होता है। अतः जहां भी ज्ञान होगा, उसका विषय अवश्य होगा। प्रमाणाभाव होने पर भी यदि ज्ञान माना जायगा तब तो घटादि को भी ज्ञान क्यों न माना जाय? यदि कहा जाय कि यह तो विज्ञान वादी को भी मान्य ही है, क्योंकि वह विज्ञान से भिन्न कोई वस्तु मानता ही नही। यहां यह भी विकल्प होगा कि ज्ञान का विषय रूप आकार विज्ञान से भिन्न है या अभिन्न है। भिन्न नहीं कहा जा सकता। यदि आकार विज्ञान से अतिरिक्त है तब तो विज्ञान से भिन्न वस्तु स्वीकृत हो गयी। यदि आकार विज्ञान से भिन्न नही तब तो नील, पीत, हरित, इत्याकारक समूहालम्बन ज्ञान में नीलाकार भी पीताकार हो जायगा। क्योंकि स्वरूपतः विज्ञान में कोई भेद है ही नहीं।

कहा जाय कि नीलपीत में वस्तुतः भेद नहीं है, फिर भी नीलत्व, पीतत्व धर्म, भेद से, भेद की प्रतीति होती है। नीलत्व पीतत्व को विज्ञान से अभिन्न नहीं कहा जा सकता। क्योंकि अपारमार्थिक नीलत्वादिका पारमार्थिक विज्ञान से अभेद नहीं हो सकता है। अतः अनील व्यावृत्ति रूप अपोह विज्ञान का धर्म है, यह भी नहीं कहा जा सकता। क्योंकि विरुद्ध नीलत्वादि का एकत्र समावेश असंभव ही है। अन्यथा तो विरोध मात्र का निर्धारण असंभव ही हो जायगा।

वासना का संक्रमण भी असंभव ही है। क्योंकि इस नियम के अनुसार माता की वासना का पुत्र में संक्रमण होना चाहिये, पर ऐसा नहीं होता। माता के अनुभूत विषय का पुत्र को स्मरण नहीं हो सकता है। यदि कहा जाय कि उपादानोंपादेय भाव ही नियामक है—अर्थात उपादान कारण की वासना उसके कार्य्य में संक्रांत होती हैं, तो यह भी ठीक नहीं क्योंकि एक का संस्कार दूसरे में संक्रांत होना असंभव हैं। क्षणिक विज्ञान भिन्न कालिक है। पूर्व विज्ञान के समय उत्तर विज्ञान है ही नहीं। तब पूर्व विज्ञान उत्तर विज्ञानसे अपना संस्कार कैसे डाल सकेगा? यदि कहा जाय कि उत्तर विज्ञान में संस्कारकी उत्पत्ति ही संक्रमण है तो यह भी ठीक नहीं क्योंकि कोई उसका उत्पादक नहीं है। यदि कहें कि विज्ञान ही उत्पादक है, तब तो अनन्त विज्ञानों के अनन्त संस्कार मानने पड़ेगें। क्षणिक विज्ञानों में उत्तरोत्तर विज्ञानानुकूल अतिशय विशेष (शक्ति) की कल्पना भी निर्मूल हैं। क्योंकि उसमें प्रमाण नहीं है, कल्पना गौरव भी।

कहा जाता है कि क्षेत्रस्थ बीज से अङ्कुर की उत्पत्ति होती है। कुशूलस्थ बीज से नहीं। अतः अङ्कुरत्वावच्छिन्न के प्रति बीज का कुर्वद्रूप ही हेतु है। अन्यथा कुशूलस्थ बीज से भी अङ्कुर उत्पन्न होना चाहिये। परन्तु यह कहना असंगत है। क्योंकि धरणि, अनिल, जलरूप सहकारियों के होनेपर ही बीज से अङ्कुर पैदा होता है। अन्यथा नहीं। यदि संसार सभी क्षणिक होता तो "ए-एवायं घटः" यह प्रत्य भिज्ञाभी बाधित होगी।

धर्माधर्म का आश्रय यदि शरीर ही होगा तो देहान्तर कर्मो का देहान्तर

से भोग असंभव होगा। अतः धर्माधर्म का आश्रय शरीर से भिन्न आत्मा ही है, अपने देहमें अहं सुखी, अहं दुःखी, अहं जानामि, अहं करोमि, योग्य विशेष गुणगान सुखादि के सम्बन्ध से आत्मा का प्रत्यक्ष ज्ञान होता हैं। पर देह में तो जैसे रथ की गति से सारथि का अनुमान होता है, उसी तरह वैसे चेष्टा रूप कर्मसे आत्मा का अनुमान होता है।

परमेश्वर

इसी प्रकार परमेश्वर की सत्ता का अंगीकार करना भी अनिवार्य है। जब एक घट, मेज जैसी साधारण वस्तुओं का निर्माता ज्ञानवान्, इच्छावान् क्रियावान् कुम्भकारादि होता है तो यह कैसे कहा जा सकता है कि चन्द्र-मण्डल, सूर्य मण्डल, भूधर, सागर, गगन मण्डल तथा अनन्तानन्त ब्रह्माण्ड बिना किसी ज्ञानवान्, इच्छावान् क्रियावान शक्तिशाली चेतन के बिना निर्मित हो सकता है? सावयव होने के कारण इस प्रपञ्च को नित्य भी नहीं कहा जा सकता है। अतः सर्व प्रपञ्च का निर्माता ज्ञाता अधिष्ठान एवं नियामक तथा कर्म फलदाता परमेश्वर को अंगीकार करना अनिवार्य हैं।

धर्म नियन्त्रित नीति

शास्त्र स्वीकृत होने पर उसका संविधान (कांस्टिट्यूशन) मानना अनिवार्य हो जाता है। जिस संविधानके द्वारा अनादि, अनन्त परमेश्वर जगत का नियन्त्रण करता है, वह संविधान है वेदादि शास्त्र। उन्हीं शास्त्रों का ही एक अंश राजनीति है। शास्त्र एंव शास्त्रोक्त धर्म से नियन्त्रित नीति ही कल्याण-कारी सिद्धांत है। भौतिक समाजवाद और भौतिक धर्म निरपेक्ष पून्जीवादभी हानिकारक है।

शास्त्रों के अनुसार तो अध्यात्मवाद पर आधारित धर्म नियंत्रित शासन तंत्र या रामराज्य ही आदरणीय हैं। उसमें धन होता है, समृद्धि होती है, अनन्त धन धान्य होता है। अनन्त रत्न, मणि, सुवर्ण तथा अनन्त खानों से

पूर्ण भूमण्डलका आधिपत्य होता है। परन्तु सब धर्मनियंत्रित होता है। बेकारी बेरोजगारी नहीं होती। उसमें कोई दरिद्र एवं दीन नहीं होते। कोई अबुध और अलक्षण भी नहीं होते, सब एक दूसरे के पोषक, रक्षक होते हैं। कोई शोषक नहीं होता है। अतएव वहां छीना झपटी भी नहीं होती है।

श्री रजनीश जी कहते हैं कि समाजवाद में आत्माका अपलाप किया गया है। परन्तु वह स्वयं आत्मा की केवल बात कहकर रह गये। आत्मवाद पर उन्होंने कोई विश्लेषण नहीं किया। यह अत्यन्त आवश्यक था। वास्तव में अभौतिक आत्मतत्वका प्रतिपादन ही समाजवाद का खण्डन है। अगर आत्मा, परमात्मा और धर्म तथा धर्म शास्त्रों का प्रामाण्य सिद्ध हो जाय तो समाजवाद, मार्क्सवाद अपने आप खण्डित हो जाता है। परन्तु इन विषयों में रजनीश ने जो कुछ कहा है, वह अत्यन्त नगण्य है।

यहाँ संक्षेप में आत्मवाद पर प्रकाश डाला गया है। यहां केवल समाजवाद एवं मार्क्सवाद की लचर आलोचनाओं का ही खण्डन किया गया है, और भौतिक पून्जीवाद की अपेक्षा उसकी युक्ति युक्तता का प्रतिपादन किया गया है।

सिद्धान्त दृष्टि से अध्यात्मवाद पर आधारित धर्म नियंत्रित शासन तन्त्र ही मुख्य सिद्धांत हैं। जिसका प्रतिपादन "मार्क्सवाद और रामराज्य" एवं "विचार पीयूष", आदि ग्रन्थों में विस्तृत रूप से किया गया है!

पूज्य स्वामी श्री करपात्री जी महाराज के ग्रंथ

विचार पीयूष	२२-००
रामायण मीमांसा	२५-००
वेद का स्वरूप और प्रामाण्य	७-५०
अहमर्थ और परमार्थसार	६-००
श्री भगवततत्व	१०-००
वर्णाश्रम-मर्यादा और संकीर्तन-मीमांसा	१-५०
शांकरभाष्य पर आक्षेप और समाधान	१-५०
तिथ्यादिनिर्णयः, कुम्भ निर्णयश्च	०-५०
संघर्ष और शांति	३-५०
मार्क्सवाद और रामराज्य	२०-००
राहुल जी की भ्रान्ति	१-२५
जाति, राष्ट्र और संस्कृति	१-२५
ये राजनीतिक दल	०-५०
रामराज्य-परिषद् और अन्य दल	०-५०
रामराज्य-परिषद् और स्वतंत्र-पार्टी	०-५०
आधुनिक राजनीति और रामराज्य परिषद्	०-५०
व्यक्तिगत या सामूहिक ?	०-५०
राजनीति में भी ईमानदारी	०-२५
भक्ति सुधा प्रथम खण्ड (अप्राप्त)	२-५०
,, द्वितीय खण्ड	५-००

प्रकाशकः—श्री सन्तशरण वेदान्ती

धर्मसंघ, शिक्षामण्डल दुर्गाकुण्ड, वाराणसी (उ० प्र०)